Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110723

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RT-5964

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

39

विधि पत्रिका

वर्ष ३] मार्गशीर्ष (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : नवंबर-दिसंबर १९५८ [अंक १

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

व.द तालिका	१	इलाहाबाद उच्च न्यायालय	१–१६
लेख खंड	१–२	,, (राजस्व)	१–८
अधिनियम खंड	१–६	विधिक अंग्रेजी-हिंदी-शब्दसंग्रह	१४७–१५४
सर्वोच्च न्यायालय	१–८		

वार्षिक शुल्क १०) एक प्रति का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद ।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद ।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय ।

संपादक मंडल

(१) श्री व्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी ।
(२) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी ।
(३) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी ।
(४) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी ।
(५) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी ।
(६) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी ।
(७) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी ।
(८) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी ।
(९) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी ।
(१०) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी ।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट }

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110723
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110723

विधि पत्रिका नवंबर-दिसंबर १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

१—अनंत गोपाल शेवरे वि० बंबई राज्य	सर्वो० न्या०	१
२—एत्रामुद्दीन हैदर वि० प्यारे लाल	इला० (राजस्व)	७
३—कारे वि० राज्य	इला० उ० न्या०	१६
४—कामताप्रसाद वि० मु० पार्वती बीबी	”	२
५—कुमारी आशालता वि० आचार्य मेरठ कालेज	”	१
६—देवकी नंदन वि० उ० प्र० राज्य	”	६
७—नासिरुद्दीन वि० दुक्खी	इला० (राजस्व)	२
८—परसिद्धन सिंह वि० गयाप्रसाद	” ”	५
९—बलवंत कुँवर, श्रीमती वि० अतिरिक्त मुंसिफ देहरादून	इला० उ० न्या०	४
१०—मुनेश्वरानंद त्यागी वि० उ० प्र० राज्य	” ”	१२
११—रतन गोंड वि० बिहार राज्य	सर्वो० न्या०	५
१२—रघुवीर वि० राजस्व मंडल उ० प्र० इलाहाबाद	इला० उ० न्या०	१०
१३—रामनंदन वि० राज्य	इला० उ० न्या०	८
१४—राधाकृष्ण साहु वि० रामसेवक उपाध्याय	इला० (राजस्व)	३
१५—विपिन बिहारी सरकार वि० पश्चिमी बंगाल राज्य	सर्वो० न्या०	२
१६—सत्यनारायण पांडेय वि० ध्रुवनारायण	इला० उ० न्या०	१३
१७—साधो सिंह वि० बबू राम	इला० (राजस्व)	१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष ३] मार्गशीर्ष (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : नवंबर-दिसंबर १९५८ [अंक १

संपादकीय

अर्थ और न्याय—

सिद्धांततः न्याय के सिर पर अर्थ का बोझ नहीं होना चाहिए। न्याय पाने का अधिकार प्रत्येक प्राणी का है। यदि समाज या राष्ट्र अन्याय से रक्षा करने में असमर्थ है तो उसकी उपयोगिता नहीं—हत्यारे, लुटेरे और डाकू से यदि रक्षा न हो सकी तो राज्य की यथार्थता ही क्या ? मनुष्य ने इन्हीं आपदाओं से रक्षा पाने के लिये ही तो राज्य की सत्ता के अंतर्गत रहना स्वीकार किया। शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के एकमात्र उद्देश्य से प्रेरित होकर मनुष्य ने अपनी कुछ स्वतंत्रताओं को छोड़ना स्वीकार किया और वह राजा की सत्ता के भीतर आया। उसे विश्वास था कि अन्याय होने पर राजा हमारी रक्षा करेगा। अन्याय से घिर जाने पर ही न्याय की आवश्यकता प्रतीत हुई। राज्य का न्याय-विभाग एक प्रमुख अंग हुआ। प्राचीन काल में राजा न्यायकर्ता और शासक दोनों का अधिष्ठाता था। राजा के अच्छे या बुरे होने पर न्याय बहुत कुछ अवलंबित थी। राजा को स्वयं सत्य की खोज करने का अधिकार था। आचार, संहिता और दंडविधान धीरे धीरे राजा के प्रथप्रदर्शन के लिये आए।

आज न्याय विभाग स्वतंत्र है। इसका गठन बहुत कुछ वैज्ञानिक ढंग पर है फिर भी न्याय के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है। आज भी न्यायार्थी के सामने कठिनाइयाँ अनेक हैं। जब तक उसके पास द्रव्य नहीं न्याय नहीं प्राप्त हो सकता। व्यवहार और आपराधिक मुकदमों में कठोर परिश्रम के साथ साथ उसे अधिक धन व्यय करना पड़ता है। साक्षियों को न्यायालय के संमुख प्रस्तुत करने का दायित्व न्यायार्थी पर रहता है। धन के अभाव में उसका वाद या प्रतिवाद समाप्त हो जाता है। यदि धन की कमी हुई तो वह न्यायालय में मारा मारा फिरता है। इसके कुछ अपवाद हैं पर नगण्य। धनी पुरुषों के लिये यह अर्थभार संभव भी होता है पर निर्धन की स्थिति अत्यंत भयावह हो जाती है। यों तो न्याय सबके लिये सुलभ होना चाहिए और इसमें धन यदि व्यय न करना पड़े तो बहुत ही अच्छा है पर निर्धन के लिये न्याय अनिवार्यतः निःशुल्क होना चाहिए। आज की न्यायप्रणाली में हमें देखना है कि इस उद्देश्य की पूर्ति कहाँ तक हो सकती है और किस अंश तक निर्धन को बिना अर्थ के न्याय की प्राप्ति संभव है।

व्यवहार (सिविल) वादों में निर्धनवाद (पापर सूट) की व्यवस्था है। यह व्यवस्था निर्धनों को निःशुल्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय प्रदान करने के विचार से की गई है किंतु प्रार्थी निर्धन है कि नहीं केवल इसी बात को प्रमाणित करना एक मुकदमे के निर्णय से कम कठिन नहीं है। निर्धनता को प्रमाणित करने के लिये तहसीलदार के पास जाना पड़ता है और आज की दूषित न्याय पद्धति में वहाँ पैसा खर्च करना ही पड़ता है। तहसीलदार का आदेश प्राप्त हो जाने के बाद भी इसके लिये अनेक कार्यवाहियाँ करनी पड़ती हैं। निर्धन व्यक्ति को न्याय सुलभ हो इसीलिए यह व्यवस्था है किंतु वह व्यक्ति निर्धन है कि नहीं इसको प्रमाणित करना एक प्रकार से निर्धन को दुर्लभ ही है। इस प्रकार निर्धन के लिये यह सुविधा अपर्याप्त और असंतोषजनक है।

आपराधिक (क्रिमिनल) मामलों में भी निर्धनों को दी जानेवाली सहायता शून्य के बराबर है। सर्वप्रथम यह सुविधा केवल प्राणहत्या के संबंध में दी जाती है। यदि किसी अभियुक्त पर प्राणहत्या का आरोप हो और वकील रखने की उसकी सामर्थ्य न हो तो न्यायकर्ता के अनुरोध पर राज्य की ओर से उसके लिये वकील रखने का नियम है पर ऐसे वकीलों की एक सूची होती है और उसी सूची से बारी बारी से वकील इन मुकदमों के लिये नियुक्त किए जाते हैं। इस प्रकार निर्धन की ओर से सरकार द्वारा नियुक्त जो वकील काम करते हैं वे क्षमता में उन वकीलों से कम होते हैं जो भारी शुल्क देकर व्यक्तिगत रूप से नियुक्त किए जाते हैं। इस प्रकार संभव है धनाभाव के कारण निर्दोष व्यक्ति भी दंडित हो जाय। अर्थाभाव में निर्दोष व्यक्ति का दंड पा जाना या अर्थ के बाहुल्य से दोषी व्यक्ति का दंड से बच जाना दोनों ही न्याय के विकृत रूप हैं और इतने विकृत रूप हैं कि इसकी कल्पना मात्र से ही सिहरन पैदा हो जाती है। कंगाल दुःखी और असहाय मनुष्य को भी न्याय प्राप्त करने का उतना ही अधिकार होना चाहिए जितना धनी और संपन्न व्यक्ति को होता है। निर्धनों को सहायता प्राप्त करनेवाली उपर्युक्त व्यवस्थाएँ नाममात्र की हैं जिनसे कोई ठोस लाभ नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय

अधिनियम १९५८

[उ० प्र० अधिनियम संख्या ४५, १९५८]

(जैसा कि उत्तर प्रदेश विधानमंडल द्वारा पारित हुआ)

उत्तर प्रदेश के लिये एक कृषि विश्वविद्यालय स्थापित तथा निगमित करने का

अधिनियम

यह इष्टकर है कि कृषि के विकास तथा उत्तर प्रदेश की ग्रामीण जनता के लाभ के लिये एक कृषि विश्वविद्यालय स्थापित और निगमित किया जाय।

अतएव भारतीय गणतंत्र के नवें वर्ष में निम्नलिखित अधिनियम बनाया जाता है।

संक्षिप्त शीर्षनाम तथा प्रारंभ

१—(१) यह अधिनियम, उत्तर प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, १९५८ कहलाएगा।

(२) यह तुरंत प्रचलित होगा।

परिभाषाएँ

२—विषय या प्रसंग में किसी बात के प्रतिकूल न होने पर इस अधिनियम में।

(क) "विद्वत् परिषद्" का तात्पर्य विश्वविद्यालय की विद्वत् परिषद् से है।

(ख) "कृषि" का तात्पर्य भूमि तथा जल के प्रबंध, फसल तथा पशुधन के उत्पादन एवं प्रबंध और ग्रामीण जनता के सुधार के आधारभूत तथा व्यावहारिक विज्ञान से है।

(ग) "बोर्ड" का तात्पर्य विश्वविद्यालय के प्रबंधक बोर्ड से है।

(घ) "फैकल्टी" का तात्पर्य विश्वविद्यालय की फैकल्टी से है।

(ङ) "राज्यपाल" का तात्पर्य उत्तर प्रदेश के राज्यपाल से है।

(च) (सजातीय पदों सहित) "नियत" का तात्पर्य परिनियमों द्वारा नियत से है।

(छ) "पंजीकृत स्नातक" का तात्पर्य इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन पंजीकृत किसी स्नातक से है।

(ज) "राज्य सरकार" का तात्पर्य उत्तर प्रदेश की सरकार से है।

(झ) "परिनियमों" तथा "विनियमों" का तात्पर्य क्रमशः इस अधिनियम के अधीन बनाए गए विश्वविद्यालय के परिनियमों तथा विनियमों से है।

(ञ) "विश्वविद्यालय का छात्र" का तात्पर्य किस ऐसे व्यक्ति से है जो विश्वविद्यालय में यथाविधि स्थापित किसी उपाधि, डिप्लोमा या शिक्षा संबंधी अन्य विशिष्टता के निमित्त किसी पाठ्यक्रम के अध्ययन के प्रयोजन से नामांकित हो।

(ट) "अध्यापक" का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो अध्यापन अथवा अनुसंधान या प्रसार कार्यक्रम के संचालन तथा पथ प्रदर्शन के प्रयोजन के लिये विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त अथवा अभिज्ञात हो और इसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति भी है जो परिनियमों द्वारा अध्यापक घोषित किया जाय और।

(ठ) 'विश्वविद्यालय' का तात्पर्य उत्तर प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय से है।

विश्वविद्यालय

३—(१) विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति तथा प्रथम उप-कुलपति तथा बोर्ड और विद्वत् परिषद् के प्रथम सदस्य, और वे समस्त व्यक्ति, जो एतद्पश्चात् ऐसे पदाधिकारी या सदस्य बनें, जब तक वे उक्त पद पर या सदस्य बने रहें, एतद्द्वारा 'उत्तर प्रदेश कृषि-विश्वविद्यालय' के नाम से एक निगमित संस्था संघटित किए जाते हैं।

(२) विश्वविद्यालय की शाश्वत उत्तराधिकार होगा और उसकी एक सामान्य मुद्रा होगी, तथा उक्त नाम से ही वह वाद प्रस्तुत करेगा और उसके विरुद्ध वाद प्रस्तुत किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय के उद्देश्य

४—विश्वविद्यालय अन्य प्रयोजनों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रयोजनों के निमित्त स्थापित तथा निगमित समझा जायगा :

(क) उत्तर प्रदेश की ग्रामीण जनता को विभिन्न विषयों, विशेषकर कृषि, ग्रामीण उद्योग तथा व्यवसाय और अन्य संबंधित विषयों, में शिक्षा देने के लिये व्यवस्था करना ;

(ख) अनुसंधान कार्य को, विशेषकर कृषि तथा अन्य संबंधित विज्ञानों में, आगे बढ़ाना; तथा

(ग) क्षेत्रीय तथा प्रसार कार्य-क्रम अपनाना ।

विश्वविद्यालय सभी के लिए होगा

५—विश्वविद्यालय, इस अधिनियम तथा परिनियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों के लिये खुला होगा, किंतु इस धारा की किसी बात से यह अपेक्षित न समझा जायगा कि विश्वविद्यालय किसी भी पाठ्यक्रम में निर्धारित संख्या से अधिक विद्यार्थी प्रविष्ट करें ।

विश्वविद्यालय के अधिकार

६—विश्वविद्यालय के निम्नलिखित अधिकार होंगे :

(१) कृषि, ग्रामीण उद्योग तथा व्यवसाय और संबंधित विज्ञानों तथा विद्या की ऐसी अन्य शाखाओं में, जिन्हें विश्वविद्यालय उचित समझे, शिक्षा की व्यवस्था करना ;

(२) अनुसंधान-कार्य और ज्ञान की अभिवृद्धि एवं प्रसार तथा प्रसार-कार्यक्रमों के लिये व्यवस्था करना;

(३) उपाधियों, डिप्लोमाओं तथा शिक्षा संबंधी अन्य विशिष्टताओं की स्थापना करना;

(४) उपाधियों, डिप्लोमाओं तथा शिक्षा संबंधी अन्य विशिष्टताओं के निमित्त परीक्षाओं का आयोजन करना तथा उन्हें ऐसे व्यक्तियों को प्रदान एवं संप्रदान करना—

(क) जिन्होंने किसी पाठ्यक्रम का यथानियत अध्ययन किया हो; या

(ख) जिन्होंने विश्वविद्यालय में या विश्वविद्यालय द्वारा तदर्थ अभिज्ञात किसी संस्था में परिनियमों में उल्लिखित प्रतिबंधों के अधीन अनुसंधान कार्य किया हो ;

(५) परिनियमों में निर्दिष्ट शर्तों के अधीन तथा रीति से सम्मान्य उपाधियाँ अथवा अन्य विशिष्टताएँ प्रदान करना ;

(६) क्षेत्र-कर्मियों तथा अन्य व्यक्तियों को, जो विश्वविद्यालय के छात्र न हों, ऐसे डिप्लोमा प्रदान करना तथा उनके लिये ऐसे व्याख्यानों तथा शिक्षण की व्यवस्था करना जो विश्वविद्यालय निर्धारित करे ;

(७) अन्य विश्वविद्यालयों तथा प्राधिकारियों से ऐसी रीति से तथा ऐसे प्रयोजनों के निमित्त सहयोग करना जो विश्वविद्यालय निर्धारित करे ;

(८) विश्वविद्यालय द्वारा अपेक्षित अध्यापन, अनुसंधान तथा प्रसार के पदों की स्थापना करना तथा उन पदों पर व्यक्तियों की नियुक्ति करना ;

(९) परिनियमों के अनुसार परिषद् वृत्तियाँ (जिनके अंतर्गत यात्रिक परिषद् वृत्तियाँ भी हैं) छात्र-वृत्तियाँ तथा परितोषिक स्थापित और प्रदान करना ;

(१०) विश्वविद्यालय के छात्रों के निवासस्थानों की स्थापना एवं उनका अनुरक्षण ;

(११) ऐसे शुल्क तथा अन्य परिव्यय माँगना और प्राप्त करना जो नियत किए जाँय ;

(१२) विश्वविद्यालय के छात्रों के निवास-स्थान का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करना तथा उनके अनुशासन को विनियमित करना और उनके स्वास्थ्य एवं कल्याण की वृद्धि के लिये प्रबंध करना ;

(१३) प्रशासकीय, कारणिक तथा अन्य आवश्यक पदों का सृजन करना और उन पर नियुक्तियाँ करना; तथा

(१४) विश्वविद्यालय के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अपेक्षित अन्य समस्त कार्य और बातें करना, चाहे वे उपर्युक्त अधिकारों से आनुषंगिक हों या न हों ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरीक्षण

७—(१) राज्य सरकार, किसी ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों द्वारा, जैसा वह आदेश दे, विश्वविद्यालय, उसके भवनों, प्रयोगशालाओं तथा साजसज्जा और विश्वविद्यालय द्वारा अनुरक्षित किसी संस्था का निरीक्षण करा सकती है और साथ ही विश्वविद्यालय के प्रशासन तथा वित्त से संबंधित किसी मामले में उसी प्रकार जाँच करवा सकती है ।

(२) राज्य सरकार प्रत्येक दशा में विश्वविद्यालय को अपने इस आशय का नोटिस देगी कि वह निरीक्षण अथवा जाँच करवाना चाहती है और विश्वविद्यालय को अपना एक प्रतिनिधि नियुक्त करने का अधिकार होगा जिसे उक्त निरीक्षण अथवा जाँच के समय उपस्थित रहने तथा सुनवाई का अधिकार प्राप्त होगा ।

(३) राज्य सरकार उक्त निरीक्षण और जाँच के फल के संबंध में बोर्ड को ऐसे परामर्श के साथ, जो राज्य सरकार कार्यवाही करने के संबंध में दे, संबोधित कर सकती है ।

(४) बोर्ड राज्य सरकार को ऐसी कार्यवाही की, यदि कोई हो, सूचना देगा जो वह ऐसे निरीक्षण अथवा ऐसी जाँच के फल को दृष्टि में रखकर करना चाहे या जो उसने की हो ।

(५) यदि बोर्ड उचित समय के भीतर राज्य सरकार के संतोषानुसार कार्यवाही न करे, तो राज्य सरकार उक्त बोर्ड द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण अथवा अभ्यावेदन पर विचार करके ऐसे निदेश प्रचारित करेगी जो वह उचित समझे और बोर्ड उनका अनुपालन करने के लिए बाध्य होगा ।

विश्वविद्यालय के पदाधिकारी तथा प्राधिकारी

८—विश्वविद्यालय के पदाधिकारी और प्राधिकारी निम्नलिखित होंगे :

(क) विश्वविद्यालय के पदाधिकारी

(१) कुलपति ;
(२) उप-कुलपति ;
(३) लेखानियंत्रक ;
(४) रजिस्ट्रार ;
(५) छात्र-कल्याण का डीन ;
(६) फैकल्टियों के डीन ;
(७) कृषि-प्रयोग-केंद्र-संचालक ;
(८) प्रसार-संचालक और ;
(९) विश्वविद्यालय की सेवा में संलग्न ऐसे अन्य व्यक्ति जो परिनियमों द्वारा विश्वविद्यालय के पदाधिकारी घोषित किए जायं ।

(ख) विश्वविद्यालय के प्राधिकारी

(१) प्रबंधक बोर्ड ;
(२) विद्वत् परिषद् ;
(३) फैकल्टियों के बोर्ड ; तथा
(४) ऐसे अन्य प्राधिकारी जो परिनियमों द्वारा विश्वविद्यालय के प्राधिकारी घोषित किए जायँ ।

कुलपति

९—(१) उत्तर प्रदेश के राज्यपाल विश्वविद्यालय के कुलपति होंगे । वे पदेन विश्वविद्यालय के अध्यक्ष होंगे और उपस्थित रहने पर विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह का सभापतित्व करेंगे ।

(२) कुलपति को ऐसे अन्य अधिकार प्राप्त होंगे जो इस अधिनियम या परिनियमों द्वारा उन्हें दिए जायं ।

बोर्ड का संघटन तथा उसके अधिकार और कर्तव्य

१०—(१) कुलपति इस अधिनियम के प्रारंभ होने के बारह महीनों के भीतर बोर्ड का संगठन करेंगे ।

(२) बोर्ड में निम्नलिखित व्यक्ति होंगे, अर्थात्

पदेन सदस्य

(क) उपकुलपति ;
(ख) कृषि संचालक, उत्तर प्रदेश ;
(ग) शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश ;
(घ) पशुपालन संचालक, उत्तर प्रदेश ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य सदस्य

(ङ) राज्य की विधान सभा के दो सदस्य, जो उक्त विधान सभा द्वारा निर्वाचित होंगे ;

(च) राज्य की विधान परिषद् का एक सदस्य, जो उक्त विधान परिषद् द्वारा निर्वाचित होगा;

(छ) कृषि की शिक्षा तथा उसके विकास में अभिरुचि रखनेवाले दो व्यक्ति, जिन्हें राज्य सरकार नामनिर्दिष्ट करेगी ;

(ज) निम्नलिखित में से प्रत्येक का एक प्रतिनिधि—

(१) दि स्टेट फार्मर्स फोरम ;

(२) दि इंडियन कौंसिल आफ एग्रीकल्चरल एजुकेशन ;

(३) दि यू० पी० इञ्जीनियर्स एसोसियेशन ;

(४) राज्य समाज कल्याण बोर्ड ।

(५) दि यू० पी० कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड तथा ।

(६) पंजीकृत स्नातक ।

प्रतिबंध यह है कि स्टेट फार्मर्स फोरम का प्रतिनिधि ऐसा व्यक्ति होगा जो खेती करता हो, राज्य समाज कल्याण बोर्ड की प्रतिनिधि ऐसी स्त्री होगी जो सरकारी अधिकारी न हो, तथा यू० पी० कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड का प्रतिनिधि ऐसा व्यक्ति होगा जो सरकारी अधिकारी न हो ।

(३) बोर्ड अपना सभापति अपने सदस्यों में से निर्वाचित करेगा ।

(४) बोर्ड के पदेन सदस्यों से भिन्न सदस्यों की पदावधि छः वर्ष की होगी, परंतु बोर्ड का प्रथम संघटन हो जाने पर उस समय चुने हुए कुछ सदस्यों की पदावधि को कम करने के लिये परिनियमों में व्यवस्था की जायगी जिससे कि उसके पश्चात् प्रत्येक दो वर्षों में एक तिहाई या उसके निकटतम सदस्य पदनिवृत्त हों ।

(५) अपने पूर्वाधिकारी की शेष पदावधि ही आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिये चुने गए सदस्य की पदावधि होगी ।

(६) सदस्य बिना वेतन के कार्य करेंगे; परंतु दैनिक भत्ता तथा यात्रिक व्यय पाने के अधिकारी होंगे, जो विश्वविद्यालय के आय व्ययक से दिए जायँगे ।

(७) बोर्ड के अधिकार तथा कर्तव्य निम्नलिखित होंगे—

(क) उप कुलपति द्वारा प्रस्तुत आयव्ययक का अनुमोदन ।

(ख) विश्वविद्यालय के शैक्षिक तथा प्रशासकीय कर्मचारिवर्ग के सदस्यों को नियत रीति से नियुक्त करना ।

(ग) विश्वविद्यालय की संपत्ति तथा निधियों को अपने अधिकार में रखना और उनपर नियंत्रण रखना तथा इस संबंध में कोई सामान्य आदेश प्रचारित करना ।

(घ) किसी चल अथवा अचल संपत्ति के हस्तांतरण को विश्वविद्यालय की ओर से स्वीकार करना ।

(ङ) विशिष्ट प्रयोजनों के लिये विश्वविद्यालय के अधिकार में दी गई निधियों का प्रशासन ।

(च) विश्वविद्यालय के रुपए का विनियोजन ।

(छ) विश्वविद्यालय की सामान्य मुद्रा के आकार तथा प्रयोग का निर्देश करना ।

(ज) ऐसी स्थायी अथवा अस्थायी समितियों की नियुक्ति करना जिन्हें वह अपने कृत्यों के उचित संपादन के लिये आवश्यक समझे ।

(झ) धारा ११ की उपधारा (१) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उप कुलपति को नियुक्त करना ।

(ञ) पूंजीगत सुधारों के लिये धन उधार लेना तथा उसकी वापसी का उपयुक्त प्रबंध करना ।

(ट) ऐसे समय तथा ऐसे स्थानों में, जिसे वह आवश्यक समझे, बैठक करना । किंतु प्रतिबंध यह है कि प्रत्येक दो मास में कम से कम एक नियमित बैठक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँगी, और प्रतिबंध यह भी है कि इसकी नियमित बैठकों में से कम से कम आधी बैठकें विश्वविद्यालय में की जायँगी; और ।

(ठ) इस अधिनियम तथा परिनियमों के अनुसार विश्वविद्यालय से संबंधित सभी मामलों को विनियमित तथा निर्धारित करना तथा ऐसे अधिकारों का प्रयोग करना और ऐसे कर्त्तव्यों का पालन करना जो इस अधिनियम तथा परिनियमों द्वारा उसे दिए जायँ या उस पर आरोपित किए जायँ ।

उपकुलपति

११—(१) उपकुलपति विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक पदाधिकारी होगा । प्रथम उप कुलपति, कुलपति द्वारा चार वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिये तथा ऐसी शर्तों पर नियुक्त किया जायगा जो कुलपति निर्धारित करें । अनुवर्ती उप कुलपति बोर्ड द्वारा नियत रीति से नियुक्त किए जायँगे ।

(२) उपकुलपति की पदावधि चार वर्ष होगी ।

(३) कोई व्यक्ति दो पदावधियों से अधिक के लिये उपकुलपति के पद पर आसीन रहने का पात्र न होगा ।

(४) उपकुलपति की उपलब्धियाँ तथा सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो नियत की जांय और नियुक्ति के पश्चात् उसके हितों के प्रतिकूल उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा ।

(५) उपकुलपति बोर्ड को संबोधित लिखित त्याग पत्र द्वारा अपना पद त्याग सकता है । साधारणतया त्याग पत्र उस दिनांक से जब कि उपकुलपति कार्यभार से मुक्त होना चाहता हो ६० दिन पूर्व बोर्ड के सचिव को दिया जायगा ।

(६) यदि छुट्टी लेने के कारण अथवा पदावधि की समाप्ति से भिन्न किसी अन्य कारण से उपकुलपति का पद रिक्त हो जाय या उसके रिक्त होने की संभावना हो, तो रजिस्ट्रार इस बात की सूचना तुरंत बोर्ड को देगा । ऐसी रिक्ति की पूर्ति यथासंभव उपधारा (१) के उपबंधों के अनुसार की जायगी ।

(७) जब तक कि उपधारा (६) के अधीन रिक्ति की पूर्ति न हो जाय या जब तक कि बोर्ड कार्यवाहक उपकुलपति नाम निर्दिष्ट न करे, तब तक रजिस्ट्रार उपकुलपति के पद के सांप्रतिक कर्त्तव्यों का पालन करेगा ।

उपकुलपति के अधिकार और कर्त्तव्य

१२—(१) उपकुलपति विश्वविद्यालय का मुख्य कार्यपालक तथा शैक्षिक पदाधिकारी होगा और कुलपति की अनुपस्थिति में विश्वविद्यालय के किसी भी दीक्षांत समारोह का सभापतित्व करेगा । वह विद्वत् परिषद् का पदेन सदस्य तथा सभापति होगा और बोर्ड का पदेन सदस्य होगा ।

(२) उपकुलपति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह यह सुनिश्चित करे कि इस अधिनियम तथा परिनियमों के उपबंधों का निष्ठा के साथ पालन किया जाय और, धारा २३ के अधीन कुलपति के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उसे ऐसे सब अधिकार प्राप्त होंगे जो तदर्थ आवश्यक हों ।

(३) उपकुलपति को विद्वत् परिषद् की बैठक बुलाने का अधिकार होगा :

प्रतिबंध यह है कि वह अपने अधिकार को विश्वविद्याललय के किसी अन्य पदाधिकारी को प्रतिनिहित कर सकता है ।

(४) उपकुलपति विश्वविद्यालय के कार्यों पर सामान्य नियंत्रण रखेगा और विश्वविद्यालय में समुचित अनुशासन बनाए रखने के लिये उत्तरदायी होगा ।

(५) उपकुलपति बोर्ड के समक्ष आय-व्ययक तथा लेखा-विवरण प्रस्तुत करने के लिये उत्तरदायी होगा ।

(६) किसी ऐसी आपातिक स्थिति में, जिसमें उपकुलपति के मतानुसार तुरंत कार्यवाही करना आवश्यक हो, वह ऐसी कार्यवाही करेगा जो वह आवश्यक समझे और की गई कार्यवाही का प्रतिवेदन यथाशीघ्र उस पदाधिकारी, प्राधिकारी या अन्य निकाय को देगा, जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा उस मामले में साधारणतया कार्यवाही की जाती, किंतु इस उपधारा को किसी बात से उपकुलपति को कोई ऐसा व्यय करने का अधिकार दिया गया नहीं समझा जायगा, जो समुचित रूप से प्राधिकृत न हो और जिसकी व्यवस्था आय-व्ययक में न की गई हो।

(७) यदि उपधारा (६) के अधीन उपकुलपति द्वारा की गई किसी कार्यवाही से विश्वविद्यालय की सेवा में लगे किसी व्यक्ति पर हानिप्रद प्रभाव पड़ता हो तो वह व्यक्ति उस दिनांक के, जिस पर उसे कार्यवाही की सूचना दी गई हो, तीस दिन के भीतर बोर्ड के समक्ष अपील कर सकता है।

(८) पूर्वोक्त बातों के अधीन रहते हुए, विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों, वृत्तिक कर्मचारिवर्ग तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति, निलंबन और पदच्युति के संबंध में बोर्ड द्वारा दी गई आज्ञाओं को उपकुलपति कार्यान्वित करेगा।

(९) उपकुलपति दीक्षांत समारोह में ऐसे व्यक्तियों को उपाधियाँ प्रदान करेगा जो उन्हें प्राप्त करने के अधिकारी हों किंतु प्रतिबंध यह है कि यदि कुलपति उपस्थित हो तो वह ही कोई या समस्त उपाधियाँ प्रदान करेगा।

(१०) उपकुलपति अध्यापन, अनुसंधान तथा प्रसार के प्रगाढ़ समन्वय तथा एकीकरण के लिये उत्तरदायी होगा।

(११) उपकुलपति ऐसे अन्य अधिकारों का प्रयोग करेगा जो नियत किए जायँ।

लेखा-नियंत्रक

१३—(१) लेखा नियंत्रक विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक पदाधिकारी होगा तथा उपकुलपति द्वारा, बोर्ड के अनुमोदन के अधीन रहते हुए, नियुक्त किया जायगा।

(२) वह बोर्ड का पदेन सचिव होगा तथा उसको देय वेतन और भत्ते वे होंगे जो नियत किए जायँ।

(३) धारा ११ की उपधारा (४), (५) (६) तथा (७) में उल्लिखित, उपलब्धियों से भिन्न सेवा की शर्तों, त्यागपत्र, अस्थायी रिक्तियों की पूर्ति तथा सांप्रतिक कर्तव्यों के पालन की व्यवस्था के संबंध में उपबंध आवश्यक परिवर्तनों सहित लेखा-नियंत्रक के पद के संबंध में लागू होंगे।

(४) लेखा नियंत्रक विश्वविद्यालय की संपत्ति तथा विनियोजित धनराशियों का प्रबंध करेगा और उसकी वित्तीय नीति के संबंध में परामर्श देगा। वह उपकुलपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के निमित्त आय व्ययक तथा लेखा विवरण तैयार करने के लिये उत्तरदायी होगा।

(५) लेखा-नियंत्रक का निम्नलिखित कर्तव्य होगा—

(क) यह सुनिश्चित करना कि विश्वविद्यालय द्वारा, विनियोजन से भिन्न किसी रूप में, कोई ऐसा व्यय न किया जाय जो आयव्ययक में प्राधिकृत न किया गया हो, और ;

(ख) किसी ऐसे व्यय को अस्वीकृत करना जो किसी परिनियम के निबंधनों का उल्लंघन करे, या जिसके लिये परिनियमों द्वारा व्यवस्था अपेक्षित हो, किंतु की न गई हो।

रजिस्ट्रार

१४—(१) रजिस्ट्रार विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक पदाधिकारी होगा तथा उपकुलपति द्वारा बोर्ड के अनुमोदन के अधीन रहते हुए नियुक्त किया जायेगा।

(२) रजिस्ट्रार को देय वेतन तथा भत्ते वे होंगे जो नियत किए जायँ।

(३) रजिस्ट्रार विश्वविद्यालय के अभिलेखों तथा सामान्य मुद्रा की अनुचित अभिरक्षा के लिये उत्तरदायी होगा। वह विद्वत् परिषद् का पदेन सचिव होगा और उसके समक्ष ऐसी समस्त सूचना रखने के लिये बाध्य होगा जो कार्य संपादन के लिये आवश्यक हों। वह विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिये प्रार्थनापत्रों को लेखा तथा समस्त पाठ्यक्रमों, पाठ्यचर्या और अन्य सूचना का, जिसे आवश्यक समझा जाय, स्थायी अभिलेख रखेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका वर्ष ३ (१९८०) १९५८

सर्वोच्च न्यायालय १

(नागपुर से)

अनंत गोपाल शेवरे	—	अपीलकर्ता
	वि०	
बंबई राज्य	—	उत्तरवादी

आपराधिक अपील सं० १७८।१९५७

अ—परिनियमों की व्याख्या—अतीत प्रभावी (रिट्रास्पेक्टिव) होना प्रक्रिया (प्रोसीजर) का परिवर्तित होना—

ब—दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८), धा० ३४२ ए० ११६ सी०—धा० ११६ सी० का प्रभाव—विचाराधीन मामलों में धारा ३४२ ए० लागू होती है।

न्यायमूर्ति जे० एल० कपूर—

मजिस्ट्रेट के न्यायालयमें एक मुकदमा चल रहा था। उस मुकदमे में अभियुक्त ने एक प्रार्थनापत्र दिया कि हमें दं० प्र० संहिता की धारा ३४२ के अनुसार साक्षी के रूप में साक्ष्य देने की अनुमति प्रदान की जाय। मजिस्ट्रेट ने इस प्रार्थनापत्र को अस्वीकार कर दिया। पुनरीक्षण करने पर नागपुर उच्च न्यायालय ने भी इस प्रार्थनापत्र को अस्वीकार कर दिया और मजिस्ट्रेट के निर्णय का स्थिरीकरण किया। नागपुर उच्च न्यायालय के इसी निर्णय और आदेश के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है।

दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम (२६।१९५५) २–१–१९५६ को लागू हुआ। इस निर्णय में इसे संशोधन अधिनियम कहा जायगा और दंड प्रक्रिया संहिता को संहिता। संशोधन अधिनियम के लागू होने के पहले ही अपीलकर्ता का अभियोजन अन्य व्यक्तियों के साथ हो रहा था। २–१–५६ को संशोधन अधिनियम लागू हुआ और १४–१–५६ को अपीलकर्ता ने मजिस्ट्रेट के न्यायालय में एक प्रार्थनापत्र दिया कि संशोधन अधिनियम की धारा ३४२ ए० के अंतर्गत हमें अनुमति प्रदान की जाय कि हमारे विरुद्ध लगाए गए आरोपों को निष्प्रमाणित करने के लिये हम अपनी ओर से साक्षी के रूप में साक्ष्य दें। मजिस्ट्रेट ने इस प्रार्थनापत्र को अस्वीकार कर दिया। नागपुर उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण निवेशित करने पर उच्च न्यालय का विचार यह हुआ कि जो कार्यवाही मजिस्ट्रेट के समक्ष चल रही है वह असंशोधित संहिता के अनुसार होगी और इस प्रकार संशोधित अधिनियम की धारा ३४२ ए० के अनुसार साक्षी रूप में उपस्थित होने का अधिकार अपीलकर्ता को नहीं है।

असंशोधित संहिता के अंतर्गत कोई अभियुक्त साक्षी रूप में उपस्थित नहीं हो सकता था इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा ११८ इसमें लागू नहीं होती थी। संविधान के अनुच्छेद २० (३) में है कि किसी अभियुक्त को अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। संशोधन अधिनियम द्वारा संहिता में धारा ३४२ ए० जोड़ी गई। इस धारा में है कि कोई अभियुक्त आरोपों को निष्प्रमाणित करने के लिये अपनी बचत में साक्ष्य दे सकता है। इसके परंतुक में यह भी कह दिया गया कि अभियुक्त की स्वतःलिखित प्रार्थना के बिना वह साक्ष्य देने के लिए बुलाया नहीं जा सकता और यदि वह साक्ष्य नहीं देता है तो इससे उस पर कोई टीका टिप्पणी नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में संशोधन अधिनियम द्वारा अभियुक्त साक्षी हो सकता है किंतु वह साक्ष्य देने के लिये न तो बाध्य किया जा सकता है और न बुलाया जा सकता है। वह केवल अपनी लिखित प्रार्थना से ही साक्षी हो सकता है और उसके साक्ष्य न देने पर न्यायालय या पक्षों द्वारा उस पर टीका टिप्पणी नहीं की जा सकती।

यहाँ निर्णय के लिए जो प्रश्न है वह यही है कि विचाराधीन मामलों में संशोधन अधिनियम लागू हुआ है कि नहीं। किसी भी व्यक्ति का किसी प्रक्रिया (प्रोसीजर) में निहित अधिकार (वेस्टेड राइट) नहीं है। उसको उस समय केवल निर्धारित प्रकार से अभियोजन या बचाव का अधिकार है। यदि संसद के किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिनियम द्वारा प्रक्रिया का ढंग बदल दिया जाता है तो उसको सिवा बदले हुए ढंग पर चलने के कोई दूसरी उपाय नहीं है। देखिए मैक्सवेल आन इंटरप्रेटेशन आफ स्टेट्यूट्स पृ० २२५ और १९०५ ए० सी० ३९। दूसरे शब्दों में निहित अधिकार से संबंधित विधि की तरह केवल भविष्य प्रभावी न होकर प्रक्रिया विधि (ला आफ प्रोसीजर) का परिवर्तन अतीत प्रभावी होता है।

उत्तरवादी का कहना है कि संशोधन अधिनियम की धारा ११६ सी० में दिए हुए ये शब्द "ऐसी प्रत्येक जांच या अन्वीक्षा का निर्वर्तन उसी प्रकार होगा मानो यह अधिनियम पारित ही नहीं हुआ है" इस बात के द्योतक हैं कि इसके उपबंध विचाराधीन मामलों में लागू नहीं होंगे। किंतु यदि इसकी इस प्रकार व्याख्या की जायगी तो धारा के अंतिम अंश से विरोध होगा जैसे—"उपर्युक्त को छोड़कर इस अधिनियम के उपबंध और उसके द्वारा संशोधन इस अधिनियम के प्रारंभण के बाद निवेशित की गई समस्त कार्यवाहियों में लागू होंगे और उन कार्यवाहियों में भी लागू होंगे जो कि ऐसे प्रारंभण के समय किसी न्यायालय में विचाराधीन थीं"। इसका अर्थ हुआ कि विचाराधीन मामलों में भी यह लागू होगा। यह केवल उन्हीं मामलों में लागू नहीं होगा जो कि स्पष्टरूपेण दे दिए गए हैं।

यदि उत्तरवादी के कहने के अनुसार व्याख्या की जाय तो मुख्य धारा ११६ में प्रयुक्त शब्दों और वाक्यांशों में विरोध होगा और व्याख्या का यह सिद्धांत है कि शब्दों का अर्थ इस प्रकार निकाला जाना चाहिए कि विरोध न पैदा हो। इस प्रकार व्याख्या करने पर यही आता है कि केवल उन धाराओं को छोड़कर जो स्पष्ट रूप से गिना दी गई हैं संशोधन अधिनियम ऐसी कार्यवाहियों में लागू होगा और प्रक्रिया संबंधी विधि के संशोधन के बारे में जो सामान्य सिद्धांत लागू होता है उसके अनुकूल यह है भी। संशोधन अधिनियम या संशोधित संहिता में कहीं कोई ऐसी बात नहीं दी गई है जिससे यह पता चले कि धारा ३४२ ए० उन आपराधिक कार्यवाहियों में लागू नहीं होती जो मजिस्ट्रेट के समक्ष विचाराधीन हैं और जिसमें साक्ष्य का लिखा जाना आरंभ हो चुका है।

हमारे विचार से संशोधन अधिनियम की धारा ११६ में प्रयुक्त शब्दों का सामान्य अर्थ यही निकलता है कि अपीलकर्ता धारा ३४२ ए० का लाभ उठा सकता है। उच्च न्यायालय ने "मानों यह अधिनियम पारित ही नहीं हुआ" का अर्थ लगाने में गलती किया है। हमारे विचार से अपीलकर्ता को अपनी बचत में स्वतः साक्षी होने का अधिकार है और इस प्रकार आरोपों को निष्प्रमाणित करने के लिये अभिसाक्ष्य दिया जा सकता है।

इसलिए अपील स्वीकार की जाती है, नीचे के न्यायालयों का आदेश निराकृत किया जाता है और निर्णय दिया जाता है कि साक्षी होने के लिये अपीलकर्ता द्वारा दिया हुआ प्रार्थनापत्र ठीक था।

अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका वर्ष ३, (१८८०) १९५८

सर्वोच्च न्यायालय २

(कलकत्ता से)

१६ सितंबर १९५८

जफर इमाम, एस० के दास और जे० एल० कपूर न्यायमूर्तिगण।

बिपिन विहारी सरकार तथा अन्य— अपीलकर्तागण

वि०

पश्चिमी बंगाल राज्य — उत्तरवादी

आपराधिक अपीलें सं० १०२ और १०३।१९५८

दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८), धा० ३३९ (१)—धारा ३३९ (१ की प्रयोज्यता (अप्लिकेबिलिटी) धा० ३३९ (१) के अंतर्गत पहले ही मान लिया गया रहता है कि जो क्षमा प्रदान की गई है उसे स्वीकार किया गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायमूर्ति एस० जफर इमाम—

इन अपीलों में अपीलकर्ताओं पर मालचंद के बध का आरोप लगा था। प्रत्येक के विरुद्ध दंड संहिता की धारा ३०२ का आरोप था। सत्र न्यायाधीश के विचार के अनुसार एक ही अभिप्राय से प्रेरित होकर यह बध किया गया इसलिए विपिन विहारी सरकार की दोषसिद्धि धारा ३०२ के अंतर्गत हुई और विष्णुचरण साह की दोषसिद्धि धा० ३०२।३४ के अंतर्गत हुई। सत्र न्यायाधीश ने दोनों अपीलकर्ताओं को मृत्यु दंड दिया। अपीलकर्ताओं ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में इसके विरुद्ध अपील निवेशित किया और सत्र न्यायाधीश ने मृत्युदंड के आदेश के स्थिरीकरण के लिये निर्देश (रेफरेंस) किया। उचन्यायालय ने अपीलकर्तागण को दं० संहिता की धाराएँ ३०२।३४ के अंतर्गत दोषी पाया। तद्नुसार उचन्यायालय ने मृत्युदंड के आदेश का स्थिरीकरण किया।

अभियोजन के कहने के अनुसार ताराचंद की कपड़े की एक बहुत भारी दूकान थी। वह अपने दो लड़कों पृथ्वीराज और मालचंद (मृतक) के साथ रहकर व्यापार करता था। घटना के दिन ताराचंद राजस्थान गया था और पृथ्वीराज फलकटा हाट में किसी काम से गया था। इस प्रकार उस दिन दूकान पर मालचंद अकेले था। साढ़े आठ बजे रात के लगभग जब मालचंद दूकान के पिछले हिस्सेवाले कमरे में बैठकर रोकड़ गिन रहा था उस उमय वर्तमान अपीलकर्तागण सनातनदास के साथ (जो अन्वीक्षा (ट्रायल) के समय छोड़ दिया गया) कुछ कपड़ा खरीदने के वचार से आए और पुकारा। मालचंद रोकड़ को वहीं छोड़कर ग्राहकों के पास आया। ग्राहकों ने कपड़ा पसंद किया और तब वे सब बंडलों में बाँध दिए गए। दो कैशमेमो काटकर निकाले गए पर तीसरे कैशमेमो के निकालने के पहले ही अपील कर्ताओं ने मालचंद पर एक भारी तेज धारदार हथियार से प्रहार किया। गरदन धड़ से अलग हो गया। ठीक उसी समय एक पड़ोसी मालचंद की दूकान पर अचानक आ पहुँचा। उसके आने से ये लोग इतना डर गए कि तुरत भागे। रुपया जो सेफ में खुला ही पड़ा था ज्यों का त्यों था, चोरी नहीं गया। सेफ़ से रुपया चुराने के विचार से मालचंद का बध किया गया।

१८ दिसंबर की यह घटना है। २५ दिसंबर को मालचंद की दूकान के पास की एक झाड़ी से पुलिस ने तलवार, गड़ासा आदि अनेक हथियारों को प्राप्त किया। इन हथियारों पर मनुष्य के रक्त के धब्बे थे। उस समय दूकान में ३६१३ रुपया रोकड़ में था और ८¾ तोला सोना था। इस प्रकार धनराशि पर्याप्त थी और यदि वह पड़ोसी अचानक न आ पहुँचा होता तो अपीलकर्तागण मालचंद का बध करने के बाद उसे चुरा ले गए होते।

जैसा उच्च न्यायालय ने कहा है अपीलकर्तागण की दोषसिद्धि पारिस्थितिक साक्ष्य पर अवलंबित है। उच्चन्यायालय ने विष्णुचरण साह की दोष स्वीकृति (कनफेसन) पर निर्भर इसलिए नहीं किया कि वह इच्छापूर्वक नहीं थी। इस पर विचार करने के पहले दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ३३७ के अंतर्गत क्षमा प्रदान करने के संबंध में अपीलकर्ताओं के इस कथन पर विचार करना है कि अभियोजन ने दंड संहिता की धारा ३३६ के उपबंधों का पालन नहीं किया है।

अपीलकर्ताओं की ओर से कहा गया कि चूँकि दं० प्र० संहिता की धारा ३३६ का पालन नहीं किया गया इसलिए सारी अन्वीक्षा (ट्रायल) दोषपूर्ण हो गई। तात्पर्य यह कि विष्णु को क्षमा प्रदान की गई थी इसलिए उसकी अन्वीक्षा विपिन विहारी सरकार अपीलकर्ता के साथ नहीं की जा सकती थी। इस संबंध में तथ्य इस प्रकार हैं कि अभियोजन की ओर से एक प्रार्थनापत्र दिया गया कि विष्णु अभियुक्त को दं० प्र० संहिता की धारा ३३७ के अंतर्गत भेदी साक्षी (अप्रूवर) बना दिया जाय। धारा ३३६ (१) में है कि भेदी साक्षी को जब क्षमा प्रदान की जाय और अभियुक्त उसे स्वीकार कर ले और स्वीकार करने के बाद जब उस व्यक्ति के बारे में जन अभियोजक (पब्लिक प्रासिक्यूटर) प्रार्थनापत्र देता है कि वह जानबूझकर आवश्यक तत्व को छिपाता है या झूठा साक्ष्य देता है या जिस शर्त पर क्षमा प्रदान की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई थी उस शर्त का पालन नहीं करता है तो जिस अपराध के लिये उसे क्षमा प्रदान की गई थी या किसी संबद्ध अन्य अपराध के लिये यदि वह दोषी पाया जाय तो उसकी अन्वीक्षा हो सकती है। इस उपधारा के परंतुक (प्राविजो) में है कि ऐसे व्यक्ति की अन्वीक्षा दूसरे अभियुक्त के साथ नहीं की जा सकती और अन्वीक्षा के बीच में इस व्यक्ति को यह दिखलाने का अधिकार है कि जिस शर्त पर क्षमा प्रदान की गई थी उस शर्त का पालन हमने किया है।

इस धारा के उपबंध से यह स्पष्टरूप से प्रकट होता है कि इसमें यह पहले मान लिया जाता है कि जिस व्यक्ति को क्षमा प्रदान की गई है उसने उसे स्वीकार कर लिया है। स्वीकार करने के बाद ही अन्य बातें आएँगी, केवल क्षमा प्रदान करना पर्याप्त नहीं है। धारा ३३६ लागू होने के लिये यह आवश्यक है कि क्षमा प्रदान की गई हो और उस व्यक्ति ने उसे स्वीकार किया। स्वीकार करने के बाद यदि जन अभियोजक प्रमाणित करता है कि उसके विचार से उक्त व्यक्ति ने उस अपराध के संबंध में जानबूझकर कोई आवश्यक बात छिपाई है, या झूठा साक्ष्य दिया है या क्षमा प्रदान जिन शर्तों पर की गई है उनका पालन नहीं किया है तब धारा ३३६ लागू होती है और उस व्यक्ति की अन्वीक्षा उस अपराध के संबंध में की जा सकती है। इस मामले में विष्णु अभियुक्त ने भेदी साक्षी होना स्वीकार नहीं किया वरन् इसके विपरीत उसने बयान दिया कि जो मैंने दोष स्वीकृति की वह पुलिस द्वारा पीटे जाने के कारण की, इच्छा से दोष स्वीकृति नहीं किया। कोई प्रमाण नहीं है कि जो क्षमा प्रदान की गई उसे विष्णु ने स्वीकार किया। ऐसी परिस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि धारा ३३७ के अंतर्गत प्रभावपूर्ण क्षमा प्रदान किया गया था इसलिए धारा ३३६ लागू नहीं होगी। हमारे विचार से अपीलकर्ताओं ने इस संबंध में जो अनुरोध किया है वह मानने योग्य नहीं है।

अब पारिस्थितिक साक्ष्यों पर विचार करना है। पारिस्थितिक साक्ष्यों पर ही उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि किया था। इन साक्ष्यों का सारांश इस प्रकार है:—

१—यह निश्चित है कि अपीलकर्तागण स्थानीय व्यक्ति थे जो मालचंद की दूकान के निकट रहते और काम करते थे। इसलिए वे उस दिन की दूकान की स्थिति जानते थे और जानने के लिये उन्हें साधन और अवसर दोनों प्राप्त था।

२—हत्या के ठीक पहले अपीलकर्ताओं का सनातन से मिलना।

३—मालचंद की दूकान की ओर उनके बढ़ने के संबंध में साक्ष्य।

४—इस साक्ष्य का होना कि मालचंद की हत्या के ठीक पहले वे लोग उसकी दूकान में उपस्थित थे।

५—इस साक्ष्य का होना कि मालचंद की दूकान की ओर से विपिन विहारी सरकार तेजी से भागा आ रहा था और उसके ठीक पीछे पीछे विष्णुचरण साह अपीलकर्ता था।

६—अपीलकर्ताओं की उँगलियों और हथेलियों पर ताजे घावों के संबंध में साक्ष्य का होना।

७—विष्णु चरण साह की कमीज पर मनुष्य के रक्त के धब्बों के होने के संबंध में साक्ष्य और विपिन विहारी के रैपर पर जले हुए उन स्थानों पर छिद्र जहाँ पर रक्त पाए गए थे।

८—विष्णु चरण साह के हस्ताक्षर के कैशमेमो।

९—मालचंद के घावों की प्रकृति से डाक्टर की राय कि पहले किसी ने पटक दिया और उसके बाद दूसरे व्यक्ति ने गरदन पर प्रहार किया।

इन पारिस्थितिक साक्ष्यों पर विचार करने से प्रतीत हुआ कि अपीलकर्ताओं ने इस हत्या में भाग लिया। संपूर्ण पारिस्थितिक साक्ष्यों पर विचार करने से अपील कर्ताओं के दोषी होने के बारे में संदेह नहीं है।

हमारे विचार से उच्च न्यायालय का यह निर्णय ठीक था कि अपीलकर्तागण दंड संहिता की धा० ३०२।३४ के अंतर्गत दोषी हैं। परिस्थिति को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि मृत्यु दंड का दंड अधिक है। अपीलें तदनुसार उत्सर्जित की जाती है।

अपीलें उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका वर्ष ३, (१९८०) १९५८
सर्वोच्च न्यायालय ५
(पटना से)

१९ सितंबर, १९५८

एस० जफर इमाम, एस० के० दास और जे० एल० कपूर न्यायमूर्ति गण।

रतन गोंड़ — अपीलकर्ता

वि०

बिहार राज्य — उत्तरवादी

आपराधिक अपील सं० ७६।१९५८

अ – साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धा० ३२ और ३३ वह बयान जो बयान देनेवाले की मृत्यु के कारण के संबंध में नहीं है और न्यायिक कार्यवाही के बीच में अभिलिखित भी नहीं है उसकी प्रति ग्राह्यता (ऐडमिसिबिलिटी)

ब – भारतीय संविधान अनुच्छेद १३६–तथ्यों के समवर्ती (कांकरेंट) निष्कर्ष में हस्तक्षेप।

स – साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धा० २४– न्यायातिरिक्त दोष स्वीकृति (एक्स्ट्राजुडिशयल कानफेशन)—इसका साक्षियक महत्व।

द—साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धा० २४ स्वेच्छा से दोष स्वीकृति।

न्यायमूर्ति एस० के० दास—

यह अपील विशेष अनुमति पर निवेशित की गई है। रतन गोंड़ की अन्वीक्षा दंड संहिता की धारा ३०२ के अंतर्गत हुई और राँची के अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त द्वारा दोष सिद्ध होने पर उसे मृत्यु दंड का आदेश दिया गया। विद्वान् अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त ने मृत्यु दंड के आदेश के स्थिरीकरण के लिये दं० प्र० संहिता की धारा ३७४ के अंतर्गत इसके अभिलेख को पटना उच्चन्यायालय में भेजा और रतन गोंड़ ने भी उच्चन्यायालय में अपील निवेशित किया। पटना उच्चन्यायालय के विभागीय न्यायासन ने अपील और निर्देश (रेफरेंस) की सुनवाई एक साथ किया और निर्देश को स्वीकार करके तथा अपील को उत्सर्जित करके अपीलकर्ता को दिए गए मृत्यु दंड के आदेश का स्थिरीकरण किया। अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति के लिये प्रार्थना किया और विशेष अनुमति प्राप्त होने पर यह अपील निवेशित की।

इसके तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलकर्ता राँची जिले के एक पहाड़ी गाँव का रहनेवाला था। उस गाँव में मुसम्मात जात्री नाम की एक विधवा स्त्री रहती थी। जात्री को दो लड़कियाँ थीं। एक का नाम वैशाखी था और दूसरी का अगहनी। वैशाखी की आयु लगभग ९ वर्ष थी और अगहनी की लगभग ५ वर्ष। ७ मई १९५७ को ये दो बहनें वैशाखी और अगहनी अपने गाँव के निकटवर्ती पहाड़ी जंगल में जंगली बेर तोड़ने के लिये गई हुई थीं। मुसम्मात जात्री भी उस दिन दूसरी जगह जंगली बेर तोड़ने के लिये गई हुई थी। जात्री उस सवेरे जब घर से रवाना हुई थी उस समय उसकी दोनों लड़कियाँ घर पर ही थीं। मुसम्मात जात्री जब दोपहर के समय घर पर लौटी तो उस समय अगहनी अकेले ही घर पर मिली। मु० जात्री ने जब अगहनी से वैशाखी के बारे में पूछा तो उसने कुछ बयान दिया और उस दिन तथा दूसरे दिन भी अगहनी ने दूसरे दूसरे लोगों से इसके बारे में बतलाया। अपीलकर्ता की ओर से इसके बारे में आपत्ति की गई है कि यह बयान न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा ३२ और न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा ३३ के अंतर्गत ही प्रतिग्राह्य (ऐडमिसिबुल) है। इस कथन से हम भी सहमत हैं। इसलिए इसके बारे में अन्य बातें छोड़ दी जाती हैं। शाम को भी जब वैशाखी नहीं लौटी तो मु० जात्री उस पहाड़ी की ओर गई पर कहीं उसका कुछ पता नहीं चला। रूपराम को समाचार भेजा गया कि वैशाखी का पता नहीं चल रहा है। रूपराम इन दोनों लड़कियों का चाचा था जो एक दूसरे गाँव में खपरैल बनाने के लिये गया हुआ था। रूपराम ८ मई को आया। इसी बीच दलपत्त साय मुखिया और गाँव के सोहार चौकीदार को भी बतला दिया गया था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशाखी का पता नहीं चल रहा है। अगहनी रूपराम और इन गाँववालों को पहाड़ी के पास के सोते और कुएँ के पास ले गई। इन गाँववालों ने सोते से थोड़ी दूर पर एक लाश पाया जिसमें सिर नहीं था। मु० जात्री ने यह पहचान दाहिने हाथ की ५ लाल चूड़ियों से की जिसे वैशाखी पहने हुए थी तथा श्वेत सारी जिसका किनारा लाल था तथा बाँए हाथ की दो लाल चूड़ियाँ बाँए हाथ की पीतल की अँगूठी और एक माला के कुछ दाने से जिसे वैशाखी पहने हुए थी जात्री ने पहचान की। दलपतसाय ने लाश को देखते रहने के लिये गाँववालों को सिपुर्द किया और वे स्वयं अपीलकर्ता के घर पर गए पर वह घर पर नहीं मिला। उन्होंने तब चौकीदार और रूपराम को थाने पर भेजा जो वहाँ से ४३ मील की दूरी पर था। थाने पर रूपराम ने यह सूचना दिया और इसे पुलिस के सहायक थानेदार ने लिखा। इस सूचना में अगहनी के दिए हुए बयान की ओर संकेत था और उस समय तक जो वस्तुएँ प्राप्त हो गई थीं उनकी भी चर्चा थी। उसी दिन बृहस्पतिवार को अपीलकर्ता अपने बहनोई के घर एक दूसरे गाँव में पकड़ा गया। दलपत साय मुखिया ग्राम पंचायत, कृष्णचंद सिंह सरपंच ग्राम पंचायत और पंचायत के एक सदस्य प्रदुमन सिंह ने उससे पूछा और कहा जाता है कि उसने न्याया-तिरिक्त दोष स्वीकृति (एक्स्ट्राजुडिशियल कनफेशन) किया कि रुपए के लालच से हमने वैशाखी बच्चे का बध कर दिया क्योंकि लुर्की नदी पर जो ठीकेदार पुल बनवा रहा है उसने कहा था कि जो मुझे मनुष्य का एक सिर लाकर देगा उसे मैं ८० रु० दूँगा। अपीलकर्ता गाँववालों द्वारा तब तक रोक रखा गया जब तक कि सहायक थाने-दार आ नहीं पहुँचे। सहायक थानेदार को लोग वहाँ लिवा ले गए जहाँ पर बिना सिर की लाश पड़ी थी। उस स्थान पर उस माला के यत्र तत्र बिखरे हुए २६ दाने मिले जिसे वैशाखी पहने हुए थी। थानेदार ने अपील कर्ता को पकड़ लिया और उसके घर की तलाशी ली। तलाशी में 'बलुवा' नामक एक तेज धारदार हथियार प्राप्त हुआ। उस पर कुछ रक्त के धब्बे थे किंतु उनके बिगड़ जाने से उसके मूल का पता नहीं चलता था। उससे पूछे जाने पर कि वैशाखी का सिर कहाँ पर है कहा जाता है कि अपीलकर्ता सहायक थानेदार को उस स्थान पर लिवा ले गया जो लाश पाए जानेवाले स्थान से १०० गज की दूरी पर था। उस स्थान पर रक्त के धब्बे वाले कुछ बालों के गुच्छे मिले। सहायक थानेदार ने इसे ले लिया। ये बालों के गुच्छे स्त्री के सिर के बाल प्रतीत होते थे और रासायनिक परीक्षक ने कहा था कि ये स्त्री के सिर के बाल प्रतीत होते हैं। कुछ और छानबीन करने के बाद अपीलकर्ता अन्वीक्षा के लिये भेजा गया। मजिस्ट्रेट द्वारा जाँच करने के बाद सत्र न्यायाधीश के समक्ष अन्वीक्षा के लिये उसका उपार्पण (कमिटल) हो गया।

अपनी बचत में अपीलकर्ता का कहना था कि वह झूठे ही फँसा दिया गया है। उसने इस बात से इनकार किया कि पहाड़ी जंगल में मैंने वैशाखी की हत्या की है। उसने यह भी अस्वीकार किया कि हमने दलपत साय, कृष्णचंद्र सिंह और प्रदुमन सिंह के सामने न्यायातिरिक्त दोष स्वीकृति (एक्स्ट्राजुडिशियल कनफेशन) किया है। उसने इनकार किया कि हमारे घर से रक्त के धब्बोंवाला कोई हथियार प्राप्त हुआ है। उसने यह भी इनकार किया कि उस दिन मैं अपने घर पर उपस्थित नहीं था या मैं अपने बहनोई के घर से पकड़ा गया।

विद्वान् अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त और उच्च न्याया-लय दोनों का निर्णय था कि अपीलकर्ता के विरुद्ध निर्णय दो बातों पर निर्भर करता है। १—पारिस्थितिक साक्ष्य और। २—न्यायातिरिक्त दोष स्वीकृति। निर्णय था कि यह दोष स्वीकृति स्वेच्छा से की गई थी किसी दबाव आदि से नहीं। उनका निर्णय था कि यों तो दोष स्वीकृति से इनकार किया गया है किंतु यह दोष स्वीकृति पारिस्थितिक साक्ष्य से इस प्रकार संपोषित (करोबोरेटेड) है कि सिवा इसके कि अपीलकर्ता ने वैशाखी की हत्या कुछ रुपए के लालच से की कोई और युक्तिसंगत बात नहीं आती।

इसमें झगड़ा नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद १३६ के अंतर्गत विशेष अनुमति पर निवेशित की गई इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपील में नीचे के दोनों न्यायालयों के तथ्य के प्रश्न पर के समवर्ती निष्कर्ष को कुछ प्रतिबंधों के साथ मानना हमारे लिये अनिवार्य है। अपीलकर्ता के वकील श्री आयंगर ने यहाँ ३ बातों पर बहुत जोर दिया है कि जो कहा जाता है कि अपीलकर्ता ने दोष स्वीकृति की वह दोष स्वीकृति साक्ष्य में प्रतिग्राह्य नहीं है। दूसरे, यदि प्रतिग्राह्य हो तो भी यह सत्य नहीं है। तीसरे, पारिस्थितिक साक्ष्य के संबंध में भी नीचे के न्यायालयों ने अप्रतिग्राह्य साक्ष्य पर निर्भर किया है, जैसे यह दिखलाने के लिये कि अपीलकर्ता बैशाखी के साथ हत्या के पहले देखा गया अगहनी के बयान पर निर्भर किया गया। दूसरे शब्दों में अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा दोष सिद्धि प्रमाणित करने के लिये जितने सुदृढ़ साक्ष्य की आवश्यकता होती है उतना दृढ़ साक्ष्य यहाँ है नहीं।

वैशाखी की हत्या हुई इसमें संदेह नहीं है। हत्या होने की बात अनेक महत्वपूर्ण साक्ष्यों द्वारा अच्छी तरह प्रमाणित हो चुकी है। इसलिए नीचे के न्यायालय ने जो केवल एक प्रश्न पर विचार किया कि क्या इस हत्या में प्रार्थी का हाथ था वह ठीक था।

इस संबंध में अपीलकर्ता के विद्वान् वकील की उपर्युक्त आपत्तियों पर विचार करना है। इस संबंध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हम अपीलकर्ता के इस कथन से सहमत हैं कि अगहनी का बयान जो अगहनी कि घटना के कुछ ही महीने बाद मर गई और उसका बयान किसी न्यायिक कार्यवाही में नहीं लिखा जा सका साक्ष्य में प्रतिग्राह्य नहीं है। यह साक्ष्य निश्चय ही साक्ष्य अधिनियम की धारा ३३ के अंतर्गत नहीं आ सकता क्योंकि यह किसी न्यायिक कार्यवाही में नहीं था। केवल धारा ३२ (१) इसमें लागू हो सकती है किंतु यह उपबंध भी उस बयान से संबंध रखता है जो बयान देनेवाले व्यक्ति की मृत्यु के कारण के वे संबंध में हो या उन व्यवहारों की किसी ऐसी परिस्थिति से संबंधित हो जिसके परिणाम स्वरूप उसकी मृत्यु हुई हो। यहाँ इस मामले में अगहनी का बयान उसकी मृत्यु के कारण से संबंध नहीं रखता अथवा उसकी मृत्यु से संबंधित किसी परिस्थिति से संबंध नहीं रखता वरन् इसके विपरीत यह बयान उसकी बहन की मृत्यु से संबंध रखता है। इसलिए हमारे विचार से यह बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा ३२ (१) के अंतर्गत नहीं आता। सरकार के वकील ने भी मान लिया है कि धारा ३२ (१) इसमें लागू नहीं होती।

अगहनी का बयान निकाल देने पर अपीलकर्ता के विरुद्ध दो प्रकार के साक्ष्य रह जाते हैं १—न्यायातिरिक्त दोष स्वीकृति और २—पारिस्थितिक साक्ष्य। पारिस्थितिक साक्ष्य में तलाशी में रक्त के धब्बेवाला 'बलुवा' की प्राप्ति, रक्त के धब्बोंवाले बालों के गुच्छों की प्राप्ति और अपीलकर्ता की अनुपस्थिति इत्यादि अनेक परिस्थितियाँ हैं। न्यायातिरिक्त दोष स्वीकृति के संबंध में दो प्रश्न पैदा होते हैं—क्या यह स्वेच्छा से थी और यदि यह स्वेच्छा से थी तो क्या यह सत्य थी? अपीलकर्ता ने इनकार किया था कि हमने कोई दोष स्वीकृति की किंतु यहाँ पर हमें इस निरपेक्ष प्रश्न पर विचार नहीं करना है कि यदि दोष स्वीकृति स्वेच्छा से की गई या सत्य पाई जाय तो इस पर दोष सिद्धि हो सकती है कि नहीं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि प्रायः और सावधानी के लिये ऐसी दोष स्वीकृति के लिये न्यायालय तात्विक संपोषण (करोबोरेशन) की माँग करता है। यह संपोषण ऐसा होना चाहिए जो अपराधी का संबंध प्रश्नगत् अपराध से स्थापित कर दे। यहाँ वास्तविक प्रश्न एकमात्र यही है कि दोष स्वीकृति यदि स्वेच्छा से की गई और सत्य पाई जाती है तो अपराधी के विरुद्ध प्रमाणित पारिस्थितिक साक्ष्य इसका पर्याप्त संपोषण करते हैं कि नहीं।

हमें पहले देखना है कि दोष स्वीकृति स्वेच्छा से की गई थी कि नहीं। साक्ष्य अधिनियम की धारा २४ में है कि आपराधिक कार्यवाही में अभियुक्त द्वारा दोष स्वीकृति उस समय असंबद्ध (इरेलवेंट) समझी जाती है जब कि न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि यह दोष स्वीकृति अभियुक्त के विरुद्ध आरोप के संबंध में अधिकारी व्यक्ति की ओर से किसी साम-दाम-दंड के कारण की गई है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न्यायालय को जब यह प्रतीत होता है कि यह साम-दाम-दंड ऐसा है कि इससे अभियुक्त के मन में यह मान लेने का युक्तिसंगत आधार हो जाता है कि दोष स्वीकृति द्वारा उसके विरुद्ध कार्यवाही के संबंध में उसे कोई लाभ होगा या उससे कोई सांसारिक ढंग की बुराई दूर होगी तो ऐसी स्थिति में दोष स्वीकृति असंबद्ध (इरेलवेंट) होती है।

इसके लिये अपीलकर्ता के विद्वान् वकील के इस कथन से मैं सहमत होता हूँ कि दलपत साय, कृष्णचंद सिंह और प्रदुमन सिंह बिहार पंचायत राज अधिनियम के अंतर्गत धारा २९ के अंतर्गत अधिकारी व्यक्ति (परसन इन अथारिटी) में आते हैं। किंतु प्रश्न यह है कि क्या वह दोष स्वीकृति इनकी ओर से साम-दाम-दंड के फल स्वरूप की गई है और वह आरोप के संबंध में है और न्यायालय को उसे असंबद्ध पाने के लिये क्या उपर्युक्त परिस्थितियाँ हैं ? नीचे के न्यायालयों ने इसका स्पष्ट नकारात्मक उत्तर दिया है। हमने उपर्युक्त तीनों साक्षियों के साक्ष्य का परीक्षण किया है। दलपतसाय के बयान में है कि उससे लगभग २ घंटे तक प्रश्न किया गया परंतु प्रश्न लगातार नहीं किया गया। उसे भोजन दिया गया और तब उससे प्रश्न किया गया तो वह थोड़ी देर तक मौन रहा और तब कहा कि हमने उस लड़की की हत्या की है क्योंकि उक्त ठेकेदार ने मनुष्य के सिर के लिये ८० रु० देने को कहा था। न्यायातिरिक्त दोष स्वीकृति को प्रमाणित करने के लिये हमने उपर्युक्त तीनों साक्षियों के साक्ष्य का जब परीक्षण किया तो नीचे के न्यायालयों के निर्णय से भिन्न मत प्रकट करने के लिये कोई आधार नहीं मिला। श्री आयंगर ने १८९३ २ क्वींस बेंच १२ को दिखलाया। यह एक गबन का मुकदमा था। इसमें कंपनी के अध्यक्ष ने अभियुक्त के भाई से कहा था कि 'तुम्हारे भाई के लिये यही अच्छा होना कि बयान दे दे।' दोष स्वीकृति के समय अभियुक्त जानता था कि हमारे भाई से इस संबंध में उपर्युक्त बात कही गई है। इसी लिए इसमें न्यायमूर्ति केव ने कहा था कि अभियोजन ने यह प्रमाणित नहीं किया है कि दोष स्वीकृति स्वेच्छा से की गई है तथा स्वतंत्र है। उन्होंने यह भी कहा था कि उस दोष स्वीकृति पर संदेह करने के लिये पर्याप्त कारण है जो पश्चाताप के कारण तो समझी जाती है पर बाद में अभियुक्त उससे हट जाता है। यह सत्य है कि इस मामले में अभियुक्त पहलेवाली दोष स्वीकृति से हट गया किंतु उपर्युक्त रुलिंग में जो परिस्थिति थी वह इसमें नहीं है। ग्रामीण स्वयं सेवक दल द्वारा उपर्युक्त अपने बहनोई के घर से पकड़कर लाया गया और गाँव के अधिकारियों के समक्ष उसने दोष स्वीकृति की। केवल एक बात पर बहस की गई है कि अभियुक्त जब अधिकारियों के समक्ष लाया गया और जब उसने दोष स्वीकृति की उस बीच २ घंटा समय बीत चुका था। इसके लिए भी आयंगर ने ए० आई० आर० १९४० मद्रास १३६ पर निर्भर किया। इसमें पुलिस के अधीक्षक सुपरिंटेंडेंट ने अभियुक्त से ४ घंटे तक रात्रि में प्रश्न किया था और २ घंटे तक सवेरे। इस संबंध में निर्णय हुआ था कि इसमें स्पष्ट रूपेण पुलिस विनियमन का उल्लंघन किया गया। इतनी अधिक देर तक लगातार इस मामले में प्रश्न नहीं पूछा गया था। दूसरा निर्णय जिसपर श्री आयंगर ने ध्यान दिलाया है वह ए० आई० आर० १९३४ लाहौर ४१७ है। किंतु उसके तथ्य इससे भिन्न थे। इस प्रकार उक्त न्यायातिरिक्त दोष स्वीकृति के संबंध में साम-दाम-दंड का तनिक भी आभास नहीं मिलता।

दोष स्वीकृति की सत्यता के संबंध में कोई बात ऐसी नहीं बतलाई गई जिससे यह प्रतीत हो कि इसमें कुछ असत्य बयान था। यों तो अभियोजन ने यह प्रमाण नहीं दिया कि जो ठेकेदार लुर्की नदी पर पुल बनवा रहा है उसने मनुष्य के सिर के लिए ८० रु० देने को कहा था किंतु यह बात ऐसी है कि कोई ठेकेदार इसे स्वीकार नहीं करेगा कि हमने ऐसा कहा था चाहे उसने कहा भले ही हो। साधारणतया कोई न तो मनुष्य के सिर की माँग करता है और न तो कोई ऐसी माँग स्वीकार करता है, यह बात हम मानते हैं किंतु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इस मामले में आदिम निवासी हैं जिनमें अभी भी अंधविश्वास की भावना भरी पड़ी है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१८८०) १९५८

इला० उच्च न्या० १

न्यायमूर्ति बी० आर० जेम्स

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० २५५६। ९५८—

१३ नवंबर १९५८

कुमारी आशालता — (प्रार्थी)

वि०

आचार्य मेरठ कालेज, मेरठ— विपक्षी

आगरा विश्वविद्यालय अधिनियम तथा अध्यादेश (आर्डिनेंस) अध्याय २०, नियमावली—शिक्षा संस्था में कोई विद्यार्थी अधिकार के बल पर प्रवेश नहीं पा सकता—

न्यायमूर्ति जेम्स --

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह लेख प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है। यों तो सभी की यह इच्छा होती है कि देश में सभी लड़कों और लड़कियों को जैसा वे चाहते हैं शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था हो किंतु यहाँ प्रमुख प्रश्न केवल यही है कि जिस कक्षा में वह लड़की या लड़का प्रवेश पाना चाहता है उसमें भर्ती करने के लिये क्या उस विद्यालय को बाध्य किया जा सकता है ?

तथ्य इस प्रकार है कि प्रार्थी कुमारी आशालता मेरठ के श्री ओम्प्रकाश गुप्त की पुत्री है। कुमारी आशालता मेरठ कालेज की छात्रा थी। मेरठ कालेज आगरा विश्वविद्यालय से संबंधित है। उसने १९५७ में बी० एस सी० परीक्षा उत्तीर्ण किया। १९५८ की एम० एस सी० प्रथम वर्ष की परीक्षा में वह सफल नहीं हुई। १९५८-५९ के सत्र के लिये उसी कक्षा में पुनः प्रवेश पाने के लिये उसने प्रार्थनापत्र दिया तो प्राधिकारियों ने उसे भर्ती नहीं किया। इसका कारण यह था कि विज्ञान की कक्षाओं में व्यावहारिक शिक्षा का महत्व उतना ही होता है जितना सैद्धांतिक का और विज्ञान की प्रयोगशाला में केवल ८ विद्यार्थियों के लिये सामान था। इसलिए अधिकारियों ने उपयुक्त विद्यार्थी की भर्ती कर ली और प्रार्थी कुमारी आशालता को बतलाया गया कि अब उसकी भर्ती के लिये स्थान रिक्त नहीं है। कुमारी आशालता के पिता ने कालेज के आचार्य को कई पत्र लिखा पर जब उन्होंने उसकी भर्ती नहीं की तो कुमारी आशालता ने इस न्यायालय में परमादेश लेख (रिट आफ मैंडमस) जारी करने की प्रार्थना की है कि आचार्य को आदेश दिया जाय कि वे उसे एम० एस सी० प्रथम वर्ष के चालू सत्र में भर्ती कर लें।

इसमें प्रार्थी तभी सफल हो सकती है जब दो बातें प्रमाणित हो जाँय, एक यह कि जिस कक्षा में वह चाहती थी उस कक्षा में प्रवेश पाने का उसे अधिकार था और दूसरा यह कि आचार्य का यह विधिक कर्तव्य (लीगल ड्यूटी) था कि उसे उस कक्षा में भर्ती करें।

उसके विद्वान् वकील एक भी शर्त पूरी करनेवाला प्रमाण नहीं दे सके। उसके कथनानुसार यदि इस प्रकार का कोई अधिकार और कर्तव्य था तो वह आगरा विश्वविद्यालय अधिनियम या तदंतर्गत निर्मित परिनियम, अध्यादेश या विनियम (रेगुलेशंस) में ही हो सकता है। अधिनियम में ऐसी कोई बात नहीं दी गई है। विद्वान् वकील ने अध्यादेश का अध्याय २० नियम ३ दिखलाया किंतु उसके अनुसार वह कालेज का मान्य सदस्य तब होती जब वह आचार्य द्वारा 'स्वीकार' (ऐक्सेप्ट) की गई होती। वह स्वीकार नहीं की गई है इसलिए उपबंध के अनुसार वह कालेज का मान्य सदस्य नहीं है। विद्वान् वकील ने अध्यादेश का अध्याय १६ बी० नि० २ (२) दिखलाया पर नियम ५ के पढ़ने से पता चलता है कि यह भूतपूर्व विद्यार्थियों के लिये है। इस नियम के अनुसार प्रार्थी वार्षिक परीक्षा में बैठ सकती है किंतु चूँकि वह कक्षा में नियमित रूप से भर्ती होकर पढ़ना चाहती है इसलिए वह उपबंध यहाँ लागू नहीं होगा।

इससे यह स्पष्ट है कि कोई नियम ऐसा नहीं है जिससे आचार्य को बाध्य किया जाय कि प्रार्थी को भर्ती कर लें।

आचार्य की ओर से विद्वान् वकील ने बतलाया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम ६ के अनुसार बी० एस सी० के सफल विद्यार्थी ही एम० एस सी० में प्रवेश पावेंगे। चूँकि प्रार्थी सफल नहीं है इसलिए वह इस नियम का भी लाभ नहीं उठा सकती।

प्रार्थी के विद्वान् वकील का दूसरा तर्क है कि जब प्रार्थी प्रथम सत्र (सेशन) में विद्यार्थी रही है तो उसे अधिकार है कि दूसरे सत्र में भी विद्यार्थी रहे। वे इस सिद्धांत पर निर्णय चाहते हैं कि "जो एक बार सदस्य हो चुका हो वह सर्वदा सदस्य है।" मैं इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। एक तो नियमावली में कहीं ऐसी बातें नहीं हैं दूसरे ओमप्रकाश के शपथपत्र से पता चलता है कि प्रार्थी की भर्ती सत्र से सत्र तक थी।

प्रार्थी के विद्वान् वकील ने एक दूसरे प्रकार का तर्क रखा है। उनका कहना है कि प्रथम वर्ष और अंतिम वर्ष में कुल १६ लड़कों के लिये स्थान है, ८ प्रथम वर्ष में और ८ द्वितीय वर्ष में। प्रार्थी के असफल होने पर अंतिम वर्ष में ७ ही लड़के पहुँचे इसलिए इस समय कुल मिलाकर १५ लड़के हैं। इसलिए यदि प्रार्थी की भर्ती प्रथम वर्ष में हो जाय तो भी अध्यापक अच्छी तरह पढ़ा लेंगे, ऐसी व्यवस्था है। दूसरे शब्दों में इस कथन का परिणाम है कि आचार्य को अपने विवेक (डिस्क्रीशन) को प्रयोग करने के लिये कहा जाय। परमादेश लेख (रिट आफ मैंडमस) में यह आदेश नहीं दिया जा सकता कि आचार्य अपने विवेक का प्रयोग एक विशेष ढंग पर करें।

अंत में प्रार्थी के विद्वान् वकील श्री खरे ने एक भावुक तर्क रखा। उनका कहना है कि प्रार्थी की भर्ती यदि न की गई तो उसका शैक्षणिक जीवन बरबाद हो जायगा। आचार्य की ओर से कहा गया कि उसका शैक्षणिक जीवन बरबाद नहीं होगा क्योंकि अब भी वह विश्वविद्यालय के नियमानुसार १९५९ की परीक्षा में बैठ सकती है। यह भी कहा गया कि इससे अधिक हानि तो उस विद्यार्थी की होगी जो कई महीने तक पढ़ चुका है और प्रार्थी की भर्ती हो जाने पर उसे निकालना पड़ेगा और इस प्रकार उसके शैक्षणिक जीवन की बरबादी की अधिक आशंका है। आचार्य की ओर से दिए गए इस तर्क में अधिक बल दीखता है। इसके अतिरिक्त प्रार्थी ने जब न्यायालय में आना निश्चय किया तो उसे अपनी माँग को विधिक अधिकारों पर अवलंबित करना चाहिए, भावुकता पर नहीं।

यह स्पष्ट है कि आगरा विश्वविद्यालय अधिनियम और तद्अंतर्गत निर्मित नियमावली में कोई ऐसा उपबंध नहीं है जिसके आधार पर प्रार्थी की भर्ती की जा सके। दूसरे, विद्वान् वकील ने कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं दिया जिसमें किसी विद्यालय को बाध्य किया गया हो कि किसी विद्यार्थी की भर्ती करे। यह मामला विश्वविद्यालय का भीतरी मामला है इसलिए यह अधिकारियों पर छोड़ दिया गया है। इसका निर्णय आचार्य ही कर सकते थे। प्रार्थी को इस न्यायालय में आने की राय गलत दी गई है। कुछ भी हो प्रार्थी ने अधिकार और कर्तव्य को प्रमाणित नहीं किया और बिना इसको प्रमाणित किए वह सफल हो नहीं सकती। परिणामतः प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है। प्रार्थनापत्र—न्यायाधीश का दिनांक १२-८-१९५८ का अंतरिम आदेश एतद्द्वारा प्रभावशून्य किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१९८०) १९५८

इला० उच्च न्यायालय २

न्यायमूर्ति एम० एल० चतुर्वेदी

एफ० ए० सं० ५५३ और ५५४।१९४५—

१२ अगस्त १९५८

कामता प्रसाद तथा अन्य — प्रतिवादी—अपीलकर्तागण

विरुद्ध

मुसम्मात पार्वती बीबी — वादी—उत्तरवादी

श्री शिवशंकर लाल व्यवहार न्यायाधीश के वाद सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६६।१९४४ में दिए गए निर्णय दिनांक २१–५–१९४५ के विरुद्ध प्रथम अपील—

अ—व्याज उधार अधिनियम (यूज़ूरियस लोंस ऐक्ट) १९१८, धारा ३ - व्याज कम करते समय मुकदमें की परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए।

ब—हिंदू विधि—'दामदुपत' का नियम उत्तर प्रदेश में लागू नहीं होता—ऋण लिए हुए धन का दूना यदि ऋणी को देना पड़ता है तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं है।

न्यायमूर्ति चतुर्वेदी—

ये दो संबद्ध अपीलें हैं जो वादी—उत्तरवादी पारबती बीबी द्वारा निवेशित किए हुए दो मुकदमों से आई हैं।

दोनों मुकदमें सामान्य बंधक बंधपत्र पर आधारित हैं। इलाहाबाद शहर में खलीफा मंडी में का हिस्सा बंधक में दिया गया है। ये बंधक पहले के एक बंधक के स्थान पर दिए गए। पहला बंधक १९१६ में दिया गया था। प्रतिवादियों का प्रतिवाद में प्रमुख कथन यही है व्याज की दर बहुत अधिक है और वह कम की जानी चाहिए। विद्वान् व्यवहार न्यायाधीश ने इसकी परिस्थितियों पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि व्याज की दर बहुत अधिक नहीं है और इसके कम करने का कोई कारण नहीं है। तद्नुसार मुकदमों में पूर्ण रूपेण डिग्री दे दी गई।

व्याज उधार अधिनियम (युज़ूरियस लोंस ऐक्ट) १९१८ के संबद्ध उपबंध के विषय में कानूनी स्थिति यह है कि जहाँ तक इस राज्य (स्टेट) का संबंध है विधान मंडल ने उन परिस्थितियों को बतला दिया है जिनमें व्याज को बहुत अधिक समझना चाहिए और उन परिस्थितियों को भी बतला दिया है जिनमें व्याज को बहुत अधिक नहीं समझना चाहिए। इन दोनों स्थितियों के बीच में जगह बहुत ही अधिक है और ये मामले उस जगह के एक किनारे पर पड़ते हैं। ये मामले निचली सीमा के अधिक निकट हैं अपेक्षाकृत ऊँची सीमा के, क्योंकि उक्त उपबंध में जब ७% व्याज की दर है तो इसमें ७½% व्याज की दर तय हुई है।

विद्वान् वकील ने व्याज कम करनेवाली जो परिस्थिति बतलाया है उसकी ओर उन विद्वान् व्यवहार न्यायाधीश का भी ध्यान आकृष्ट किया गया था जिन्होंने इसका निर्णय किया। उनसे भिन्न विचार व्यक्त करने का मैं कोई कारण नहीं देखता। यह बात कि न्यायालय व्याज की दर कम कर सकता है, है अवश्य पर इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायालय को वास्तव में ऐसा करना चाहिए। मुकदमें की परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए। इस मामले में कोई परिस्थिति ऐसी नहीं दिखलाई पड़ती। पक्षों के बीच जो संविदा हुई है उसमें हस्तक्षेप करने का मैं कोई कारण नहीं देखता।

इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि पहले के बंधक की व्याज की दर कम थी। इस तथ्य से भी कोई सहायता नहीं मिल सकती कारण कि पहले बंधक की धनराशि २८०० रु० थी और वर्तमान प्रत्येक बंधक की धनराशि केवल २००० रुपया है। यह सर्वविदित है कि उधार लिए हुए ऋण की धनराशि यदि अधिक है तो व्याज दर कम होगी और धनराशि यदि कम है तो व्याज दर अधिक होगी। इस प्रकार व्याज दर कम करने का कोई आधार नहीं है।

विद्वान् वकील का कहना है कि 'दामदुपद' का सिद्धांत इसमें लागू होता है और मूलधन के दूने से अधिक धनराशि के बारे में डिग्री पारित नहीं करनी चाहिए। मुझे एक भी प्रमाण ऐसा नहीं दिखलाया गया जिसमें 'दामदुपद' का सिद्धांत न्याय, समता और सद्विचार के आधार पर लागू किया गया हो। इस मामले की जैसी परिस्थिति है उसके अनुसार ऋणी को यदि मूलधन के दूने से अधिक देने को बाध्य किया जाता है तो उसमें कोई अनौचित्य नहीं है क्योंकि ऋणी ने भी उचित समय पर रुपया नहीं दिया और देर किया। 'दामदुपद' का सिद्धांत हिंदू विधि में है परंतु इस राज्य के किसी अधिनियम द्वारा यह इस प्रदेश में लागू नहीं किया गया है। इसलिए उपर्युक्त सिद्धांत केवल न्याय, समता और सद्विचार के आधार पर ही प्रयुक्त हो सकता है और इसके लिये उपयुक्त परिस्थिति है नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त कारणों से ये दोनों अपीलें असफल होती हैं और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपीलें उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१८८०) १९५८

इला० उच्च न्यायालय ४

न्यायमूर्ति बी० जी० ओक

श्रीमती बलवंत कुँवर तथा अन्य— प्रार्थीगण

वि०

अतिरिक्त मुंसिफ, देहरादून तथा अन्य— विपक्षीगण

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० ११२०।१९६६ दिनांक ३०-४-१९५८

हिंदू विवाह अधिनियम (१९५५) धारा ९— दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के लिये वाद (सूट) के विषय में मुंसिफ और व्यवहार न्यायाधीश के अधिक्षेत्र

आदेश—

यह प्रार्थनापत्र भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ और २२७ के अंतर्गत निवेशित किया गया है। इसमें यही है कि हिंदू विवाह अधिनियम १९५५ (जिसे एतत्पश्चात् अधिनियम कहा जायगा) के लागू होने पर जब कि उभयपक्ष हिंदू हैं तो मुंसिफ को दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के मुकदमें की सुनवाई का अधिकार है कि नहीं।

रंजीत सिंह ने देहरादून के मुंसिफ के न्यायालय में एक वाद निवेशित किया जिसमें प्रतिवादी गण सं० १ श्रीमती बलवंत कुँवर, सं० २ बखशीश सिंह तथा सं० ३ इंद्र कुँवर थे जो क्रम से वादी की पत्नी, वादी की पत्नी का भाई और वादी की पत्नी की माता हैं। वादी ने सहायता माँगी है कि:—

अ—प्रतिवादी १ के विरुद्ध डिग्री पारित की जाय कि वह उसके साथ रहे और दांपत्य अधिकार का प्रयोग करने दे।

ब—प्रतिवादी सं० २ और ३ को निषेधाज्ञा द्वारा मना किया जाय कि प्रतिवादी सं० १ को वादी के घर आने में रुकावट न डालें।

प्रतिवाद में बहुत सी बातें कही गईं जिनमें से एक यह थी कि न्यायालय को मुकदमें की सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं है। मुंसिफ ने इसको आरंभिक वादपद माना और निर्णय दिया कि न्यायालय को सुनवाई का अधिकार है।

प्रतिवादीगण इस निर्णय से संतुष्ट नहीं हैं। उनका कहना है कि हिंदू विवाह अधिनियम १९५५ के लागू होने पर यह वाद संधार्य (मेनटेनेबुल) नहीं है। अतः अनुच्छेद २२६ और २२७ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

प्रार्थी का कहना है कि अधिनियम की धारा ९ के अंतर्गत वादी केवल प्रार्थनापत्र निवेशित कर सकता था, मुकदमा नहीं।

यहाँ पर उभयपक्ष सिक्ख हैं। अधिनियम की धारा २ उपधारा १ उपवाक्य बी० के अनुसार यह अधिनियम सिक्खों के लिये भी लागू होता है इसलिए उभयपक्ष हिंदू विवाह अधिनियम १९५५ से शासित हैं।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ९ व्यवहार प्रक्रिया संहिता के सामान्य अधिक्षेत्र से संबंध रखती हैं। उसमें दिया हुआ है कि न्यायालयों को व्यवहार (सिविल) प्रकृति के समस्त मुकदमों की सुनवाई का अधिकार होगा बशर्ते स्पष्ट रूप से या ध्वनितार्थ से सुनवाई मना न गई हो। यहाँ देखना है कि १९५५ के अधिनियम से व्यवहार न्यायालय द्वारा इस मामले की सुनवाई मना की गई है कि नहीं। ए० आई० आर० १९५५ सर्वोच्च न्यायालय ५७६ में निर्णय हुआ कि देखने में "यदि प्रतीत होता हो कि व्यवहार न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है परंतु कहा यह जाता है कि न्यायालय को उसकी सुनवाई का अधिकार नहीं है तो इसके लिये भाषा स्पष्ट होनी चाहिए या आवश्यक ध्वनितार्थ से अधिकार न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने की बात प्रकट होनी चाहिए। व्यवहार प्रक्रिया संहिता के चिटले द्वारा लिखित भाष्य में है कि यदि किसी अधिनियम द्वारा अन्य उपाय है या सरसरी तौर पर सहायता पाने के लिये उपबंध है तो यह आवश्यक नहीं व्यवहार न्यायालय की सुनवाई में यह बाधक है; पूरे मुकदमे की सुनवाई का अधिकार जब व्यवहार न्यायालय को नहीं होता तभी अधिक्षेत्र में बाधा पड़ती है, अन्यथा नहीं। यदि अध्यर्थना (क्लेम) के एक भाग की सुनवाई का अधिकार व्यवहार न्यायालय को नहीं है और दूसरे का है तो जिस भाग के सुनवाई का अधिकार है उसकी सुनवाई व्यवहार न्यायालय कर सकता है···यदि संदेह हो कि सुनवाई का अधिकार है कि नहीं तो न्यायालय का झुकाव उसी व्याख्या की ओर होगा जिसके द्वारा सुनवाई का अधिकार होता है। पृ० २५५ पर यह भी दिया हुआ है कि यह भी एक सामान्य सिद्धांत है कि जहाँ विधि में दो कार्यवाहियाँ या दो उपाय उपलब्ध हों वहाँ एक का प्रयोग दूसरे को कम करने के लिये नहीं होना चाहिए। अधिनियम की धारा ४ अविभावी (ओवरराइडिंग) प्रभाव की है जिसमें दिया हुआ है कि इसके उपबंध से अंतर्गत उपबंध लागू नहीं होंगे।

१९५५ से पहले सामान्यतः कोई हिंदू, मुंसिफ के न्यायालय में न्यायिक पार्थक्य (जुडिशियल सेपरेशन) के लिये वाद निवेशित नहीं कर सकता था। अधिनियम में कोई बात ऐसी नहीं दी गई है जिससे पता चले कि १९५५ के बाद मुंसिफ न्यायिक पार्थक्य के मुकदमे की सुनवाई कर सकते हैं। मुंसिफ यदि न्यायिक पार्थक्य के मुकदमे की सुनवाई नहीं कर सकते तो कोई विशेष कारण नहीं है कि मुंसिफ को दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के मुकदमें की सुनवाई का अधिकार क्यों होना चाहिए।

इस बात पर ध्यान रहना चाहिए कि धारा ९ और धारा १९ दोनों इस बात पर जोर देती हैं कि दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के लिये प्रार्थनपत्र जिला न्यायालय में निवेशित करना चाहिए।

श्री बृजलाल गुप्त का कहना है कि अधिनियम की धारा ९ केवल सरसरी उपाय के लिये है। धारा २१ के अनुसार व्यवहार प्रक्रिया संहिता इसमें लागू होती है और सरसरी तौर पर जो उपाय उपलब्ध है उसके अतिरिक्त भी नियमित वाद (रेगुलर सूट) निवेशित किया जा सकता है।

धारा ९ में दिया हुआ है कि प्रार्थी यदि अपनी बात प्रमाणित कर देता है तो जिला न्यायालय दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के लिये डिग्री पारित कर सकता है। धारा २८ में इस डिग्री के विरुद्ध अपील करने का विधान है। इस प्रकार धारा ९ के अंतर्गत की कार्यवाही ठीक उसी प्रकार होती है जिस प्रकार नियमित वाद में कार्यवाही की जाती है। इसलिए धारा ९ के अंतर्गत दिए हुए प्रार्थनापत्र को सरसरी तौर की कार्यवाही नहीं कहा जा सकता।

श्री बृजलाल गुप्त का कहना है कि अधिनियम की धारा ९ (२) के अनुसार प्रतिवाद (डिफेंस) में केवल अभिकथन (प्ली) विशेष ही लिया जा सकता है उसके अतिरिक्त यदि अन्य अभिकथनों का आश्रय लेना हो तो नियमित वाद निवेशित करके लिया जा सकता है।

धारा ९ के अंतर्गत दिए गए प्रार्थनापत्र को सरसरी कार्यवाही समझने का परिणाम यह होगा कि इसके अतिरिक्त भी नियमित वाद निवेशित किया जा सकता है। इस प्रकार ऐसा नियमित वाद मुंसिफ के न्यायालय में निवेशित होगा और मुंसिफ इसमें जो आदेश देंगे हो सकता है कि वह उस आदेश के विरुद्ध हो जिसे जिला न्यायालय ने धारा ९ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र में पारित किया था। ऐसी परिस्थिति में दो विरोधी निर्णय होने की संभावना है। मैं सोचता हूँ कि संसद (पार्लियामेंट) ने इस प्रकार दो विरोधी निर्णय होने की परिस्थिति के लिये विधायन नहीं किया है।

संसद का अभिप्राय हिंदू विवाह को संहिता बद्ध करना था और इस संबंध में हिंदू विवाह और तत्संबद्ध बातों पर ही एकमात्र विचार किया गया है। अतः संसद् ने सोचा कि दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना, विवाह की प्रभावशून्यता आदि गंभीर विषयों पर निर्णय देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का काम कनिष्ठ (जूनियर) अधिकारियों को न सौंपा जाय। जिला न्यायालय में प्रार्थनापत्र देने का विधान इसीलिए है। विद्वान् वकील के कथन से मैं सहमत हूँ कि इसमें ऐसे स्पष्ट शब्द नहीं हैं जिनसे पता चले कि व्यवहार न्यायाधीश और मुंसिफ का अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) ले लिया गया है फिर भी अधिनियम की योजना से यह प्रकट होता है कि एकमात्र जिला न्यायालय को ही इस मामले की सुनवाई का अधिकार है। एकमात्र जिला न्यायालय को दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना, न्यायिक पार्थक्य, विवाह शून्यता और विवाह विच्छेद के मामलों की सुनवाई का अधिकार है। ध्वनितार्थ से मुंसिफ को दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के मामले की सुनवाई का अधिकार नहीं होता।

वादपत्र में दो सहायता के लिये प्रार्थना की गई है। एक तो दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के लिये है और दूसरी है कि प्रतिवादी सं० २ और ३ को मना किया जाय कि प्रतिवादी सं० १ को वादी के घर आने से रोकें न। कहा गया है कि पहली सहायता तो धारा ९ के अंतर्गत आती है इसलिए मुंसिफ को इसकी सुनवाई का अधिकार नहीं है किंतु दूसरी प्रार्थना के संबंध में मुंसिफ को अधिकार है। ऐसी बात नहीं है। धारा ९ का अर्थ यह नहीं है कि तदंतर्गत पति केवल पत्नी के ही विरुद्ध प्रार्थनापत्र दे सकता है—प्रतिवादी सं० २ और ३ के विरुद्ध भी प्रार्थना कर सकता है कि उन्हें मना किया जाय कि उसकी पत्नी को आने से रोकें न। वादपत्र की दूसरी सहायता पहली की प्रासंगिक (इंसिडेंटल) है। वादी को अधिकार है कि इन दो सहायता (रिलीफ्स) को मिला कर धारा ९ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र निवेशित करे।

यदि ऐसा प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है तो जिला न्यायालय को दोनों सहायता प्रदान करने का अधिकार है। दोनों सहायताएँ (रिलीफ्स) धारा ९ के अंतर्गत आती हैं इसलिए मुंसिफ को दूसरी सहायता के संबंध में भी सुनवाई का अधिकार नहीं है।

चूँकि मुंसिफ को मुक़दमें की सुनवाई का अधिकार नहीं है इसलिए प्रतिषेध-लेख (रिट आफ प्राहिबिशन) जारी किया जा सकता है। अधिक्षेत्र का प्रश्न कठिनाई से खाली नहीं है इसलिए उभयपक्ष अपने अपने परिव्यय को सहन करें।

प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है। विद्वान् मुंसिफ के न्यायालय की उपर्युक्त कार्यवाही अभिखंडित की जाती है। उभयपक्ष अपने अपने परिव्यय को सहन करेंगे।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१८८०) १९५८

इला० उच्च न्यायालय ९

मुख्य न्यायाधिपति श्री० एच० मूथम और न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

देवकीनंदन — प्रार्थी

वि०

उ० प्र० राज्य तथा अन्य — विपक्षीगण

सर्वोच्च न्यायालय अपील सं० १०४।१९५७ दिनांक १२-५-१९५८

भारतीय संविधान अनुच्छेद १३३ (१) "ठीक नीचे का न्यायालय"—उच्च न्यायालय के अतिरिक्त कोई दूसरा न्यायालय होना चाहिए

मुख्य न्यायाधिपति श्री० एच० मूथम—

इस न्यायालय के अपील के न्यायासन ने आरंभिक पक्ष (ओरिजिनल साइड) के न्यायालय के आदेश के विरुद्ध निवेशित की गई एक अपील को उत्सर्जित कर दिया था। इसमें भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत निवेशित किए गए एक प्रार्थनापत्र को उत्सर्जित कर दिया गया था। यह मान्य है कि इस न्यायालय के आदेश द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष से २०००० रुपए से अधिक मूल्य की संपत्ति प्रभावित है इसलिए प्रार्थी का कहना है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद १३३ (१) के अंतर्गत प्रमाणपत्र प्राप्त करने का हमारा अधिकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थी की इस बात का विरोध उत्तरवादी ने किया है कि अपील के पक्ष के न्यायालय ने जब आरंभिक पक्ष (ओरिजिनल साइड) के निर्णय का स्थिरीकरण किया है तो इसके आगे इसको भी प्रमाणित करने की आवश्यकता है कि अपील में मूलभूत विधि का प्रश्न है। उत्तरवादी का कहना है कि इसमें विधि का कोई मूलभूत प्रश्न उठा नहीं है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद १३३ (१) के अनुसार यह स्पष्ट है कि इस प्रकार का प्रमाण कि अपील में विधि का मौलिक प्रश्न है तभी आवश्यक होता है जब कि जिस "निर्णय, डिग्री या अंतिम आदेश के विरुद्ध" अपील निवेशित की जानेवाली है उसके द्वारा ठीक नीचे के न्यायालय के निर्णय का स्थिरीकरण हुआ हो। इसमें जो "निर्णय, डिग्री या अंतिम आदेश" है वह निश्चय ही उच्च न्यायालय का निर्णय, डिग्री या अंतिम आदेश है इसलिए इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि "ठीक नीचे का न्यायालय" वह न्यायालय है जो उच्च न्यायालय के नीचे है। अतः इस मामले में धारा १३३ (१) के अंतवाले शब्द लागू नहीं होते।

संविधान के अनुच्छेद १३३ (१) का उपबंध व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा १०९ और ११० से लिया गया है। इस संहिता में यह माना गया है कि अधिनियमों के आधार पर न्यायालयों की उच्चोच्च परंपरा है, जैसे बंगाल, आसाम और आगरा व्यवहार न्यायालय अधिनियम। इस उच्चोच्च परंपरा में उच्च न्यायालय एक न्यायालय है जिसका काम एक न्यायाधीश या कई न्यायाधीशों का न्यायासन् करता है। आई० एल० आर० ३६ मद्रास १३८ में स्पष्ट कहा गया है कि उच्च न्यायालय एक है किंतु यह अपील या आरंभिक दोनों अधिक्षेत्रों का प्रयोग करता है।

उच्च न्यायालय की अपील उच्च न्यायालय में ही करने का नियम संहिता में नहीं है किंतु इसके अध्याय या इसकी नियमावली में है और उन अवस्थाओं में जिनमें अपील निवेशित करने की अनुमति दी गई है, सर्वत्र यही कहा गया है कि उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय से। ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय जब अपने अपील के अधिक्षेत्र का प्रयोग करता है तो जिस न्यायाधीश का निर्णय अपील में है वह इसके अधीन न्यायालय नहीं है और उनके निर्णय का पुनरीक्षण संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत नहीं किया जा सकता (ए० आई० आर० १९१६ कलकत्ता ९७३)

ए० आई० आर० १९१६ कलकत्ता ९७३ में अन्वीक्षा न्यायालय ने तथा नीचे के अपील के न्यायालय ने प्रार्थी के विरुद्ध निर्णय दिया था। उच्च न्यायालय में अपील के न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश ने नीचे के अपील के न्यायालय की डिग्री उलट दिया। इस निर्णय के विरुद्ध अध्याय के उपवाक्य १५ के अंतर्गत उच्च न्यायालय में अपील निवेशित की गई और दो न्यायाधीशों के न्यायासन द्वारा एकाकी न्यायाधीश का निर्णय उलट दिया गया। इस प्रसंग में मुख्य न्यायाधिपति ने कहा था कि उच्च न्यायालय के पहले निर्णय द्वारा ठीक नीचे के न्यायालय की डिग्री उलट दी गई थी परंतु यह निर्णय भी इसके बाद निराकृत कर दिया गया और इसका परिणाम हुआ कि उच्च न्यायालय का जो प्रभाव पूर्ण निर्णय था उसके द्वारा ठीक नीचे के न्यायालय के निर्णय का स्थिरीकरण ही किया गया।

इसके पश्चात् लाहौर उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायासन के ए० आई० आर० १९४४ लाहौर (४५८) के मुकदमें में कहा गया कि उच्च न्यायालय के एकांकी न्यायाधीश जब अपील के न्यायालय के अधिकार का प्रयोग करते हैं और जब वे अकेले बैठकर आरंभिक (ओरिजिनल) अधिक्षेत्र का प्रयोग करते हैं तब इन दोनों अवस्थाओं में अंतर होता है। पहली अवस्था में अर्थात् जब वे अपील के अधिकार का प्रयोग करते हैं तो वह न्यायालय "ठीक नीचे का न्यायालय" (कोर्ट इमेडिएट्ली बीलो) नहीं होता; दूसरी अवस्था में जब वे आरंभिक अधिक्षेत्र का प्रयोग करते हैं तो वह न्यायालय 'ठीक नीचे का न्यायालय' होता है।

न्यायमूर्ति ब्लैकर उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में अंतर नहीं समझते थे और ए० आई० आर० १९१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ता ६७३ के ही सिद्धांत को मानते किंतु आई० एल० आर० २३ कलकत्ता ६१८ में प्रिवी कौंसिल ने निर्णय दिया था कि वे न्यायाधीश जो अकेले बैठते हैं और जब वे अपील के न्यायासन के अधिकार का प्रयोग करते हैं तो ये दो विभिन्न न्यायालय होते हैं। ४५ कलकत्ता वीक्ली नोट्स १००२ में कहा गया था कि आरंभिक पक्ष में अकेले बैठे हुए न्यायाधीश का न्यायालय अपील के न्यायासन के नीचे का न्यायालय होता है। किंतु इस मामले में १९१६ कलकत्ता ६७३ की रुलिंग नहीं दिखलाई गई थी।

आई० एल० आर० २३ कलकत्ता ६१८ में प्रिवी कौंसिल में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय की अपील की गई थी जिसमें उच्च न्यायालय के आरंभिक पक्ष के एकाकी न्यायाधीश के निर्णय का स्थिरीकरण हुआ था। किस आधार पर प्रिवी कौंसिल में अपील करने की अनुमति प्रदान की गई थी यह प्रतिवेदन (रिपोर्ट) से मालूम नहीं होता परंतु लार्ड डेवी ने निर्णय देते समय कहा था कि "उच्च न्यायालय के निर्णय पर विधि का··· कोई प्रश्न नहीं उठता है और नीचे के दोनों न्यायालयों के समक्ष जो···साक्ष्य दिए गए उनके आधार पर दोनों न्यायालय एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। ऐसी बात है इसलिए यह अपील नहीं ली (एंटरटेंड) जा सकती।"

इसमें हम समझते हैं कि "नहीं ली जा सकती" का तात्पर्य स्वीकृत (अलाऊ) होने से है।

इसी निर्णय के आधार पर न्यायमूर्ति ब्लेकर ने ए० आई० आर० १९४४ लाहौर ४५८ में कहा था कि प्रिवी कौंसिल के इस निर्णय ने यह निश्चित कर दिया है कि उच्च न्यायालय के आरंभिक पक्ष के एकाकी न्यायाधीश का न्यायालय उसी उच्च न्यायालय के अपील के न्यायालय से भिन्न और अलग न्यायालय होता है और पहला न्यायालय दूसरे से ठीक नीचे का होता है। अत्यंत संमान के साथ हम सोचते हैं कि विद्वान न्यायाधीश ने, प्रिवी कौंसिल के निर्णय का जो अभिप्राय है, उससे अधिक अर्थ लगाया है। उद्धृत परिच्छेद से केवल इतना ही प्रकट होता है कि अन्वीक्षा न्यायालय और अपील के न्यायासन के निर्णय एक समान थे।

हमारे विचार से ए० आई० आर० १९१६ कलकत्ता ६७३ में व्यक्त किया हुआ विचार सही है और आरंभिक अधिक्षेत्र (ओरिजिनल जुरिडिक्शन) का प्रयोग करते हुए एकाकी न्यायाधीश के न्यायालय और अपील के न्यायासन के न्यायालय में कोई अंतर नहीं है; दोनों अवस्थाओं में वे वही काम करते हैं जो उच्च न्यायालय को सौंपा गया है।

यह तर्क मन में नहीं बैठता कि उच्च न्यायालय एक न्यायालय नहीं है। अतः संविधान के अनुच्छेद १३३ (१) में प्रयुक्त "ठीक नीचे का न्यायालय" (कोर्ट इमेडिएट्ली बिलो) उच्च न्यायालय न होकर कोई अन्य न्यायालय होना चाहिए। इस प्रकार हमारा निष्कर्ष है कि उपर्युक्त अनुच्छेद के अंतर्गत प्रार्थी को प्रमाणपत्र प्राप्त करने का अधिकार है तथा उसके साथ इस अतिरिक्त प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं है कि इसमें विधि का मौलिक प्रश्न है। तद्नुसार आवश्यक प्रमाणपत्र जारी किया जाय।

आदेश तद्नुसार

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१८८०) १९५८

इला० उच्च न्यायालय ८

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

राम नंदन तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

राज्य — विपक्षी

वाराणसी के द्वितीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के आदेश दिनांक २०-६-५७ के आपराधिक पुनरीक्षण सं० १७२७।१९५७, दिनांक २०-६-१९५८

दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८), धारा ४०३, २६०, ५३० उपवाक्य (जी०) – समर्थ अधिक्षेत्र (कंपीटेंट जुरिडिक्शन) का न्यायालय अपराध की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वीक्षा नियमित ढंग पर होनी चाहिए थी किंतु सरसरी तौर पर हुई और अभियुक्त छोड़ दिया गया—उसी अपराध के लिये पुनः अन्वीक्षा (ट्रायल) में रुकावट नहीं है।

आदेश—

इस पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसपर कोई रूलिंग सीधे नहीं है। रामनंदन, छेदी और संकठा सिंह की अन्वीक्षा प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट ने की। यह अन्वीक्षा आवश्यक पदार्थ अधिनियम (एशंसल कमोडिटीज़ ऐक्ट) के अंतर्गत उ० प्र० कोयला नियंत्रण आदेश १६५५ की धारा ३ के उल्लंघन करने के संबंध में थी। अन्वीक्षा (ट्रायल) सरसरी तौर पर हुई थी।

अन्वीक्षा जब समाप्त हो गई तब अभियुक्तों की ओर से बतलाया गया कि सरसरी तौर पर अन्वीक्षा अनुमित नहीं है। मजिस्ट्रेट ने इस तर्क को मान लिया किंतु उन्होंने कहा कि अब इस अवस्था में कार्यवाही पुनः आरंभ करके नियमित रूप से अभियुक्तों की अन्वीक्षा नहीं की जा सकती इसलिए उन्होंने अभियुक्तों को छोड़ दिया। इसके बाद इसी अपराध के लिये अभियुक्तों की चालान फिर की गई और इस बार उनकी अन्वीक्षा नियमित ढंग पर होने को हुई।

अभियुक्तों की ओर से आपत्ति उठाई गई कि चूँकि उसी अपराध के संबंध में वे पहले छोड़ दिए गए हैं इसलिए द० प्र० संहिता की धारा ४०३ के अनुसार पुनः अभियोजन नहीं हो सकता। मजिस्ट्रेट ने इस आपत्ति को नहीं माना। उन्होंने सत्र न्यायाधीश के यहाँ पुनरीक्षण किया और उन्होंने भी विद्वान् मजिस्ट्रेट की बात मान ली और हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। वे अब इस न्यायालय में पुनरीक्षण में आए हैं और उनका कहना है कि द० प्र० संहिता की धारा ४०३ के अनुसार दूसरी बार उनकी अन्वीक्षा नहीं हो सकती।

द० प्र० संहिता की धारा ४०३ के अनुसार दूसरी बार अन्वीक्षा नहीं की जा सकती। इसके लिये प्रमाणित करना पड़ता है कि पहले समर्थ न्यायालय द्वारा उनकी अन्वीक्षा हुई थी और छोड़ दिए गए थे। प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि पहले जिस मजिस्ट्रेट ने अन्वीक्षा की थी वह समर्थ न्यायालय की अन्वीक्षा थी और मजिस्ट्रेट ने यदि सरसरी तौर पर अन्वीक्षा की तो यह केवल प्रक्रिया (प्रोसीजर) की अनियमितता है और केवल इसी कारण यह नहीं कहा जा सकता कि मजिस्ट्रेट का न्यायालय समर्थ न्यायालय (कंपीटेंट कोर्ट) नहीं था। प्रार्थी का कहना है कि ऐसे समर्थ न्यायालय ने जब अभियुक्तों को एक बार छोड़ दिया तो पुनः अन्वीक्षा में धारा ४०३ बाधक है।

इस मामले की परिस्थिति पर कोई रुलिंग सीधे नहीं हुई है। सत्र न्यायाधीश के समक्ष ए० आई० आर० १६२३ इलाहाबाद ३६० पर निर्भर किया गया था किंतु यहाँ उसे नहीं दिखलाया गया क्योंकि इसमें वह लागू नहीं होती। उस रुलिंग में परिस्थिति यह थी कि परिवादी (कंप्लेनेंट) उपस्थित नहीं था इसलिए अभियुक्तों को छोड़ दिया गया। परिवादी ने जब दूसरा परिवाद (कंप्लेंट) निवेशित किया तो निर्णय हुआ कि यह परिवाद नहीं लिया जा सकता।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने इस बात के समर्थन में कि पहले के न्यायालय को अधिक्षेत्र नहीं था ए० आई० आर० १६४८ बंबई १५३ पर निर्भर किया। ऐसी कई रूलिंग्स हो चुकी है कि जिस अपराध की अन्वीक्षा के लिये संमोदन (सैंक्शन) की आवश्यकता है और बिना संमोदन लिए ही अन्वीक्षा की गई और अभियुक्त को छोड़ दिया गया तो उसकी अन्वीक्षा पुनः हो सकती है। ए० आई० आर० १६५७ सर्वोच्च न्यायालय ४६४ में यह सिद्धांत अंतिम रूप से निश्चित हो चुका है—प्रश्न अब यही रह जाता है जिस सिद्धांत पर उपर्युक्त मामलों का निर्णय हुआ था उसकी व्याप्ति में वर्तमान मामला आ सकता है कि नहीं।

प्रार्थी के विद्वान् वकील ने उन रूलिंग्स और इस मुकदमे की परिस्थिति में अंतर दिखलाने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि संमोदन न रहने से उन अव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थाओं में न्यायालय के अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) पर प्रभाव पड़ा किंतु यह बात कि मजिस्ट्रेट ने अन्वीक्षा नियमित ढंग पर किया या सरसरी तौर पर, केवल प्रक्रिया (प्रोसीजर) की अनियमितता है और इसका प्रभाव मजिस्ट्रेट के अधिक्षेत्र के मूल पर नहीं पड़ता।

यह कथन मान्य नहीं हो सकता। जिन मामलों में मजिस्ट्रेट को यह अधिकार दिया गया है कि चाहें तो वे सरसरी तौर पर अन्वीक्षा करें या चाहें तो नियमित ढंग पर वे स्पष्ट रूप से दं० प्र० संहिता की धारा २६० में गिना दिए गए हैं। उसके अतिरिक्त मजिस्ट्रेट को अधिकार नहीं है। इससे यही आता है कि जो अपराध उस धारा में नहीं दिए गए हैं उसके बारे में सरसरी तौर पर अन्वीक्षा करने का अधिकार मजिस्ट्रेट को नहीं है। ऐसी अन्वीक्षा बिना अधिक्षेत्र की समझी जानी चाहिए।

आवश्यक पदार्थ अधिनियम में पहले था कि यदि सरकार की ओर से प्रार्थना की जाय कि अन्वीक्षा सरसरी तौर पर हो, तो हो सकती है किंतु अब यह उपबंध भी हटा दिया गया है।

यह अपराध दं० प्र० संहिता की धारा २६० के अंतर्गत नहीं आता और धारा ५३० दं० प्र० संहिता के देखने से प्रतीत होता है सरसरी तौर पर की गई यह अन्वीक्षा ऐसी अनियमितता है जो ठीक नहीं की जा सकती। यह केवल प्रक्रिया संबंधी गलती नहीं है वरन् यह अधिक्षेत्र के मूल पर प्रभाव डालनेवाली है।

अतः हमारा निष्कर्ष है कि नीचे के न्यायालयों का निर्णय ठीक था कि वर्तमान प्रार्थियों की पहलेवाली अन्वीक्षा समर्थ अधिक्षेत्र के न्यायालय द्वारा नहीं हुई थी इसलिए इस न्यायालय द्वारा अभियुक्त जो छोड़ दिए गए थे उससे उसी अपराध के लिये उनकी नवीन अन्वीक्षा में कोई बाधा नहीं है।

पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में बल नहीं है इसलिए अस्वीकृत होता है। स्थगित करनेवाला आदेश हटा लिया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१८८०) १९५८

इलाहाबाद उच्च न्यायालय १०

एम० एल० चतुर्वेदी तथा डी० एन० राय न्यायमूर्तिगण

रघुवीर प्रार्थी

विरुद्ध

राजस्व मंडल उ०प्र० इलाहाबाद तथा अन्य विपक्षीगण

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० १६३८।१९५८

दिनांक ६–५–१९५८

अ—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १, १९५१—धारा ३३१ और ३४१—धारा ३३१ (४) के अंतर्गत द्वितीय अपील—व्यवहार प्रक्रिया संहिता धारा १००

ब—भारतीय संविधान अनुच्छेद २२६ और २२७—विधि (ला) और तथ्य (फैक्ट) के मिश्रित प्रश्न के बारे में नया अभिकथन—यदि ऐसा अभिकथन नीचे के न्यायालय में नहीं उठाया गया है तो अनुच्छेद २२६ और २२७ के अंतर्गत की कार्यवाही में इसे नहीं उठाया जा सकता

न्यायमूर्ति एम० एल० चतुर्वेदी—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ और २२७ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है। इसमें प्रार्थना की गई है कि अतिरिक्त आयुक्त का दिनांक २६–११–१९५७ का और राजस्व मंडल का दिनांक १५–४–१९५८ का निर्णय अभिखंडित किया जाय। प्रार्थना है कि न्यायिक अधिकारी (जुडिशियल आफिसर) का भी निर्णय इसी प्रकार अभिखंडित किया जाय।

प्रार्थी ने उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम की धा० १७६, २२६ सी० और २०६ के अंतर्गत वाद निवेशित किया था। उसकी प्रार्थना थी कि उसे चतुर्थ उत्तरवादी के साथ विवादग्रस्त खेतों का सहकृषक (कोटेनेंट) घोषित किया जाय और यदि आवश्यक हो तो उसे अपने हिस्से के खेत का धारण (पोजेशन) दिला दिया जाय। इसके विवरण के बारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रार्थी का कहना था कि पहले मैं इन खेतों के कृषक श्रीराम के साथ सहकृषक हो गया और इसके बाद उत्तरवादी संख्या ४ के साथ मैं सहकृषक हुआ। राजस्व (रेवेन्यू) के तीनों न्यायालयों ने निर्णय दिया कि प्रार्थी सहायता (रिलीफ) नहीं पा सकता।

आयुक्त (कमिश्नर) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि १९५० में प्रार्थी और उत्तरवादी सं० ४ में समझौता हुआ और उस समझौता के अनुसार प्रार्थी ने इन खेतों से संबंधित अपने समस्त अधिकार को छोड़ दिया और इसलिए तभी से उत्तरवादी सं० ४ उन खेतों का एक मात्र कृषक (सोल टेनेंट) रह गया है।

प्रार्थी के विद्वान् वकील ने बहस की है कि राजस्व मंडल ने यह समझकर कि द्वितीय अपील का न्यायालय होने के कारण वह तथ्य के प्रश्न पर विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त का निष्कर्ष मानने के लिये बाध्य है जो उसने दिए हुए साक्ष्यों पर विचार नहीं किया है वह गलत है। विद्वान् वकील के कथन का अर्थ दूसरे शब्दों में यह है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा १०० का उपबंध इसमें लागू नहीं होता। उनका कहना है कि यह द्वितीय अपील उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम के अंतर्गत निवेशित की गई है इसलिए इसमें एकमात्र धारा ३३१ ही लागू हो सकती है। यह बात मानी नहीं जा सकती क्योंकि धारा ३४१ में है कि यदि इस अधिनियम द्वारा या इसके अंतर्गत स्पष्ट रूप से कोई अन्य बात नहीं कही गई है तो इस अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू होंगे।

धारा ३३१ (४) में केवल इतना ही दिया हुआ है कि किन किन परिस्थितियों में द्वितीय अपील निवेशित की जा सकती है, इसके आगे इसमें कुछ नहीं है। धारा १०० का कहना है कि अपील में पारित की गई समस्त डिग्रियों के विरुद्ध द्वितीय अपील निवेशित की जा सकती है। इसके लिये केवल यही कहा जा सकता है कि केवल इस सीमा तक व्य० प्र० सं० की धारा १०० का उपर्युक्त अंश धारा ३३१ (४) के स्पष्ट उपबंधों द्वारा संशोधित है। व्य० प्र० संहिता की धारा १०० में जो यह दिया हुआ है कि किन किन आधारों पर द्वितीय अपील की जा सकती है वह उपबंध इस द्वितीय अपील में भी लागू होगा। जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ३३१ के अंतर्गत इस विषय पर कोई उपबंध नहीं है इसलिए जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ३४१ के अनुसार व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा १०० का उपर्युक्त अंश इसमें लागू होता है। इसका परिणाम यह होता है कि राजस्व मंडल द्वितीय अपील की सुनवाई केवल धारा १०० में दिए हुए आधारों पर ही कर सकता है। राजस्व मंडल के नीचे का न्यायालय जिस तथ्य के निष्कर्ष पर पहुँचा है उस निष्कर्ष की सत्यता पर राजस्व मंडल विचार नहीं कर सकता।

दूसरा प्रश्न यह है कि जिस संविद् (अग्रीमेंट) के बारे में कहा जाता है कि उसके द्वारा प्रार्थी ने अपना अधिकार छोड़ दिया था उसकी रजिस्ट्री नहीं हुई है और रजिस्टर्ड न होने से वह साक्ष्य में प्रतिग्राह्य (ऐड-मिसिबुल) नहीं है। प्रथम न्यायालय का विचार यही था पर अतिरिक्त आयुक्त और राजस्व मंडल ने इस प्रश्न पर विचार ही नहीं किया।

इसका कारण यह था कि भूधारण संविदा (कंट्रैक्ट फार टेनेंसी) की रजिस्ट्री भूधारण अधिनियम के अंतर्गत भी उस समय हो सकती थी। ऐसी रजिस्ट्री कानूनगो के समक्ष होती थी। सब रजिस्ट्रार के समक्ष इसकी रजिस्ट्री नहीं हुई थी केवल इसी से यह नहीं कहा जा सकता कि साक्ष्य में वह प्रतिग्राह्य नहीं है। प्रार्थी ने पहले कभी यह प्रश्न नहीं उठाया कि यह संविद् (अग्रीमेंट) भूधारण अधिनियम के अंतर्गत रजिस्टर्ड है कि नहीं।

प्रार्थी की इस बहस को यदि मान लिया जाय तो अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय में फिर से इस बात पर साक्ष्य लेने के लिये इसे लौटाने की आवश्यकता पड़ेगी कि कानून गो के समक्ष इसकी रजिस्ट्री हुई थी कि नहीं। प्रार्थी का यह प्रश्न विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है इसलिए संविधान के अनुच्छेद २२६ और २२७ के अंतर्गत कार्यवाही में इस प्रश्न को उठाने का अधिकार नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रार्थनापत्र में बल नहीं है। तदनुसार यह अस्वीकृत होता है।

—प्रार्थनापत्र अस्वीकृत

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१८८०) १९५८
इलाहाबाद उच्च न्यायालय १२

न्यायमूर्ति वी० जी० ओक

मुनेश्वरानंद त्यागी — प्रार्थी

वि०

उ० प्र० राज्य तथा अन्य — विपक्षीगण

आपराधिक लेख सं० ८२६।१९५७ दिनांक २२-४-१९५८।

अ—भारतीय संविधान अनुच्छेद २२६—सत्र न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाही चल रही है इसलिए इन्हें भी पक्ष बनाना चाहिए।

ब—दं० प्र० संहिता (१८९८) धारा ९८-बी० और १९८ का क्षेत्र और उद्देश्य—वैधता—युक्तिसंगत वर्गीकरण—भारतीय संविधान अ० १४—(दंड संहिता १८६०) धा० ४९९-५००)

आदेश—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत इस प्रार्थनापत्र में दं० प्रक्रिया संहिता की धारा १९८ बी० की वैधता पर प्रश्न उठाया गया है। मुनेश्वरानंद त्यागी इसमें प्रार्थी हैं।

शपथपत्र से पता चलता है कि प्रार्थी बिजनौर से प्रकाशित होनेवाली 'चिनगारी' साप्ताहिक पत्रिका का मुद्रक, प्रकाशक और संपादक है। १२-३-५६ के अंक में एक लेख निकला था जिसमें अधिकारियों के स्थानांतरण के संबंध में सरकार की नीति पर टीका टिप्पणी की गई थी। अधिकारियों ने सोचा कि इस लेख द्वारा रामलाल नामक स्वास्थ्य के एक बड़े अधिकारी की मानहानि हुई है। जन अभियोजक (पब्लिक प्रासिक्यूटर) ने प्रार्थी के विरुद्ध एक परिवाद (कंप्लेंट) निवेशित किया कि प्रार्थी ने दंड संहिता की धारा ५०० के अंतर्गत मानहानि का अपराध किया है। प्रार्थी का कहना है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १९८ बी० असंवैधानिक है और इसलिए प्रार्थी के विरुद्ध की कार्यवाही अवैध है। विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने इस बात को नहीं माना। अतः प्रार्थी ने इस लेख प्रार्थनापत्र द्वारा कार्यवाही को अभिखंडित करने की प्रार्थना की है।

इस संबंध में एक बात पर ध्यान देना है कि मामला बिजनौर के सत्र न्यायाधीश के समक्ष चल रहा है परंतु सत्र न्यायाधीश को पक्ष नहीं बनाया गया है। इस लेख प्रार्थनापत्र में बिजनौर के सत्र न्यायाधीश को पक्ष बनाना चाहिए था।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १९८ में जिस नियम का विधायन किया गया है धारा १९८ बी० उसके अपवाद स्वरूप है। जब कहा जाता है कि किसी लोकसेवक (पब्लिक सर्वेंट) की मानहानि हुई है तो उस दशा में धारा १९८ बी० के अनुसार जिस लोकसेवक की मानहानि हुई है उसके द्वारा परिवाद (कंप्लेंट) निवेशित न किए जाने पर भी मानहानि के लिये मुकदमा चलाया जा सकता है। प्रार्थी का कहना है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को विधि (ला) का समान संरक्षण दिया जाना चाहिए परंतु धारा १९८ बी० द्वारा समान संरक्षण न देकर विभेदकरण किया जाता है इसलिए यह धारा संविधान विरुद्ध है।

न्यायालयों ने यह माना है कि युक्तिसंगत वर्गीकरण द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ का उल्लंघन नहीं होता। धारा १९८ बी० द्वारा लोकसेवकों को कुछ विशेष संरक्षण दिया जाता है और यह संरक्षण केवल तब दिया जाता है जब कि वे लोकसेवा संबंधी कार्य कर रहे हों। ऐसे लोकसेवक लोकसेवा संबंधी आवश्यक कार्य करते हैं। मानहानि का मुकदमा महीनों चलता रहता है और यदि लोकसेवक को मानहानि के लिये परिवाद निवेशित करने का नियम हो तो इस नियम से लोक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा में बहुत बाधा पड़ेगी। इसी सिद्धांत पर लोकसेवकों को धारा १९८ बी० द्वारा विशेष संरक्षण प्रदान किया जाता है। अतः इस संबंध में जो वर्गीकरण है वह युक्तिसंगत है। यह वर्गीकरण जाति और धर्म आदि पर आधारित नहीं है। धारा १९८ बी० का जो सिद्धांत है वह इतना ही है कि लोकसेवक का समय मुकदमेबाजी में नष्ट न हो।

साधारणतया मानहानि के मुकदमें की सुनवाई मजिस्ट्रेट अधिपत्र वाद (वारंट केस) के रूप में करते हैं। धारा १९८ बी० के अंतर्गत के मुकदमे की सुनवाई सत्र न्यायाधीश अधिपत्रवाद की तरह करते हैं। दोनों ही अवस्थाओं में प्रक्रिया (प्रोसीजर) एक ही है। ऐसे अभियुक्त की स्थिति उस अभियुक्त से बुरी नहीं है जिसके मुकदमे की सुनवाई साधारण मानहानि के मुकदमे के ढंग पर होती है। इसलिए धारा १९८ बी० में दी गई प्रक्रिया विशेष द्वारा अभियुक्त को कोई कठिनाई नहीं है।

दं० प्र० संहिता की धारा १९८ बी० भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ का उल्लंघन नहीं करती। प्रश्नगत् उपबंध वैध है। प्रार्थी की अन्वीक्षा में आगे की कार्यवाही जारी रहनी चाहिए।

प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है। दिनांक १५-४-१९५७ का स्थगित करनेवाला आदेश हटा लिया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१८८०) १९५८

इलाहाबाद उच्च न्यायालय १३

न्यायमूर्ति वी० डी० भार्गव

सत्यनारायण पांडे — वादी अपीलकर्ता

वि०

ध्रुव नारायण — प्रतिवादी उत्तरवादी

बस्ती के जिला न्यायाधीश की डिग्री दिनांक १४-१० १९५० के विरुद्ध द्वितीय अपील संख्या १६६।१९५१ दिनांक २१-३-१९५८

अ व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), धारा ९६ (३) और आ० २३-नि० ३—कुछ अभिकथनों को छोड़ देने पर केवल एक वादपद (ईशू) के निर्णय द्वारा डिग्री पारित की गई—ऐसी डिग्री की प्रकृति—अपील

ब—व्य० प्र० संहिता (१९०८) धारा १०० और १०१—नीचे के अपील के न्यायालय द्वारा तथ्य के प्रश्न के निर्णय का बंधन द्वितीय अपील में होता है

स—साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० १०१-से १०४ जब दोनों पक्ष साक्ष्य उपस्थित करते हों तो प्रमाण के भार का महत्व समाप्त हो जाता है—

द हिंदू विधि—संयुक्त परिवार—संयुक्तता की अभिधारणा—(साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धारा ११४)

निर्णय—

वादी ने कुछ जमींदारी संपत्ति के संबंध में घोषणा के लिये एक वाद निवेशित किया था और विकल्पतः उसकी प्रार्थना थी कि धारण (पोजेशन) भी दिला दिया जाय।

वादपत्र (प्लेंट) के अनुसार वादी का पिता बेनी प्रसाद और जमुना प्रसाद पांडे सगे भाई थे और एक में रहते थे। जमुना प्रसाद की मृत्यु २३–११–१९४२ को हुई उनकी एक विधवा श्रीमती रामराजी प्रतिवादी सं० २ और एक लड़की छविराजी प्रतिवादी सं० १ जीवित बची थीं पर बाद में उन दोनों की भी मृत्यु हो गई। छविराजी का दत्तक पुत्र इस मुकदमे में उत्तरवादी है।

वादी का कहना है कि हिंदू स्त्रियों के संपत्ति के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत विधवा को केवल सीमित संपदा का अधिकार था किंतु उसने इसे ३१–१–४४ को एक विलेख द्वारा हमारे पक्ष में अभ्यर्पण (सरेंडर) कर दिया और इस प्रकार हम उसके पूर्ण स्वामी हो गए और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए हमें इस घोषणा का अधिकार है और यदि हमारा धारण न पाया जाय तो धारण दिला दिया जाय।

अध्यर्पण (सरेंडर) होने के बाद प्रार्थी ने अपने पक्ष में दाखिल खारिज कराने के लिये प्रार्थनापत्र दिया किंतु इसमें जब छविराजी प्रतिवादी सं० १ ने आपत्ति कर दी तो नाम नहीं चढ़ा और इस प्रकार इस वाद को निवेशित करने की आवश्यकता पड़ी। प्रतिवादी सं० १ ने इनकार किया कि रामराजो के पति जमुनाप्रसाद एक में रहते थे। उसने अध्यर्पण करनेवाली बात से भी इनकार किया। उसने यह भी कहा कि जमुना प्रसाद की विधवा रामराजी नहीं है और उसकी स्त्री पहले ही मर चुकी थी। प्रतिवादी सं० १ ने कहा कि रामराजो द्वारा जिस अध्यर्पण विलेख का लिखा जाना कहा जाता है उसका बंधन हम पर नहीं है और वह एक फर्जी व्यवहार था।

अभिवचन (प्लींडिंग्स) के आधार पर कई वाद पद बने थे किंतु दोनों पक्षों के वकीलों ने बयान दिया कि इसमें केवल वाद पद सं० १ पर निर्णय दिया जाय और वह यदि वादी के पक्ष में हो तो अन्य वादपदों का निर्णय दिए बिना ही वादी के पक्ष में डिग्री दी जाय और यदि उसके विरुद्ध निर्णय हो तो वादी का वाद उत्सर्जित किया जाय।

वाद पद (ईशू) सं० १ इस प्रकार था—१६४३ में जब जमुना प्रसाद की मृत्यु हुई थी उस समय क्या वे हिंदू अविभक्त परिवार के सदस्य थे ?

अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय साक्ष्यों के परीक्षण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जमुना प्रसाद एक में रहते थे और इस प्रकार इस वाद पद का निर्णय वादी के पक्ष में दिया और वाद में डिग्री दे दी गई। इसके विरुद्ध अपील करने पर निर्णय हुआ कि जमुना-प्रसाद अलग रहते थे और इसलिए वाद उत्सर्जित कर दिया गया। इसी निर्णय के विरुद्ध वादी ने इस न्यायालय में अपील निवेशित किया है।

विद्वान् वकील ने बहस में कहा है कि अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने जो डिग्री पारित की है वह संमति डिग्री (कंसेंट डिग्री) है इसलिए उसके विरुद्ध अपील नहीं हो सकती थी और इस प्रकार अपील के न्यायालय ने जो डिग्री पारित की है वह बिना अधिक्षेत्र का है। यह बात न तो नीचे के अपील के न्यायालय में कही गई है और न तो इस न्यायालय में अपील करते समय अपील के आधारों में कही गई है। अपील के कुल १६ आधार हैं पर इस बात की कहीं चर्चा नहीं है। कुछ भी हो मैं सोचता हूँ कि इस बहस में बल नहीं है।

विद्वान् वकील ने कतिपय प्रमाणों पर निर्भर करते हुए कहा है कि जब कभी न्यायालय किसी प्रक्रिया (प्रोसीजर) विशेष को अपनाता है अथवा निर्णय के लिये जब कोई मामला किसी न्यायालय के समक्ष या किसी व्यक्ति के पास भेजा जाता है तो उस अवस्था में जो निर्णय होता है वह संमति डिग्री होती है और उसके विरुद्ध अपील निवेशित नहीं की जा सकती। मैं मानता हूँ कि यह बात ठीक है। किंतु यहाँ प्रश्न है कि न्यायालय ने इस मामले में क्या प्रक्रिया विशेष अपनाया था और यदि अपनाया था तो क्या यह प्रक्रिया ऐसी थी कि उसे संमति डिग्री कहा जा सकता है। इस प्रश्न पर विचार प्रत्येक मुकदमे की परिस्थिति को देखते हुए करना चाहिए; कोई एक सामान्य सिद्धांत निर्धारित नहीं किया जा सकता।

ए० आई० आर० १९३६ मद्रास ८५६ में निर्णय हुआ था कि जब कोई पक्ष न्यायालय से किसी ऐसी प्रक्रिया विशेष को अपनाने का अनुरोध करता है जो व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबंध से परे होता है तो बाद में बदलकर वह यह नहीं कह सकता कि इसके लिये न्यायालय दोषी है कि-उसने उस प्रक्रिया को अपनाया। इसमें प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) का सिद्धांत लागू होता है। न्यायालय का निर्णय पंच के पंचनिर्णय के समान होता है और सामान्य नियमानुसार इसके विरुद्ध अपील निवेशित नहीं की जा सकती।

उस मुकदमे में उभय पक्ष राजी हुए कि न्यायालय किसी आयुक्त (कमिश्नर) को भेजे और प्रतिवादी सं० २ जिस कुंजी को देता है उससे यदि दरवाजा खुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है तो वाद उत्सर्जित कर दिया जाय और यदि नहीं खुलता है तो वाद में डिग्री दे दी जाय। उस मुकदमे का निर्णय केवल इसी एक तथ्य के निश्चय पर निर्भर करता था; तत्व पर निर्णय देने की आवश्यकता नहीं थी। इस मामले में परिस्थिति दूसरी है। इसमें दोनों पक्ष इस बात पर राजी हुए थे कि केवल एक वादपद का निर्णय तत्व (मेरिट) पर किया जाय, मनमाने ढंग पर नहीं। या इसमें यह भी तय नहीं हुआ था कि न्यायालय किसी प्रक्रिया विशेष को अपनावे। इसमें न्यायालय को केवल उसी प्रकार कार्यवाही करनी थी जो वह अन्य मामलों में करता है। जो बात तय हुई थी उससे उत्तरवादी कभी हटा नहीं और साथ ही साथ यह भी है कि तय की हुई शर्त के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह पंच-निर्णय के लिये तय हुआ था। इसलिए न्यायालय का निर्णय पंच के पंचनिर्णय (अवार्ड) के समान भी नहीं है।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील ने एक दूसरी रूलिंग (ए० आई० आर० १९३० इलाहाबाद १२७) दिखलाया है। इसमें दोनों पक्ष राजी हुए थे कि मुंसिफ निरीक्षण करके निर्णय दें। उस निर्णय से ही प्रतीत होता है कि मुंसिफ को निरीक्षण करना अनिवार्य नहीं था। किंतु जब उभयपक्षों ने तय किया था कि मुंसिफ निरीक्षण करके जो निर्णय देंगे वह हमें मान्य होगा तो मुंसिफ की स्थिति पंच (आर्बिट्रेटर) की हो गई और पंच के पंचनिर्णय का जो महत्व होता है वही महत्व मुंसिफ के इस निर्णय को भी प्राप्त है। यहाँ इस मामले में तत्व (मेरिट) का ध्यान न रखते हुए किसी को उस प्रश्न का एकमात्र निर्णायक नियुक्त नहीं किया गया था इसलिए वह सिद्धांत इसमें लागू नहीं होता।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों में मुंसिफ की स्थिति एक प्रकार से पंच की थी और उन्हें निर्णय के लिये साक्ष्यों पर निर्भर नहीं करना था। इस मुकदमे में स्थिति यह थी कि पक्षों ने तय किया कि अन्य वादपदों–(ईशूज) पर निर्णय न देकर केवल एक वादपद के निर्णय के आधार पर पूरे मुकदमे का निर्णय किया जाय। इसमें साक्ष्यों का परीक्षण करना था, यह बात नहीं थी कि किसी व्यक्ति द्वारा मनमाने ढंग पर निर्णय देने की माँग की गई थी।

ए० आई० आर० १९२० प्रिवी कौंसिल १३९ पर भी निर्भर किया गया। इस रूलिंग में भी कुछ वादपदों पर निर्णय देना छोड़ दिया गया था। यहाँ तक तो वह इसके समान था किंतु किस भाँति शेष वादपदों का निर्णय किया जाय यह दोनों मुकदमों में सर्वथा भिन्न था। उपर्युक्त रूलिंग में वादी ने कुछ रुपए के लिये एक वाद निवेशित किया था। यह वाद कालबाधित (टाइमबार्ड) था फिर भी प्रतिवादी ने कहा कि यदि वादी रुपया प्रमाणित कर दे तो मैं सब रुपया दे दूँ। प्रतिवादी ने कालबाधित होने के अभिवचन (प्ली) को छोड़ दिया था। वादी ने जिस धनराशि को प्रमाणित किया उसे प्रतिवादी ने स्वीकार किया और इस प्रकार संमति डिग्री पर जब आपत्ति करना चाहा तो निर्णय हुआ कि ऐसी डिग्री पर पुनः विचार नहीं किया जा सकता। उस रूलिंग में जिस धनराशि के बारे में डिग्री दी जानेवाली थी उसके बारे में संमति (कंसेंट) थी यहाँ इस मामले में डिग्री पारित करने के लिये कोई संमति नहीं दी गई है। संमति डिग्री में जब पक्षों के बीच शर्त तय हो जाती है तो सम-झौते या संमति की शर्तों के अनुसार डिग्री पारित की जा सकती है।

यहाँ इस मामले में यदि न्यायालय को छान बीन किए बिना ही डिग्री पारित करना हो तो वह संभव नहीं है इसलिए इस डिग्री को संमति डिग्री (कंसेंट डिक्री) कहना ठीक नहीं है। यह डिग्री वह डिग्री है जो कुछ अभिवचनों (प्लीज़) को छोड़ देने के बाद तत्व (मेरिट) और एकमात्र तत्व पर ही पारित की गई है। इसलिए नीचे के न्यायालय में अपील करना ठीक था।

वादपद से स्पष्ट है कि यह प्रश्न तथ्य का प्रश्न है और ऐसे प्रश्न पर नीचे के न्यायालय के निर्णय का बंधन हम पर है पर विद्वान् वकील ने आपत्ति की है कि संयुक्त परि-वार रहनेवाली बात के प्रमाण का भार जो वादी पर रखा गया यह गलत था क्योंकि अभिधारणा होती है कि चाचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भतीजा एक में रहते हैं और अलग रहने का प्रमाण प्रतिवादी को देना चाहिए था।

यों तो कुछ अंश तक वादी पर इसका भार रखने में न्यायालय की गलती है पर एक तो प्रमाण के भार के प्रश्न पर इसका निर्णय हुआ नहीं वरन् इसका निर्णय उभय-पक्षों द्वारा उपस्थित किए हुए साक्ष्यों के परीक्षण द्वारा हुआ है और उस अवस्था में जब कि दोनों पक्ष साक्ष्य उपस्थित करते हैं और साक्ष्यों के मूल्यांकन के बाद निर्णय दिया जाता है तब प्रमाण के भार (बर्डेन आफ प्रूफ) का महत्व समाप्त हो जाता है और दूसरे, चाचा और भतीजा के एक में रहने की जो अभिधारणा (प्रेजंप्शन) आज से २५-३० वर्ष पहले हो सकती थी वह आज नहीं हो सकती क्योंकि अनेक परिस्थितियाँ ऐसी उपस्थित होती जा रही हैं कि संयुक्त परिवार टूटता जा रहा है। इस समय ऐसे संयुक्त परिवार की अभिधारणा (प्रेजंप्शन) को समाप्त करने के लिये बहुत ही कम साक्ष्यों की आवश्यकता है। इसलिए अभिधारणा के आधार पर बहुत अधिक निर्भर नहीं किया जा सकता।

तथ्य का दूसरा निष्कर्ष जिसपर आपत्ति की जा रही है वह है कि अलग रहने के संबंध में प्रतिवादी ने जो साक्ष्य दिया है वह पर्याप्त नहीं है। अलग रहने के संबंध में प्रतिवादी ने पारिस्थितिक, लेख्य संबंधी और मौखिक साक्ष्य दिया है जिस पर विश्वास किया जा सकता है।

नीचे के न्यायालय का यह निष्कर्ष ठीक है कि वे लोग अलग अलग रहते थे। यह तथ्य के प्रश्न का निष्कर्ष है इसलिए इस द्वितीय अपील में हमारे लिये इसे मानना अनिवार्य है। तदनुसार अपील परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

विशेष अपील निवेशित करने की अनुमति माँगी गई है किंतु उसे अस्वीकार किया जाता है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका, वर्ष ३ (१८८०) १९५८

इलाहाबाद उच्च न्यायालय १९

न्यायमूर्ति एम० सी० देसाई

आपराधिक पुनरीक्षण सं० १४१९।१९५६

(१७ सितंबर १९५८)

कारे उपनाम काले खाँ	—	प्रार्थी
	वि०	
राज्य	—	विपक्षी

दंड प्रक्रिया संहिता, धा० ११०—इस संदेह पर कि कोई व्यक्ति अभ्यस्त सेंधमार या चोर है उसे पाबंद (बाउंड डाउन) नहीं किया जा सकता।

न्यायमूर्ति देसाई—

प्रार्थी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ११० के अंतर्गत इस आधार पर पाबंद (बाउंड डाउन) किया गया है कि वह एक अभ्यस्त चोर और सेंधमार है। प्रार्थी के विरुद्ध साक्ष्य देने के लिये दो प्रकार के साक्षी आए हैं। एक तो वे लोग हैं जिन्होंने कहा है कि हमारे घरों में जो चोरी हुई थी उसमें हमारा संदेह है कि प्रार्थी ने चोरी की। दूसरे वे लोग हैं जो या तो प्रार्थी के गाँव के रहनेवाले हैं और पड़ोस के निवासी हैं और इनका बयान है कि प्रार्थी की चालचलन खराब है। प्रार्थी ने सर्वसाधारण के इस विचार संबंधी साक्ष्य से इनकार किया है। प्रार्थी की ओर से प्रतिवाद (डिफेंस) में भी साक्षी आए हैं और इन्होंने साक्ष्य दिया है कि प्रार्थी की चालचलन अच्छी है और वह ताँगा चलाकर जीवन निर्वाह करता है।

पहले प्रकार का साक्ष्य जो संदेह पर है अप्रतिग्राह्य (इनऐडमिसिबुल) है। अभियोजन को प्रमाणित यह करना चाहिए कि प्रार्थी अभ्यस्त सेंधमार और चोर है। इसको प्रमाणित करने के लिये यह दिखलाना चाहिए कि प्रार्थी ने इतनी सेंधें मारी हैं या उसने चोरी इस सीमा तक किया है कि उसे अभ्यस्त सेंधमार या चोर कहा जा सकता है अथवा यह प्रमाणित करना चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) १

न्यायमूर्ति एम० एल० चतुर्वेदी

(उच्च न्यायालय)

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० ३३२।१९५८

२१ मार्च १९५८

साधो सिंह — प्रार्थी

वि०

बाबूराम तथा अन्य— उत्तरवादी गण

उ० प्र० पंचायत राज नियमावली—नि० २५ (१) परंतुक (प्राविजो) (८)—व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८ आ० ४७ नि० १ (सी०)—पुनर्विचार (रेव्यू) प्रार्थनापत्र पर एस० डी० ओ० के पद का उत्तराधिकारी विचार कर सकता है।

न्यायमूर्ति चतुर्वेदी—

एस० डी० ओ० के एक आदेश के संबंध में उत्प्रेषण लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) और प्रतिषेध लेख (रिट आफ प्राहिबिशन) जारी करने के लिये भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

थोड़े में मुकदमे के तथ्य इस प्रकार हैं—प्रश्नगत गाँव सभा के प्रधान के पद के लिये एक चुनाव हुआ। उस चुनाव में प्रार्थी निर्वाचित घोषित हुआ। द्वितीय उत्तरवादी बाबूराम ने प्रधान के इस चुनाव को चुनौती देने के लिये एस० डी० ओ० के न्यायालय में चुनाव याचिका (एलेक्शन पेटिशन) निवेशित किया। यह चुनाव याचिका २७ जनवरी को उत्सर्जित हो गई। उसी के दूसरे दिन उत्तरवादी ने पुनर्विचार (रेव्यू) प्रार्थनापत्र निवेशित किया। एस० डी० ओ० ने यह पुनर्विचार प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया और प्रार्थियों को तत्व पर सुनवाई करने के लिये नोटिसें जारी कीं। इस आदेश के विरुद्ध लेख प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया और उस लेख प्रार्थनापत्र में विद्वान् एकाकी न्यायाधीश ने विद्वान् एस० डी० ओ० का वह आदेश निराकृत कर दिया जिसके द्वारा उन्होंने प्रार्थियों को नोटिस दिए बिना ही पुनर्विचार प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया था। विद्वान् एकाकी न्यायाधीश ने एस० डी० ओ० को निदेश दिया कि प्रार्थियों को नोटिस जारी करके पुनर्विचार (रेव्यू) प्रार्थनापत्र पर विचार किया जाय। प्रार्थनापत्र जब विचाराधीन था उसी बीच उक्त एस० डी० ओ० का स्थानांतरण हो गया और उनके पद के उत्तराधिकारी एस० डी० ओ० ने प्रार्थियों को नोटिस जारी की और सुनवाई के बाद तत्व पर निर्णय करने का निश्चय किया। यह आदेश उन्होंने १४ दिसंबर १९५७ को पारित किया कि पुनर्विचार प्रार्थनापत्र स्वीकार होता है और पक्ष अपने अपने साक्ष्य १० जनवरी १९५८ को प्रस्तुत करें।

प्रार्थियों के विद्वान् वकील ने केवल एक बात पर जोर दिया है कि परवर्ती अधिकारी उ० प्र० पंचायत राज नियमावली नि० २५ (१) के परंतुक ८ के अंतर्गत अपने पूर्ववर्ती अधिकारी के आदेश पर पुनर्विचार नहीं कर सकता। उनका कहना है कि उपर्युक्त उपबंध में है कि प्रार्थनापत्र देने पर एस० डी० ओ० अपने आदेश पर पुनर्विचार (रिव्यू) कर सकते हैं। 'अपने' (हिज़) शब्द के प्रयोग से विद्वान् वकील का कहना है कि वही अधिकारी उस आदेश पर पुनर्विचार कर सकता है जिसने उसे पारित किया था। उस अधिकारी का परवर्ती अधिकारी नहीं। इस संबंध में उन्होंने आ० ४७ नि० (१) सी० पर ध्यान दिलाया जिसमें दिया हुआ है कि पुनर्विचार प्रार्थनापत्र उसी न्यायालय में दिया जायगा जिसने डिग्री दी है या आदेश पारित किया है। हम विद्वान् वकील के इस कथन से सहमत नहीं होते हैं कि न्यायालय का अधिकारी विशेष ही पुनर्विचार कर सकता है। आ० ४७ के उपर्युक्त उपबंध में न्यायालय है न कि अधिकारी विशेष। न्यायालय वर्तमान रहता है जब कि उसके अधिकारी बदलते रहते हैं। आ० ४७ नि० २ में यह अवश्य दिया हुआ है कि उत्तराधिकारी अधिकारी कुछ विशेष आधारों पर पुनर्विचार कर सकते हैं। अर्थात् पुनर्विचार के मामले में परवर्ती को उतना अधिकार नहीं रहता जितना पूर्ववर्ती अधिकारी को था। इस नियम से कभी कभी बड़ा अन्याय हो जाता था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए विधानमंडल ने अधिनियम ६६।१९५६ द्वारा यह नियम हटा दिया और अब परवर्ती अधिकारी को पुनर्विचार के मामले में सीमित अधिकार नहीं है। इस मुकदमे का जब प्रतिप्रेषण (रिमांड) हुआ था उस समय अधिनियम ६६।१९५६ लागू हो चुका था।

पंचायतराज नियमावली के उपर्युक्त परंतुक के अंतर्गत निवेशित पुनर्विचार प्रार्थनापत्र में व्यवहार प्रक्रिया संहिता लागू होती है कि नहीं इस प्रश्न पर हमें यहाँ विचार नहीं करना है क्योंकि यदि लागू होती है तब भी परवर्ती अधिकारी को पुनर्विचार प्रार्थनापत्र के निर्णय में कोई रुकावट नहीं है।

पंचायतराज अधिनियम की नियमावली का जहाँ तक संबंध है उससे भी कोई कठिनाई नहीं पैदा होती। एस० डी० ओ० वह व्यक्ति है जो जिले के राजस्व (रेवेन्यू) प्रभाग का अधिकारी होता है। यह पद वर्तमान रहता है जब कि पदाधिकारी समय समय पर बदलते रहते हैं। एस० डी० ओ० के पद के अधिकारी को पुनर्विचार प्रार्थनापत्र का निर्णय करना चाहिए। तद्नुसार प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) २

(राजस्व मंडल)

रामकेर सिंह न्यायिक सदस्य

वाराणसी के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २५ अक्टूबर १९५६ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० ६ बाँ० सी० १९५६-५७

१५ अक्टूबर १९५८

नासिरुद्दीन— अपीलकर्ता

वि०

दुक्खी— विपक्षी

उ० प्र० भूराजस्व अधिनियम (यू० पी० लैंड रेवेन्यू ऐक्ट) १९०१, धारा २१०, २१९—राजस्व नियमावली परिच्छेद ९११-९१२—आरंभिक आदेश का आधार ही यदि न्यायिकेतर (नान जुडिशियल) हो तो इसको संशोधित या निराकृत करनेवाला आदेश भी न्यायिकेतर है—आयुक्त के यहाँ अपील और राजस्वमंडल में पुनरीक्षण—संधार्यता (मेनटेनेबिलिटी)

रामकेर सिंह—न्यायिक सदस्य—

वाराणसी के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २६ अक्टूबर १९५६ के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। प्रश्नगत् आदेश द्वारा विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने अपील स्वीकार कर लिया था और नीचे के न्यायालय के आदेश दिनांक २८ अप्रैल १९५६ और ३१ अगस्त १९५५ को निराकृत कर दिया था।

मुकदमे के तथ्य इस प्रकार हैं कि विद्वान् एस० डी० ओ० के न्यायालय में एक प्रार्थनापत्र दिया गया जो दुक्खी के नाम से था और उसमें दुक्खी की ओर से कहा गया था कि विवादग्रस्त खेतों पर हमारा (दुक्खी का) नाम शिकमी में गलत लिखा हुआ है इसलिए काट दिया जाय। विद्वान् एस० डी० ओ० ने उसी दिन दुक्खी का बयान लेकर उसका नाम काट देने का आदेश दिया। यह आदेश ३१ अगस्त १९५५ को दिया गया। ११ नवंबर १९५५ को दुक्खी के नाम से एक प्रार्थनापत्र फिर दिया गया और इसमें दुक्खी का कहना था कि हमने अपना नाम काटने का कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया था। और ३१ दिसंबरवाला आदेश न्यायालय को धोखा देकर प्राप्त किया गया है। दुक्खी की प्रार्थना थी कि ३१ दिसंबर का आदेश निराकृत किया जाय। एस० डी० ओ० ने अपने आदेश दिनांक २८ अप्रैल १९५६ द्वारा यह प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया। अपील करने पर विद्वान् आयुक्त ने अपील स्वीकार किया और ३१ अगस्त १९५५ और २८ अप्रैल १९५६ का आदेश इस आधार पर निराकृत किया कि नीचे के न्यायालय ने प्रक्रिया (प्रोसीजर) का पालन नहीं किया है।

दुक्खी का कहना है कि मजिस्ट्रेट ने जल्दी से पहल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश पारित कर दिया है। मजिस्ट्रेट ने प्रार्थनापत्र इस आधार पर अस्वीकार कर दिया था कि दुक्खी की पहचान इस न्यायालय के एक बहुत पुराने वकील ने की है। किंतु इस बात का महत्व इसलिए घट जाता है कि इसी वकील ने दुक्खी के विपक्षी की भी पहचान की है। प्रार्थी के विद्वान वकील का कहना है कि दुक्खी का दूसरा प्रार्थनापत्र कालबाधित था। किंतु ऐसी बात नहीं है। दुक्खी ने परिनियमित ६० दिन की अवधि के भीतर ही प्रार्थनापत्र निवेशित किया है क्योंकि ३१ अगस्त १९५५ को मजिस्ट्रेट ने आदेश पारित किया था और ११ नवंबर १९५५ को ही दुक्खी ने उसे निराकृत करने के लिये प्रार्थनापत्र दे दिया। दुक्खी के विद्वान् वकील ने आई० एल० आर० ३५ इलाहाबाद ३३१ और ए० आई० आर० १९३२ अवध २९३ पर निर्भर किया। पहली रुलिंग में निर्णय हुआ था कि व्य० प्र० सं० धारा १५१ के अतिरिक्त भी न्यायालय को अपनी गलती शुद्ध करने का अंतर्भूत अधिकार है तथा दूसरी रुलिंग में में निर्णय हुआ था कि व्यवहार प्रक्रिया की संहिता स्वतःपूर्ण संहिता नहीं है और न्यायिक न्यायाधिकरण ने सर्वदा यह मानकर काम किया है कि पक्षों के बीच वास्तविक न्याय होना ही प्रमुख उद्देश्य है।

इन रुलिंग्स के आधार पर विपक्षी के विद्वान् वकील की कहना है कि विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त को यह अधिकार था कि वास्तविक न्याय के लिये गलतियों को ठीक कर दें। मुकदमें की परिस्थिति को देखते हुए एस० डी० ओ० के आदेश को निराकृत करने का अधिकार अतिरिक्त आयुक्त को था। एस० डी० ओ० ने ३१ अगस्तवाले आदेश में विचार नहीं किया और वह आदेश न्यायिक ढंग पर नहीं दिया गया। विपक्षी का कहना है कि विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त के दिनांक २६ अक्टूबर १९५६ के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण नहीं हो सकता कारण कि एस० डी० ओ० का आदेश और विद्वान अतिरिक्त आयुक्त का आदेश सभी न्यायिकेतर (नान जुडिशियल) था और न्यायिकेतर आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण निवेशित करने का नियम नहीं है। विपक्षी के विद्वान् वकील ने राजस्व नियमावली के परिच्छेद ९११ और ९१२ का अभिदेश किया कि इस मामले की कार्यवाही न्यायिकेतर कार्यवाही है। १९५५ आर० डी० ११७ में निर्णय हुआ था कि चूँकि विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त के आदेश का संबंध न न तो बंदोबस्त से है और न न्यायिक मामले से इसलिए राजस्व मंडल में द्वितीय अपील नहीं निवेशित की जा सकती। १९५६ आर० डी० २३४ (पूर्ण न्यायासन, राजस्व मंडल) में निर्णय हुआ था कि भूराजस्व अधिनियम की धारा २१९ के अंतर्गत राजस्व मंडल केवल न्यायिक मामलों में ही पुनरीक्षण कर सकता है। इस मामले में एस० डी० ओ० का आदेश न्यायिकेतर था इसलिए इसके विरुद्ध भू राजस्व अधिनियम की धारा २१० के अंतर्गत तो अपील हो सकती है पर इसके संबंध में अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध धारा २१९ के अंतर्गत राजस्व मंडल में पुनरीक्षण नहीं हो सकता क्योंकि सारी कार्यवाही न्यायिकेतर प्रकृति की हुई।

इस प्रकार हमारा निर्णय है कि विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त का आदेश ठीक था और इस आदेश को उन्होंने भू राजस्व अधिनियम की धारा २१० के अंतर्गत अपने अधिक्षेत्र का प्रयोग करते हुए पारित किया था। विद्वान् एस० डी० ओ० का आदेश गलत था तथा न्यायिकेतर (नान जुडिशियल) था अतः राजस्व मंडल में पुनरीक्षण नहीं हो सकता। तत्व पर विचार करने पर भी इस पुनरीक्षण में बल नहीं दीखता और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ३

एस० एन० मित्रा न्यायिक सदस्य

(राजस्व मंडल)

लखनऊ फैजाबाद प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २० जून, १९५७ के विरुद्ध पुनरीक्षण सं० ११६।१९५६-५७

३० अगस्त, १९५८

राधाशरण साहु ... प्रार्थी

वि०

रामसेवक उपाध्याय ... विपक्षी

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिनियम, १९५१, धा० २३२. ३४१—व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८, धारा १४१ की व्याप्ति और जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २३२—

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा—

फैजाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के अपील सं० ४१८। १९५६-५७ में दिए हुए आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

रामसेवक प्रार्थी ने जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया था कि मैं १३५६ फ० के खसरा और खतौनी में अध्यासी (आकूपैंट) लिखा हुआ हूँ और अधिवासी था किंतु राधाशरण ने ३ जनवरी १९५० को दखलदिहानी के अंतर्गत हमारा धारण (पोजेशन) हटा दिया। उसकी प्रार्थना है कि धारण (पोजेशन) वापस मिलना चाहिए।

राधाशरण साहु ने एक प्रार्थनापत्र दिया कि इसी प्रश्न पर एक मामला व्यववहार (सिविल) न्यायालय में विचाराधीन है इसलिए जब तब उसका निर्णय नहीं हो जाता तब तक इस मामले की कार्यवाही रोक रखी जाय। चूँकि अधिवासी अधिकार के प्रश्न पर केवल राजस्व न्यायालय ही निर्णय दे सकता है। इसलिए यह प्रार्थना पत्र अस्वीकार कर दिया गया।

अन्वीक्षा न्यायालय ने चार वाद पद (ईशूज) बनाया और निर्णय दिया कि प्रार्थी को अधिवासी का अधिकार प्राप्त हो गया है, धारा २३२ के अंतर्गत धारण वापस पाने का उसे अधिकार है, प्रतिवादियों को भूमिधरी अधिकार प्राप्त है और इससे प्रार्थी के अधिवासी अधिकार पर कोई रुकावट नहीं पड़ती। प्रार्थनापत्र स्वीकृत हुआ। विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय मान लिया और अपील अस्वीकार कर दिया अस्तु यह पुनरीक्षण (रिवीजन) निवेशित किया गया है।

प्रार्थी के विद्वान वकील का कहना है कि उ० प्र० भूधारण (टेनेंसी) अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत जो मुकदमा चल रहा था उसमें डिग्री हुई और प्रार्थी ने ३ जून १९५० को 'दखल' ले लिया; इसकी द्वितीय अपील स्वीकृत हुई परंतु उसमें कह दिया गया कि जो मामला व्यवहार (सिविल) न्यायालय में इस प्रश्न पर चल रहा है कि अधिवासी अधिकार प्राप्त है कि नहीं उसका जब तक अंतिम निर्णय न हो जाय जब तक धारण वापस पाने की कार्यवाही रुकी रहे। प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि उस निर्णय के अनुसार प्रार्थी (रामसेवक) केवल व्य० प्र० संहिता की धारा ११४ के अंतर्गत ही धारण वापस पाने की कार्यवाही कर सकता था और वह भी व्यवहार न्यायालय के उक्त विचाराधीन मुकदमे के अंतिम निर्णय के बाद। १९५५ आर डी० ६४ के निर्णय के सिद्धांत के अनुसार धारा १४४ के अंतर्गत धारण वापस पाने में ३ महीने की अवधि (लिमिटेशन) लागू नहीं होती और इस प्रकार व्यवहार न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करने से रामसेवक को कोई हानि नहीं थी। इस प्रकार कहा गया कि धारा २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र नहीं दिया जा सकता था और चूँकि धारा २३२ के अंतर्गत जो प्रार्थनापत्र दिया गया है उसमें है कि मैं (रामसेवक) गत १४ वर्षों से धारण में हूँ पर उसमें कहीं नहीं है कि हमसे जबरदस्ती धारण (पोजेशन) छुड़ाया गया इसलिए लालजी तिवारी वि० सीताराम तिवारी के निर्णय के अनुसार बिना यह दिखलाए कि धारण जबरदस्ती छुड़ाया गया यह प्रार्थनापत्र संधार्य (मेनटेनेबल) नहीं है। विद्वान् वकील का कहना है कि नीचे के दोनों न्यायालयों ने जो धारा २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र स्वीकार किया वह गलत था।

विपक्षी के विद्वान् वकील का कहना है कि धारा १८० के अंतर्गत उपर्युक्त मुकदमे में राजस्व मंडल ने जो यह कह दिया कि दखल वापस लेने की कार्यवाही तब तक रुकी रहे जब तक व्यवहार न्यायालय के विचाराधीन मामले में अधिवासी अधिकार का अंतिम निर्णय न हो जाय वह इसलिए कहा था कि जब राजस्वमंडल ने निर्णय दिया उस समय अधिवासी अधिकार पर निर्णय केवल व्यवहार (सिविल) न्यायालय दे सकता था परंतु ६ अगस्त १९५४ के बाद अधिवासी के प्रश्न पर निर्णय देना एकमात्र राजस्व (रेवेन्यू) न्यायालय का अधिकार हो गया इसलिए अब व्यवहार न्यायालय के निर्णय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। विद्वान् वकील का कहना है कि उस मामले में 'अधिवासी' के अधिकार पर निर्णय देने के लिये व्यवहार न्यायालय ने इसे राजस्व न्यायालय में भेजा था और राजस्व न्यायालय ने भी निर्णय दे दिया है कि प्रार्थी (राम सेवक) अधिवासी है। विद्वान् वकील का कहना है कि रामसेवक (प्रार्थी) यह कह कर न्यायालय में आया था कि ३ जनवरी १६५० की दखल दिहानी के आधार पर हमको धारण (पोजेशन) छोड़ना पड़ा इसलिए यदि उसने कह ही दिया कि हमारा धारण गत १४ वर्षों से है तो इससे यह तथ्य नहीं समझा जा सकता कि उसका धारण जबरदस्ती नहीं छुड़ाया गया।

विपक्षी के विद्वान् वकील के कथन से मैं सहमत हूँ। ज० वि० अधिनियम की धारा ३४१ में यह दिया हुआ है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता जमींदारी विनाश अधिनियम में वहीं लागू होगी जहाँ जमींदारी विनाश अधिनियम में कोई उपबंध न हों। इसलिए जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २३२ में जब यह उपबंध स्पष्ट दिया गया है कि निश्चित अवधि के भीतर अधिवासी धारण वापस पाने के लिये प्रार्थनापत्र दे सकते हैं और इस प्रकार अवधि के भीतर जब रामसेवक (प्रार्थी) ने ज० वि० अधिनियम की धारा २३२ के अंतर्गत धारण वापस पाने के लिये प्रार्थनापत्र दिया तो यह सर्वथा ठीक था और व्य० प्र० संहिता की धारा १४४ (२) के अंतर्गत वाला प्रतिबंध इसमें लागू नहीं होगा कारण कि जमींदारी विनाश के अंतर्गत स्पष्ट उपबंध के स्थान पर व्यवहार प्रक्रिया संहिता का उपबंध लागू नहीं होगा।

नीचे के दोनों न्यायालयों का धारा २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र स्वीकार करना ठीक था। पुनरीक्षण असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ५

न्यायमूर्ति वी० डी० भार्गव

(उच्च न्यायालय)

बनारस के मुंसिफ श्री ओम् प्रकाश श्रीवास्तव के निर्णय दिनांक १६ अगस्त १६५४ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ६२२।१६५४

२६ अप्रैल १६५७

परसिद्धन सिंह तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

गयाप्रसाद — विपक्षी

अ—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार (संशोधन) अध्यादेश १६५४—अध्यादेश (आर्डिनेंस) संशोधन अध्यादेश था विखंडन अध्यादेश (रिपीलिंग आर्डिनेंस) नहीं—सामान्य वाक्यांश अधिनियम (जेनरल क्लाजेज ऐक्ट) की धारा ६ लागू नहीं होती—

ब—व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १६०८, धारा ११५—मुकदमें का निर्णय किसको कहते हैं—

स—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम १६५०, धारा ३३२, उ० प्र० ज० विनाश (संशोधन) अध्यादेश १६५४, धारा ६ द्वारा संशोधित—अधिवासी अधिकार के संबंध में व्यवहार न्यायालय और राजस्व न्यायालय के अधिक्षेत्र—अध्यादेश की धारा ६ विखंडन अध्यादेश (रिपीलिंग आर्डिनेंस) नहीं है वरन् संशोधन अध्यादेश है।

न्यायमूर्ति भार्गव

व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११६ के अंतर्गत मुंसिफ के उस आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है जिसके द्वारा उन्होंने एक वाद पद (ईशू) को राजस्व न्यायालय में लौटा दिया था। ऐसा उन्होंने उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार (संशोधन) अध्यादेश १६५४ के उपबंध के अनुसार किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथ्य इस प्रकार हैं कि इस मुकदमें में वादी ने कहा था कि हमें अधिवासी अधिकार प्राप्त हो चुका है और प्रतिवादी ने इसे इनकार किया था। जब यह वाद निवेशित हुआ तो समझा यह गया कि इसमें स्वत्व (टाइटिल) का प्रश्न है इसलिए इसी विश्वास पर एक वाद पद (ईशू) को व्यवहार न्यायालय में निर्णय के लिये भेज दिया गया। इस पर व्यवहार न्यायालय के निर्णय देने के पहले ही उ० प्र०. जमींदारी विनाश (संशोधन) अध्यादेश ६ अगस्त १९५४ को लागू हो गया।

इस संशोधन के अनुसार मुंसिफ ने आदेश पारित किया कि अब इसके निर्णय का अधिकार राजस्व न्यायालय का हो गया है इसलिए आगे की कार्यवाही के लिये इसे राजस्व न्यायालय में भेज दिया जाय। इसी आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

इस संबंध में पहला प्रश्न है कि मुंसिफ ने कोई निर्णय नहीं किया, उन्होंने केवल राजस्व न्यायालय में लौटा दिया। इस प्रकार लौटाना मुकदमा का निर्णय करना नहीं हो सकता और इसलिए व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत इस आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण (रिवीजन) प्रार्थनापत्र निवेशित नहीं किया जा सकता।

तत्व पर भी हम विद्वान् मुंसिफ के विचार से सहमत है। ६ अगस्त १९५४ को धारा ३३२ का संशोधन हो गया। ६ अगस्त १९५४ के पहले इस प्रश्न पर निर्णय दिया जा सकता था; इस तिथि के बाद यदि स्वत्व (टाइटिल) का प्रश्न नहीं है तो व्यवहार न्यायालय निर्णय नहीं कर सकता। अतः इस मामले में केवल राजस्व न्यायालय ही निर्णय कर सकता था।

प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि धारा ३३२ का संशोधन अतीत प्रभावी (रिट्रास्पेक्टिव) नहीं है इसलिए जब निर्णय के लिये वादपत्र पहले ही भेज दिया गया है तो उसमें संशोधन का प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह प्रक्रिया (प्रोसीजर) का प्रश्न है और प्रक्रिया में जैसा परिवर्तन होता है उसी परिवर्तन के अनुसार काम होना चाहिए। इस मामले में यदि व्यवहार न्यायालय ने ६ अगस्त १९५४ के पहले निर्णय दे दिया होता तो बात दूसरी होती किंतु जब कोई निर्णय नहीं हुआ तो व्यवहार न्यायालय का अधिक्षेत्र समाप्त हो गया।

विद्वान् वकील ने सामान्य वाक्यांश अधिनियम की धारा ६ के अनुसार कहा है कि जब किसी अधिनियम का विखंडन होता है तो इस संबंध में यदि कोई दूसरी बात नहीं कह दी गई है तो इस विखंडन से पहले के प्राप्त अधिकार, विशेषाधिकार आदि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। किंतु १९५४ का अध्यादेश विखंडन अध्यादेश (रिपीलिंग आर्डिनेंस) नहीं है वरन् संशोधन अध्यादेश है इसलिए यह उक्त बात का समर्थन नहीं करता। इसके अतिरिक्त यह प्रश्न सर्वथा प्रक्रिया (प्रोसीजर) का प्रश्न है कि अमुक वाद पद का निर्णय व्यवहार न्यायालय में हो कि राजस्व न्यायालय में; वह कोई अधिकार या विशेषधिकार इत्यादि नहीं है जिसके लिये सामान्य वाक्यांश अधिनियम की धारा ६ लागू होती है। इसलिए यदि मान भी लिया जाय कि यह विखंडन अध्यादेश है तव भी धारा ६ इसमें लागू नहीं होगी।

एक प्रतर्क यह भी है कि यह अधिनियम राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये संरक्षित था इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद २१३ के अंतर्गत अध्यादेश इस अधिनियम के संबंध में जारी नहीं हो सकता था। मैं इस प्रश्न के विस्तार में नहीं जाना चाहता परंतु इस अध्यादेश का स्थान उ० प्र० भूमि सुधार (अनुपूरक (सप्लिमेंटरी) अधिनियम १९५२ ले लिया है और तत्संबंधी समस्त प्रतिबंधों का पालन हो चुका है। किंतु तर्क के लिये यदि यह मान भी लिया जाय कि अध्यादेश अवैध था तो वर्तमान अधिनियम मुंसिफ के कार्य के पक्ष में है कारण कि यदि इस मामले को मुंसिफ के पास लौटा दिया जाय तव भी उन्हें इसके निर्णय का अधिकार नहीं होगा।

अतः मैं हस्तक्षेप करने योग्य कोई कारण नहीं देखता। पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है परंतु परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ७

एस० एम० सिदिकी न्यायिक सदस्य

(राजस्व मंडल)

शेखपुर, उझैनी, बदायूँ

रुहेलखंड के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक १७ अप्रैल १६५७ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० १०३।१६५६-५७

१२ जून १६५८

एत्रामुद्दीन हैदर — अपीलकर्ता

वि०

प्यारेलाल — उत्तरवादी

अ उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम १।१६५१ धा० २०, २३२—प्रयोज्यता—ऐसा अधिकार प्राप्त होने के लिये यह दिखलाना आवश्यक नहीं है कि अधिनिष्कासन (एविक्शन) जबरदस्ती हुआ था—अधिनिष्कासन संबंधी पहला निर्णय और प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा)

ब उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम १, १६५१ धा० २०—अधिवासी का अधिकार कब पैदा होता है—प्रविष्टि (ऐंट्री) यदि भूराजस्व अधिनियम (लैंड रेवेन्यू ऐक्ट) की धा० २८ के अनुसार नहीं है तो ऐसी प्रविष्टि के आधार पर अधिवासी अधिकार नहीं पैदा हो सकता।

एम० एम० सिदिकी न्यायिक सदस्य—

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम की धारा २०।२३२ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र था।

नीचे के न्यायालय ने इस प्रार्थनापत्र को स्वीकार किया और विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने अपील में इसी आदेश को मान लिया। अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध यह द्वितीय अपील है।

प्रार्थी प्यारे लाल का कहना था कि १३५६ फसली के खसरा में मेरा नाम अध्यासी (आकूपैंट) लिखा था किंतु १३५६ फसली में हमारा अधिनिष्कासन (एविक्शन) हो गया इसलिए हमें धारण (पोजेशन) वापस पाने का अधिकार है। विपक्षी का कहना है कि प्रार्थी प्यारेलाल का कभी धारण नहीं था इसलिए उसके अधिनिष्कासन का प्रश्न नहीं पैदा होता। १३५६ फसली की प्रविष्टि (ऐंट्री) को फर्जी कहा गया और कहा गया कि ऐसी फर्जी प्रविष्टि के आधार पर अधिवासी का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रार्थी ने इसके पहले उत्तर प्रदेश भूधारण (टेनेंसी) अधिनियम की धारा १८०।१८३ के अंतर्गत यह कहकर मुकदमा चलाया था कि १३५६ फसली में विपक्षी द्वारा हमारा धारण (पोजेशन) हटा दिया गया। इस मामले में निर्णय हुआ कि प्रार्थी कभी धारण में नहीं था इसलिए धारण च्युत भी नहीं किया गया। विपक्षी का कहना है धारणच्युति के प्रश्न पर यह निर्णय प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) होगा। आगे यह भी कहा गया कि धारणच्युति जब प्रमाणित नहीं हुई तो जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २० की व्याख्या १ के अनुसार धारा २३२ के अंतर्गत ऐसा प्रार्थनापत्र नहीं दिया जा सकता।

हमारे विचार से इस आपत्ति में बल नहीं है। धारा २० (बी०) (१) स्वतः पूर्ण है। इस धारा के अनुसार अधिवासी के अधिकार की प्राप्ति के लिये जो शर्त है वह इतनी ही है कि वह व्यक्ति १३५६ फ० के खसरा या खतौनी में उस खेत की अध्यासी(आकूपैंट) अभिलिखित हो। केवल इस शर्त का पालन हो जाने पर उसको अधिवासी का अधिकार प्राप्त हो जाता है। विपक्षी के विद्वान् वकील का कहना है कि धारा २० (बी०) (१) पर उस धारा की व्याख्या १ द्वारा प्रतिबंध लगाया गया है और वह प्रतिबंध है कि अधिवासी के अधिकार की प्राप्ति के लिये यह भी दिखलाना आवश्यक है कि उसका अधिनिष्कासन (एविक्शन) ३० जून १६४८ के बाद हुआ। विपक्षी के विद्वान वकील का कहना है कि जो व्यक्ति धारा २० बी० (१) की शर्तों का पालन करते हुए व्याख्या १ की भी शर्त का पालन करेगा केवल वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति धारा २३२ के अंतर्गत धारण वापस पाने के लिये प्रार्थनापत्र दे सकता है। व्याख्या १ का अभिप्राय यह नहीं है। व्याख्या १ का अर्थ केवल इतना ही है कि जिस व्यक्ति का अधिनिष्कासन ३० जून १९४८ के बाद हुआ है वह व्यक्ति भी धारा २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दे सकता है और उसे धारण वापस पाने का अधिकार है। मेरे विचार से धारा २३२ में प्रार्थनापत्र देने के लिये पहले यह प्रमाणित करना आवश्यक नहीं है कि अधिनिष्कासन हुआ है। विपक्षी के विद्वान् वकील ने बसावन वि० कादिर बख्श १९५८ आर० डी० ६५ पर निर्भर किया है। इसमें निर्णय हुआ था कि केवल धारा २३२ पर ही विचार नहीं किया जा सकता वरन् धारा २० की व्याख्या १ के साथ इस पर विचार करना चाहिए और इसलिए जहाँ जबरदस्ती अधिनिष्कासन की बात नहीं कही गई है वहाँ धारा २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र उत्सर्जित हो जाना चाहिए। अत्यंत संमान के साथ मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। मेरे विचार से धारा २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र देने के अधिकार की उत्पत्ति के लिये जबरदस्ती अधिनिष्कासन को प्रमाणित करना अनिवार्य नहीं है। इसके लिये इतना ही पर्याप्त है कि प्रार्थी १३५६ फ० के खसरा या खतौनी में अध्यासी (आकूपैंट) अभिलिखित हो और प्रार्थनापत्र देने की तिथि को धारण में न हो। इसलिए प्रार्थी को इस मामले में धारा २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र देने का अधिकार था यद्यपि धारा १८० १८३ के मामले में दिया हुआ निर्णय जबरदस्ती अधिनिष्कासन (फोर्सिबुल एविक्शन) के प्रश्न पर प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) है।

विपक्षी के विद्वान् वकील ने दूसरी आपत्ति उठाई है कि इस मामले में खसरा की १३५६ फ० की जिस प्रविष्टि के आधार पर अधिवासी अधिकार का होना कहा गया है वह प्रविष्टि उ० प्र० राजस्व अधिनियम (लैंड् रेवेन्यू ऐक्ट) की धारा २८ के अनुसार नहीं है इसलिए यह प्रविष्टि धारा २० (बी ०) के अंतर्गत अधिवासी अधिकार नहीं प्रदान कर सकती। यह सत्य है कि यह प्रविष्टि भू अभिलेख नियमावली के परिच्छेद ८७ के अनुसार नहीं की गई है। एक तो प्रविष्टि गलत ढंग पर की गई है और दूसरे अलादीन पटवारी ने बयान दिया था कि यह प्रविष्टि हमने नहीं की है अतः इन दोनों से इतना तो स्पष्ट है कि प्रविष्टि उ० प्र० भू राजस्व अधिनियम की धारा २८ के अनुसार नहीं की गई है और इससे प्रार्थी को अधिवासी अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता। १९५७ आर० डी० ५६ और १९५७ आर० डी० २४७ में क्रम से ऐसी ही बात कही गई है कि प्रविष्टि विधि के अनुसार होनी चाहिए या दूसरे शब्दों में ऐसी प्रविष्टि पटवारी द्वारा अपने काम के सामान्य क्रम में होनी चाहिए तथा यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है कि प्रविष्टि का आधार ठीक है कि नहीं। यदि इसका आधार गलत माना जाता है तो इस आधार पर की गई प्रविष्टि के बल पर अधिवासी अधिकार नहीं प्राप्त किया जा सकता। इन दोनों रूलिंग्स को मैं मानता हूँ।

प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि जो प्रविष्टि इस समय वर्तमान है वह निहित होने की तिथि के पहले कभी शुद्ध नहीं की गई थी इसलिए इस अवस्था में धारा २० व्याख्या २ के अनुसार इस पर आपत्ति नहीं की जा सकती। यह कथन मान्य नहीं हो सकता। यहाँ प्रविष्टि की शुद्धि का प्रश्न नहीं है। यदि यह प्रविष्टि भू अभिलेख नियमावली के परिच्छेद ८७ के अनुसार की गई होती और व्याख्या २ में दिए गए प्रकार से शुद्ध न की गई होती तो निश्चय ही यह प्रविष्टि सही होती। किंतु यह प्रविष्टि भू राजस्व अधिनियम की धारा २८ के अनुसार नहीं है इसलिए इसके आधार पर अधिवासी अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। यह शुद्ध की गई है कि नहीं यह तथ्य महत्व का नहीं है।

अतः प्रार्थी को अधिवासी अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। अपील सफल होती है और परिव्यय के साथ स्वीकार की जाती है।

अपील स्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Hurt	उपहत, चोट
Husband	पति
„ and wife	पति और पत्नी
Hnsbandman	कृषक
Husbandry	कृषिकर्म
Hush	नीरव, शांत
Hypothec	उपप्राधि
Hypothecary	उपप्राधीय
„ action	उपप्राधीय वाद
Hypothecate	उपप्राधीयन, उपप्राधीयित करना
Hypothecated	उपप्राधीयित
Hypothecation	उपप्राधीयन, उपप्राधि
„ bond	उपप्राधीयन बंध
Hypothecatory	उपप्राधीय

I

I am desired	मुझे कहा गया है कि
„ „ directed	मुझे निदेश दिया गया है कि
I. A. S	भा० प्र० से० (भारतीय प्रशासन सेवा)
I beg to remain, sir	भवत्प्रार्थी
I beg to remain, sir, your most obedient servant	प्रार्थी परमाज्ञाकर
I beg to report	मैं सविनय प्रतिवेदन करता हूँ, सविनय प्रतिवेदन है कि
Inconoclast	मूर्तिभंजक (२) उन्मूलनवादी
I. C. S.	भा० जा० से० (भारतीय जानपद सेवा)
Idea	विचार, कल्पना
Ideal	आदर्श, ध्येय
„ justice	आदर्श न्याय
Identical	एक समान, एकात्मक
Identification	पहचान, अभिज्ञान
„ mark	पहचान चिह्न
Identifier	पहचान करनेवाला, अभिज्ञाता
Indentity	पहचान, ऐकात्म्य
„ card	अभिज्ञान पत्रक, पहचान पत्रक
Ideology	विचार पद्धति, विचार धारा (२) वैचारिकी
Idiocy	मूढ़ता
Idiot	मूढ़

६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Idol	मूर्ति
If agreed the draft will be put up	यदि संमत हुआ तो प्रारूप प्रस्तुत किया जायगा
If any	यदि कोई
If a person applies	यदि कोई व्यक्ति आवेदन करे
,, free from disability	यदि निर्योग्य न हो
,, he should die	यदि वह मर जाए
,, it be conceded	यदि यह मान लिया जाए
Ignorance of law is no excuse	विधि की अनभिज्ञता क्षम्य नहीं
,, ,, the judge is the misfortune of the innocent	न्यायाधीश की अनभिज्ञता निरपराध का दुर्भाग्य है
Ill	त्रुटि २—दुर्भाग्य
,, advised	कुमंत्रित
Illegal	अवैध
Illegality	अवैधता
Illegalize	अवैध करना
Illegal possession	अवैध धारण
,, practice	अवैध आचरण
,, transaction	अवैध व्यवहार
Illegitimate	अवैध जारज
,, child	जारज
Illegitimation	जारजावस्था
Ill-fame	अकीर्ति
,,-gotten	अन्यायार्जित
Illicit	अवैध, निषिद्ध २. अनुचित
,, cohabitation	अवैध सहवास
,, connection	अवैध संबंध
,, emigration	अवैध उत्प्रवास
,, intercourse	अवैध मैथुन
Illiquid	अस्पष्ट
Ill-judged	अपनिर्णीत
Illogical	तर्कविरुद्ध
Ill-treat	दुर्व्यवहार करना
Illtreatment	दुर्व्यवहार
Ill-use	दुष्प्रयोग
Illusory	भ्रामक
Illustrate	निदर्शन करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Illustration	निदर्शन, उदाहरण
Illustrative	निदर्शनात्मक
Illustrious	ख्यातनामा
Illwill	द्वेष
Imaginary damages	काल्पनिक हानिपूर्ति
Imbecile	क्षीणबल, क्षीणबुद्धि
Imbroglio	जटिलता
Immaterial	सारहीन, अनावश्यक
„ allegation	असार अभिकथन
„ averment	असार दृढ़ोक्ति
Immediate	तत्काल, तात्कालिक, निकटतम
„ action	तुरंत कार्यवाही
„ death	तत्काल मृत्यु
Immediate descent	अव्यवहृत वंशानुक्रम
„ enforcement	तुरंत प्रवर्तन
„ family	निकटतम कुटुंब
Immediately after	ठीक पश्चात्
„ before	ठीक पहले
„ commencement	प्रारंभ होने के ठीक पहले
„ below	ठीक नीचे
„ preceding	ठीक पहले
Immediate measures	तत्काल उपाय
„ occupation	तात्कालिक अभिधारण
„ physical pssession	तत्काल वास्तविक धारण
„ release	तुरंत छोड़ना
Immemorial possession	स्मरणातीत धारण
„ use	स्मरणातीत उपयोग
Immigrant	आप्रवासी
Immigration	आप्रवासन, आप्रवास
Imminent	सन्निकट, समुपस्थित
„ danger	समुपस्थितभय
Immodesty	अशालीनता
Immoral	अनैतिक
Immoveable	अचल
„ property	अचल संपत्ति
Immune	१ प्रतीकारी २ प्रतिरक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Immunity	उन्मुक्ति
Impact	आघात
Impair the obligations of contracts	संविदा के दायित्व को परिक्षीण करना
Impartial enquiry	निष्पक्ष जाँच
Impartible estate	अविभाज्य संपदा
" property	अविभाज्य संपत्ति
Impeach	(क्रि०) महाभियोग लगाना
Impeachment	महाभियोग
" of annuities	वार्षिकी पर बाधा
" " waste	क्षय बाधा
" " witness	साक्षी का अभिशंसन
Impediment	अवबाधा
" in law	वैध अवबाधा
Impel	बाध्य करना
Impending	आसन्न
" danger	आसन्न भय
Imperative	१—आज्ञापक २—अनिवार्य, अलंघनीय
" orders	अलंघनीय आदेश
" statute	आज्ञापक परिनियम
Imperfect	अप्रवर्त्य
" delegation	अपरिपूर्ण प्रत्यायुक्ति
" obligation	अपरिपूर्ण दायित्व
" ownership	अपरिपूर्ण स्वामित्व
" partition	अपरिपूर्ण विभाजन, अपूर्ण बँटवारा
" right	अपरिपूर्ण अधिकार
" state	अपूर्णावस्था
" title	अपरिपूर्ण स्वत्व
" trust	अनिष्पादित न्यास
Imperial	साम्राजिक
Impersonation	अन्यपुरुषायण
Implead	वाद चलाना, अनुशस्त करना
Impleader	अनुशंसिता
Implement	साधन, उपकरण—(क्रि०)=परिपालन, कार्यान्वित करना
Implementation	परिपालन
Implements of husbandry	कृषि उपकरण
Implicate	(क्रि०) फँसाना, फाँसना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110725

Implication	१ ध्वनितार्थ २ उपलक्षण
Implication of law	विधिक ध्वनितार्थ
Implied	ध्वनित
,, abrogation	ध्वनित निराकरण
,, acceptance	ध्वनित स्वीकृति
,, agreement	ध्वनित संविद्
,, assumpsit	ध्वनित आश्राव
,, authority	ध्वनित प्राधिकार
,, condition	ध्वनित प्रतिबंध
,, confession	ध्वनित दोषस्वीकृति
,, consent	ध्वनित संमति
Implied contract	,, संविदा
,, covenant	ध्वनित संश्राव
,, dedication	ध्वनित समर्पण
,, easement	ध्वनित सुविधा
,, invitation	ध्वनित प्ररोचन
,, licence	ध्वनित अनुज्ञप्ति
,, malice	ध्वनित दुर्भावना
,, notice	ध्वनित सूचना
,, pledge	ध्वनित प्राधि
,, powers	ध्वनित शक्तियाँ
,, proimse	ध्वनित प्रतिज्ञा
,, ratification	ध्वनित अनुसमर्थन
,, release	ध्वनित मोचन
,, revocation	ध्वनित प्रतिसंहरण
,, term	ध्वनित निबंधन
,, trust	ध्वनित न्यास
,, waiver	ध्वनित अधित्याग
,, warranty	ध्वनित अध्याभूति
Imply	ध्वनित होना, उपलक्षित होना
Importance	महत्व, गुरुत्व
Import and Export (Control) Act.	आयात निर्यात (नियंत्रण). अधिनियम
Important case	महत्वपूर्ण वाद
Import Duties Act	आयात शुल्क अधिनियम
Import Trade Control Order	आयात व्यापार नियंत्रण आदेश
Impose	लगाना, करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Impose a fine	दंड लगाना
Imposed conditions	आरोपित प्रतिबंध
Imposition assessement and collection of taxes	करों का आरोपण निर्धारण और संग्रहण
Imposition of costs	व्ययारोपण
„ „ disability	निर्योग्यता आरोपण
„ „ fetters	बेड़ी डालना
„ „ handcuffs	हथकड़ी लगाना
„ „ new taxation	नए कर लगाना
„ „ penalty	शास्ति आरोपण
Impossibility of performance	पालन की अशक्यता
Impossible contract	अशक्य संविदा
Impost	कर, शुल्क
Impound	अवरुद्ध करना, अवरोधन
„ document	लेख्य अवरुद्ध करना
Impounded documeuts	अवरुद्ध लेख्य
Impracticable	अव्यवहार्य
Imprescriptible rights	चिरकालिकी अप्राप्य अधिकार
Impress	निमुद्रण
Impressed court fee stamp	निमुद्रित न्यायालय शुल्क मुद्रांक
„ document	निमुद्रित लेख्य
„ non-judicial stamp paper	निमुद्रित न्यायिकेतर मुद्रांक पत्र
„ stamp	निमुद्रित मुद्रांक
Impression of the thumb	अंगुष्ठ पद, अंगूठे की छाप
Imprest	अग्रदाय
Imprimatur	मुद्रणानुज्ञप्ति
Imprison	कारावास देना, कारावासन
Imprisoned	कारावासित
Imprisonment	कारावास
„ as well as fine	कारावास और दंड
„ for debt	ऋण के लिये कारावास
Improper discharge	अनुचित उन्मोचन
Improperly rejected	अनुचित रूप से अस्वीकृत
Improvement	सुधार
„ Trust	सुधार प्रन्यास
Impugn	खंडन करना, विरोध करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Impute	अभ्यारोपण
Inability to sue	वाद लाने की अयोग्यता, वाद न कर सकना
In a body	इकट्ठे
In absolute disregard	की ओर सर्वथा ध्यान न देते हुए
In accordance with law	विध्यनुसार, विधि के अनुसार
In accordance with rule	नियमानुसार
" " " the form	रूपानुसार
" " " " procedure	प्रक्रियानुसार
" " " " " laid down	दी गई प्रक्रिया के अनुसार
Inaccurate	अयथार्थ, अपरिशुद्ध
In a confidential capacity	गुप्त रूप से
Inadmissible	अप्रतिग्राह्य
" evidence	अप्रतिग्राह्य साक्ष्य
Inadvertently	असावधानी से
Inalienable	अनन्यक्राम्य
In any capacity	किसी भी रूप में
" " case	किसी अवस्था में भी
" " cause or matter	किसी वाद अथवा विषय में
" " form	किसी भी रूप में
" " particular case	किसी विशिष्ट अवस्था में
" " special case	किसी विशेष स्थिति में
" as much as	जहाँ तक कि
Inaugurate	उद्घाटन करना
In bank	(न्यायालय के समस्त न्यायाधीशों की बैठक में) पूर्ण न्यायालय में
" between	अंतस, बीच में
" blunt words	स्पष्ट शब्दों में
" broad outline	स्थूल रूप में
" camera	एकांत में
Incapacity	असमर्थता, असामर्थ्य
In capita (per capita)	प्रतिव्यक्ति
" case	यदि, अवस्था में, स्थिति में
" " it shall appear	यदि यह प्रतीत हो
" " of default	न चुकाने पर
" " " disagreement	मतभेद होने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In case of doubt	संदेह होने पर
,, ,, ,, need	आवश्यकता पड़ने पर
,, ,, ,, urgency	अविलंब स्थितियों में
,, cash	रोक
,, ,, or kind	रोक अथवा वस्तु रूप में
Incestuous adultery	अगम्य परस्त्रीगमन
,, bastardy	अगम्या जन्मता
,, fornication	अगम्यागमनीय संभोग
In charge	प्रभारी
In - chief	प्रमुख
Inchoate	असंपूर्ण
,, instrument	असंपूर्ण संलेख
,, interest	असंपूर्ण हित
Incidence	आपात
,, of taxation	करापात
Incidental	१—आपाती २—प्रासंगिक
,, costs	प्रासंगिक परिव्यय
Incident of a contract	संविदा प्रसंग
,, ,, an easement	सुविधा प्रसंग
Incised	भिन्न
,, wound	भिन्न क्षत
Incitation	अपोत्साहना
Incite	अपोत्साहन
Incitement	अपोत्साहन
Inciter	अपोत्साहक
In civil capacity	जानपद रूप में, असैनिक रूप में
,, ,, employ	असैनिक सेवा में
Incivility	अशिष्टता, असभ्यता, असौजन्य
Inclination	झुकाव
Inclined to agree	सहमत प्राय है
Include	समावेश करना, संमिलित करना
Included	अंतर्गत, अंतर्भूत
Including	अंतर्गत करते हुए, समेत, सहित
Inclusion	समावेश, अंतर्ग्रहण
Inclusive	सहित, समेत, संमिलित करके
Incognitio	अज्ञात, गुप्त रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क क्रमशः १०); ५॥) और ३॥।) है; एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी-१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक सौर मास के अंतिम सप्ताह में अर्थात् प्रत्येक अँगरेजी मास के दिनांक १५ तक प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि 'संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

सोल एजेंट :—

श्री भगवानदास गोवर्धनदास शाह,
के० २७।११, कूचा माधोदास सामिया,
भैरो बाजार,
वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

प्रकाशक और मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से तथा उसके लिये श्री सिद्धनाथ सिंह
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

विधि पत्रिका

वर्ष ३] जनवरी से मार्च १९५९ : पौष से फाल्गुन(सौर) सं० २०१५ : शक १८८०-८१ [अंक २-३

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

वाद तालिका	१
लेख खंड	१–३
अधिनियम खंड	७–११
सर्वोच्च न्यायालय	९–२४
इलाहाबाद उच्च न्यायालय	१७–३२
,, (राजस्व)	९–२४
विधिक अंग्रेजी-हिंदी-शब्दसंग्रह	१५५–१६२

वार्षिक शुल्क १०)

इस प्रति का २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

संपादक मंडल

(१) श्री व्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी।
(२) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी।
(३) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(४) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(५) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(६) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी।
(७) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(८) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी।
(९) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी।
(१०) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट }

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका जनवरी से मार्च १९५९

(शक १८८०-८१)

वाद तालिका

१—एस० एम० जकाती वि० बोर्कर	सर्वो० न्या०	२३
२—गंगा बख्श सिंह वि० सुखदीन	इला० उ० न्या०	२२
३—गजराम सिंह वि० एस० डी० ओ०	इला० (राजस्व)	१३
४—चौधरी पृथ्वी सिंह वि० गुरुदयाल	,, ,,	१२
५—चौधरी मुशीर अहमद खाँ वि० राजस्व मंडल, उ० प्र०	,, ,,	२०
६—नरेश अहीर वि० केवल अहीर	,, ,,	२१
७—पी० के० मित्रा वि० पश्चिमी बंगाल राज्य	सर्वो० न्या०	१५
८—बाबूराम वि० परागी	इला० (राजस्व)	६
९—भोगीलाल वि० बंबई राज्य	सर्वो० न्या०	१६
१०—मु० सधीर कुबरा वि० उ० प्र० राज्य	इला० उ० न्या०	३२
११—महावीर वि० राज्य	इला० उ० न्या०	१६
१२—यार मुहम्मद वि० लक्ष्मीदास	इला० (राजस्व)	२३
१३—रानी फूलकुमारी वि० राज्य	इला० (राजस्व)	१४
१४—रामधनी वि० कलक्टर	इला० उ० न्या०	२८
१५—रेवा, मु० वि० केदार सिंह	इला० (राजस्व)	१०
१६—विक्रीकर अधिकारी वि० कन्हैयालाल मुकुंदलाल सराफ	सर्वो० न्या०	६
१७—शिवसहाय शुक्ला वि० जिलाबोर्ड बाराबंकी	इ० उ० न्या०	३१
१८—हनुमानप्रसाद वि० राज्य	इला० (राजस्व)	२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष ३] जनवरी से मार्च १९५९ : पौष से फाल्गुन (सौर) सं० २०१५ : शक १८८०-८१ [अंक २-३

संपादकीय

अनैतिकता और अपराध—

अनैतिकता और अपराध दोनों जुड़ुवा बहन हैं। दोनों की उत्पत्ति एक साथ एक ही उदर से होती है। निर्धनता दोनों की जननी है। स्वामी विवेकानंद ने एक बार कहा था और ठीक ही कहा था कि खाली पेटवालों को उपदेश मत दो। 'बुभुक्षितः किम् न करोति···' जब मनुष्य भूख से व्याकुल होता है तब वह सत् और असत् का विचार छोड़ देता है। बँगाल के अकाल में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिले हैं जब माता ने शिशु के लिये मिले दूध को स्वयं पीकर अपने प्राणों की रक्षा की और छटपटाते शिशु के प्राण पखेरू उनको आँखों के सामने उड़ रहे थे। मातृ स्नेह से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं पर ऐसी परिस्थिति आने पर उसका महत्व समाप्त हो ही जाता है।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि धनी कुकृत्य नहीं करते पर निर्धनता अपराध को आधार शिला है। यदि जीवन निर्वाह के साधन पर्याप्त हों तो वहाँ उपदेश भी काम करता है, वहाँ चरित्र निर्माण की बातें की जा सकती हैं पर जहाँ पेट खाली है वहाँ उपदेश काम नहीं करता। धन के अभाव में पेट की ज्वाला की शांति के लिये ऐसे अमानुषिक कृत्य हो सकते हैं जिसे पैसेवालों को करने में सैकड़ों बार सोचना पड़ेगा। भूख से मरते हुए प्राणी के लिये जेल यातना, कोड़ों की मार, अपकीर्ति, दंड सब गौण हैं क्योंकि मरते प्राणी की आँखें पहले पेट की ओर जायँगी, कर्म-अकर्म के विवेचन में नहीं। इसलिए अपराध पर जब हम विचार करें तो हमारा प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि अपराधों के श्रोत पर हम गंभीरता पूर्वक विचार करें और उसी के साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह भी विचार करना पड़ेगा कि अपराध की ओर मन की वृत्ति क्यों जाती है। निर्धनता के अतिरिक्त इसके दूसरे भी कारण होते हैं इसलिए देखना है कि कुछ लोगों की स्वाभाविक प्रवृत्ति उस ओर क्यों हो जाती है साथ ही साथ इस पर भी विचार करना होगा कि आजकल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराध चिकित्सा की प्रणाली कहाँ तक अपराधों में वृद्धि या कमी करती है।

कुछ लोगों का झुकाव जन्म से ही अपराधों की ओर होता है और इसके लिये दंड व्यवस्था आवश्यक होती अवश्य है पर ऐसे अपराधी के मस्तिष्क पर दंड का प्रभाव प्रतिकूल ही पड़ता है। ऐसे दंडों की प्रति क्रिया और नए अपराधों को जन्म देती है। जब तक मनुष्य की अंतर्वृत्ति में परिवर्तन नहीं हो जाता, अपराध को वह कुकृत्य नहीं समझ लेता तब तक केवल दंड से अपराध की रोकथाम नहीं हो सकती। कभी कभी कठोर दंड समाज के प्रति घृणा को जन्म देता है और वह और भी क्रूर अपराधी बनाने में सहायक हो जाता है। दंड वाह्य उपचार हो सकता है पर अपराध जैसे समाज के भयंकर रोग के लिये यह मरहम पट्टी उपयुक्त चिकित्सा नहीं। इसका निदान कहीं और है। नाड़ी पहचानने के लिये चतुर वैद्य की आवश्यकता है। जैसे कोई वैद्य यदि एक ही प्रकार की दवा से सब प्रकार के रोगियों को अच्छा करने का प्रयास करे तो यह उसकी मूर्खता होगी उसी प्रकार सब अपराधियों के साथ एक ही प्रकार का उपचार विवेक पूर्ण नहीं कहा जा सकता। चंद्रशेखर आजाद के बाल्यकाल के निर्मम बेंतों से उनके जीवन में प्रतिहिंसा की ज्वाला भभक उठी, वे बेंत उपचार नहीं थे अविवेक पूर्ण हिंसात्मक प्रयोग थे।

सब रोगियों के साथ एक ही व्यवहार एक ही प्रकार की चिकित्सा रोग में वृद्धि का कारण होगा। घी और मधु पृथक् पृथक् अमृत तुल्य हैं पर बराबर की मात्रा में उनका प्रयोग विष तुल्य हो जाता है। इस प्रकार अपराधों की ठीक चिकित्सा न होने से समाज में राग द्वेष की वृद्धि होती है और अपराध घटने के स्थान पर बढ़ता है।

अपराध के लिये उत्तरदायी मूल तत्वों का अध्ययन करना होगा और उन तत्वों का नाश करने से ही अपराध की समाप्ति हो सकेगी। निर्धनता, मानसिक स्थिति, वातावरण, उपचार की दूषित कार्य पद्धति अनेक वस्तुएँ अपराध के लिये उत्तरदायी हैं। मनोवैज्ञानिक ढंग से जब तक अपराध का निदान नहीं होगा तब तक चिकित्सा भी निरर्थक सिद्ध होगी। आज की इस चिकित्सा पद्धति से समाज में पागलों की वृद्धि हो रही है और अपराध को समाप्त करना तो दूर रहा इनकी जड़ों से नए अपराधों का जन्म होता है। १९५४ में आगरा के मानसिक चिकित्सालय में साठ रोगियों में से ४० पागल ऐसे थे जिन्हें मृत्यु दंड मिला था किंतु अपील में इस दंड में कमी होकर काले पानी की सजा हो गई थी। यह एक ऐसी घटना है जिस पर गंभीरता पूर्वक विचार करना होगा। ६६ प्रतिशत पागल इस दूषित चिकित्सा पद्धति के परिणाम हैं। मृत्यु दंड प्राप्त व्यक्ति को एक छोटी कोठरी दी जाती है। उसके जीवन के सारे कारबार इसी कोठरी के दीवालों के भीतर हो सकते हैं। उसका संपूर्ण संसार सिकुड़कर इस कोठरी के रूप में परिणत हो जाता है। उसके मित्र, शत्रु सब इसकी दीवालें हैं, इन्हीं से बात कर सकता है। इसी रंगमंच पर उसके जीवन के नाटक का संपूर्ण खेल होता है। खड़ी दीवारों से वह कुछ कहना चाहता है पर वे सुनती नहीं। वे सुख दुःख से परे, चेतनाशून्य अनेक के दुर्भाग्य की कहानियों को अपने में समेट कर खड़ी हैं—जो भी उनके संपर्क में आया ईंट पत्थर का उसने बना लिया। सरकस के कठघरे की भाँति वह कोठरी छड़ों से घिरी हुई, जिसमें यमराजपुरी का वह वज्र सा ताला लगा है उसमें बंद वह कैदी सिसक कर रोते रोते जीवन काटता है; मौत के सहारे वह जिंदगी काटने का प्रयास करता है, वह मर भी नहीं सकता न मरने दिया जा सकता है क्योंकि उसकी जिंदगी का पहरा मौत दे रही है। उसके लिये दिन, रात्रि है, रात्रि प्रलय है, जिंदगी मौत सी है और मौत प्रेत सा—पर वह अपनी कहानी किससे कहता? उस काली कोठरी में, जो ऐसे अनेक अभागे कैदियों के जीवन से परिचित हैं, दया का संचार कहाँ। वह चीख उठता है चीख बाहर नहीं जाती, वह भीतर ही भीतर उसमें झुलस उठता है, मस्तिष्क विकृत हो जाता है सोचते सोचते एक ही दिशा में। समाज के प्रति घृणा हो जाती है यदि कहीं वह निर्दोष हुआ तो उसका हृदय द्वेष से भर जाता है। अंत में प्रकृति उसे पागल बनाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस चिंता से मुक्त करती है। यदि कहीं उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय से वह निर्दोषी सिद्ध हुआ या सजा कम हुई तो भी वह विकृत मस्तिष्क लेकर समाज में आता है—वह समाज के किसी काम का नहीं होता न समाज उसके काम का।

ऐसे लोग न पूरे पागल होते हैं न साधारण मनुष्य। ऐसे लोग आगरा भेज दिए जाते हैं। इस प्रकार यदि आज के पूरे कैदियों का अध्ययन किया जाय तो नई बात मिलेगी। जो लोग निर्दोष होने पर भी दंड पा जाते हैं क्या उनके मस्तिष्क पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती होगी। क्या यह कारण नहीं है कि इसी के फलस्वरूप वे समाज के सम्मुख एक भयंकर अपराधी के रूप में आते हैं ? यदि जितने कैदी दंड भुगत कर छूट जाते हैं उनका भी अध्ययन हो तो एक नया अनुभव प्राप्त होगा जिससे आज की अपराध चिकित्सा प्रणाली में हमें नए प्रयोग करने की प्रेरणा मिलेगी और इस पद्धति में परिवर्तन करने के लिये सोचने को बाध्य होंगे।

जेल में बंद कैदी सहानुभूति के स्थान पर छुटकारा पाता है; जमादार पहरुओं की फटकार और रह रह कर डाँट उसे निर्मम बना देता है। कुत्ते को भी प्यार की भूख होती है, पशु पत्ती के हृदय में भी प्यार की पिपासा होती है उस पिपासा के मुरझा जाने पर वह क्रूर और आक्रामक हो जाता है; वह मनुष्यता से नीचे उतर जाता है। आशा राख बन कर स्फूर्ति और स्पंदन का सर्वनाश कर डालती है, पर उसे समझाने की चेष्टा कौन करता है ? समाज का वह तिरस्कृत प्राणी दया की भिक्षा किससे माँगे ? पुलिस का दंड शेषनाग के फनों से अधिक भयंकर होता है—न्यायालय में चपरासी, पेशकार, मजिस्ट्रेट सब अधिकार के मद में रहते हैं फिर उसकी कहानी पर विश्वास कौन करेगा ? साक्षीगण घटना को देखे हों या नहीं पर न्यायालय में शपथ लेकर बयान देते हैं। वे मानों महाभारत के संजय के समान हैं।

आज की अपराध चिकित्सा पद्धति पागलों की वृद्धि करती है, अपराधों की नई शृंखला उत्पन्न करती है। इस पद्धति के अनुसार जो दया का पात्र है उसे दंड दिया जाता है और जिसे दंड देना चाहिए वह दया का पात्र बना कर छोड़ दिया जाता है और इस प्रकार बड़ी उलझन पैदा होती है। आवश्यकता इस बात की है कि इस क्षेत्र में एक आयोग बैठाया जाय जो संपूर्ण परिस्थितियों का अध्ययन करके उचित मार्ग निर्धारित करे।

सिद्धनाथ सिंह

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) रजिस्ट्रार उन परीक्षाओं के, जो नियत की जायँ, संचालन के लिये उत्तरदायी होगा और उनके लिये आवश्यक अन्य समस्त प्रबंध करेगा और उनसे संबद्ध समस्त प्रक्रियाओं के समुचित निष्पादन के लिये उत्तरदायी होगा।

(५) रजिस्ट्रार ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करेगा जो समय समय पर बोर्ड अथवा उपकुलपति द्वारा नियत किए जाय अथवा अपेक्षित हों।

(६) रजिस्ट्रार को विश्वविद्यालय के किसी कार्य के लिये कोई पारिश्रमिक न दिया जायगा, न वह स्वीकार करेगा, सिवाय उस पारिश्रमिक के जिसकी व्यवस्था परिनियमों द्वारा की गई हो।

छात्र कल्याण का डीन

१५—(१) छात्र कल्याण का डीन विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक पदाधिकारी होगा तथा बोर्ड के अनुमोदन के अधीन रहते हुये उप कुलपति द्वारा नियुक्त किया जायगा।

(२) छात्र कल्याण के डीन को देय वेतन तथा भत्ते वे होंगे जो नियत किये जायँ।

(३) छात्र कल्याण के डीन के निम्नलिखित कर्तव्य होंगे—

(क) छात्रों के निवास के लिये प्रबंध करना;

(ख) छात्रों को परामर्श देने के कार्यक्रम का संचालन करना;

(ग) उप कुलपति द्वारा अनुमोदित योजनाओं के अनुसार छात्रों के नियोजन का प्रबंध करना;

(घ) छात्रों के पाठ्यचर्या के अतिरिक्त कार्यों तथा आवश्यकताओं का पर्यवेक्षण करना;

(ङ) विश्वविद्यालय से जानेवाले स्नातकों को नियुक्ति पाने में सहायता देना; तथा

(च) विश्वविद्यालय के पूर्व छात्रों को संघटित करना तथा उनसे संपर्क बनाये रखना।

विद्वत् परिषद्

१६—(१) विद्वत् परिषद् विश्वविद्यालय के शिक्षा संबंधी कार्यों की भार साधक होगी और इस अधिनियम तथा परिनियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुये अध्यापन शिक्षा तथा परीक्षा के स्तरों और उपाधियाँ प्राप्त करने की अपेक्षाओं का नियंत्रण तथा सामान्य विनियमन करेगी और उसके अनुरक्षण के लिये उत्तरदायी होगी और ऐसे अन्य अधिकारों का प्रयोग तथा अन्य ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगी जो परिनियमों द्वारा उसे दिये जायँ या उस पर आरोपित किये जायँ। उसे शिक्षा संबंधी समस्त विषयों पर उप कुलपति को परामर्श देने का अधिकार होगा।

(२) विद्वत् परिषद् का संघटन तथा उसके सदस्यों की पदावधि नियत की जायगी।

फैकल्टियाँ

१७—(१) विश्वविद्यालय में वे फैकल्टियाँ होंगी जो नियत की जायँ।

(२) प्रत्येक फैकल्टी में वे विभाग होंगे जो नियत किये जायँ, तथा विभिन्न विभागों के लिये पाठ्य विषय परिनियमों द्वारा निर्दिष्ट किये जायँगे।

(३) प्रत्येक फैकल्टी का एक बोर्ड होगा जिसका संघटन तथा जिसके अधिकार नियत किये जायँगे।

(४) प्रत्येक फैकल्टी का एक डीन होगा जो ऐसी रीति से तथा ऐसी अवधि के लिये चुना जायगा जो नियत की जाय।

(५) डीन, फैकल्टी के बोर्ड का सभापति होगा और फैकल्टी से संबद्ध परिनियमों तथा विनियमों के सम्यक् अनुपालन के लिये उत्तरदायी होगा। वह फैकल्टी के विभागों में अध्यापन, अनुसंधान तथा प्रसार कार्य के संघटन और संचालन के लिये भी उत्तरदायी होगा।

(६) प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होगा जो विभाग के संघटन तथा संचालन के लिये डीन के प्रति उत्तरदायी होगा।

(७) विभागाध्यक्षों की नियुक्ति उसी प्रकार होगी तथा उनके कर्तव्य, अधिकार और कृत्य वे होंगे जो नियत किये जायँ।

कृषि प्रयोग केंद्र

१८—(१) विश्वविद्यालय में एक कृषि प्रयोग केंद्र स्थापित किया जायगा। इस अधिनियम तथा परिनियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, वह समस्त फैक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ल्टियों में आधारभूत तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार के अनुसंधान के लिये उत्तरदायी होगा।

(२) एक कृषि प्रयोग केंद्र संचालक होगा जो कृषि के डीन के प्रति उत्तरदायी होगा। उसका नाम निर्देशन कृषि के डीन द्वारा किया जायगा तथा उसकी नियुक्ति उप कुलपति द्वारा की जायगी।

(३) कृषि प्रयोग केंद्र संचालक कृषि का प्राविधिक प्रशिक्षण प्राप्त एक पूर्णकालिक पदाधिकारी होगा। वह परियोजनाओं के अभिलेखों को उचित रूप से रखेगा तथा अनुसंधान की प्रगति के प्रतिवेदनों को नियत रीति से प्रकाशन के लिये लेगा।

कृषि तथा गृह विज्ञान प्रसार सेवा

१९—(१) विश्वविद्यालय में एक कृषि तथा गृह विज्ञान प्रसार सेवा स्थापित की जायगी और वह, इस अधिनियम और परिनियमों के अधीन रहते हुए, कृषकों तथा गृहणियों को उनकी समस्याएँ सुलझाने में सहायता देने के निमित्त उपयोगी सूचना उपलभ्य करायेगी तथा नवयुवकों में कृषि के प्रति अभिरुचि का विकास करने के लिये उपाय करेगी, जैसे तरुण-संघों की स्थापना।

(२) एक प्रसार-संचालक होगा जो कृषि के डीन के प्रति उत्तरदायी होगा। उसका नाम-निर्देशन कृषि के डीन द्वारा होगा तथा नियुक्ति उपकुलपति द्वारा की जायगी।

(३) प्रसार-संचालक कृषि में प्राविधिक प्रशिक्षण-प्राप्त एक पूर्ण-कालिक पदाधिकारी होगा जो अनुसंधान के परिणामों के आधार पर प्रसार-कार्य का कार्यक्रम बनायेगा तथा उसे निष्पादित करेगा।

सदस्यता संबंधी अनुपूरक उपबंध

२०—(१) विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी या निकाय के (पदेन सदस्यों से भिन्न) सदस्यपदों में होने वाली सभी आकस्मिक रिक्तियों की पूर्ति यथासुविधा शीघ्र ऐसे व्यक्ति अथवा निकाय द्वारा की जायगी, जिसने उस सदस्य को, जिसका पद रिक्त हुआ हो, नियुक्त, निर्वाचित अथवा आमेलित किया हो, तथा आकस्मिक रिक्त में नियुक्त, निर्वाचित अथवा आमेलित व्यक्ति उस पदावधि के शेषकाल के लिये उक्त प्राधिकारी या निकाय का सदस्य रहेगा जिस तक कि वह व्यक्ति जिसके स्थान पर वह नियुक्त हुआ हो, उसका सदस्य रहता।

(२) कोई व्यक्ति, जो विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी का सदस्य किसी अन्य निकाय के प्रतिनिधि के रूप में हो, चाहे वह निकाय विश्वविद्यालय का हो या न हो, विश्वविद्यालय के उस प्राधिकारी का तभी तक सदस्य रहेगा जब तक वह उस निकाय का सदस्य बना रहे जिसके द्वारा वह नाम-निर्देशित, नियुक्त या निर्वाचित हुआ था और तत्पश्चात् जब तक कि उसके उत्तराधिकारी की यथाविधि नियुक्ति न हो जाय।

विश्वविद्यालय के प्राधिकारियों तथा निकायों की कार्यवाहियां रिक्तियों के कारण अवैध न होंगी

२१—विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी या किसी अन्य निकाय का कोई कार्य या कार्यवाही केवल इस कारण अवैध न होगी कि उसमें सदस्यपदों की रिक्ति या रिक्तियाँ विद्यमान थीं या किसी ऐसे व्यक्ति ने कार्यवाहियों में भाग लिया था जिसके विषय में कार्यवाही के पश्चात् यह ज्ञात हुआ हो कि वह ऐसा करने का अधिकारी नहीं था।

विश्वविद्यालय की सदस्यता से हटाया जाना

२२—बोर्ड किसी भी व्यक्ति को विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी या बोर्ड की सदस्यता से इस आधार पर हटा सकता है कि वह व्यक्ति नैतिक पतनवाले किसी अपराध का सिद्ध-दोष हुआ है।

सदस्यता और कार्यवाहियां

२३—यदि ऐसा कोई प्रश्न उठे कि कोई व्यक्ति बोर्ड के अधीनस्थ विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी का सदस्य यथाविधि निर्वाचित या नियुक्त हुआ है या नहीं अथवा ऐसा सदस्य होने का अधिकारी है या नहीं या विश्वविद्यालय का अथवा बोर्ड के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी का कोई निर्णय इस अधिनियम तथा परिनियमों के अनुरूप है या नहीं, तो वह मामला कुलपति को अभिदिष्ट किया जायगा, जिसका इस संबंध में निर्णय अंतिम होगा।

समितियों का संघटन

२४—जब इस अधिनियम या परिनियमों के अधीन विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी को समितियां नियुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का अधिकार दिया गया हो, तो वे समितियाँ, जब तक कि इसके प्रतिकूल कोई विशेष व्यवस्था न हो, संबद्ध प्राधिकारी के सदस्यों में से बनेंगी।

निवृत्ति-वेतन अथवा भविष्य निधि

२५—(१) विश्वविद्यालय अपने पदाधिकारियों, अध्यापकों, लिपिकवृन्द तथा अन्य नियोजित व्यक्तियों के लाभार्थ ऐसी रीति से तथा ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो नियत की जायं, ऐसे निवृत्ति वेतन, बीमा तथा भविष्य-निधियों की स्थापना करेगा, जिन्हें वह उचित समझे।

(२) जब कोई ऐसी भविष्य-निधि कुलपति द्वारा अनुमोदित नियमों के अधीन इस प्रकार स्थापित की गई हो, तो कुलपति यह घोषणा कर सकते हैं कि प्राविडेंट फंड्स ऐक्ट, १६२५ के उपबंध उस निधि पर उसी प्रकार प्रवृत्त होंगे, मानो वह कोई गवर्नमेंट प्राविडेंट फंड हो।

वेतन-भोगी पदाधिकारियों तथा अध्यापकों की नियुक्ति

२६—(१) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए विश्वविद्यालय के कर्मचारिवर्ग के सदस्य बोर्ड द्वारा उप कुलपति की सिफारिश पर नियुक्त किये जायंगे।

(२) उन दशाओं को छोड़कर जिनकी व्यवस्था परिनियमों में की गई हो, विश्वविद्यालय का प्रत्येक वेतन-भोगी पदाधिकारी तथा अध्यापक लिखित संविदा के अधीन नियुक्त किया जायगा। संविदा उप-कुलपति के पास रक्खा जायगा तथा उसकी एक प्रतिलिपि संबद्ध पदाधिकारी अथवा अध्यापक को दी जायगी। संविदा इस अधिनियम तथा तत्समय प्रवृत्त परिनियमों में सेवा की शर्तों से संबंधित उपबंधों से असंगत न होगा।

विश्वविद्यालय तथा उसके कर्मचारिवर्ग के बीच विवादों के लिये मध्यस्थ न्यायाधिकरण

२७—विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के किसी पदाधिकारी या अध्यापक के बीच संविदा से कोई विवाद उठने की दशा में, संबद्ध पदाधिकारी या अध्यापक की प्रार्थना पर वह विवाद मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अभिदिष्ट किया जायगा, जिसमें बोर्ड द्वारा नाम-निर्देशित एक सदस्य, संबद्ध पदाधिकारी या अध्यापक द्वारा नाम-निर्देशित एक सदस्य तथा कुलपति द्वारा नियुक्त एक निर्णेता होंगे। इस न्यायाधिकरण का निर्णय अंतिम होगा तथा न्यायाधिकरण द्वारा निर्णीत के विषयों के बारे में किसी भी दीवानी न्यायालय में कोई वाद प्रस्तुत न किया जा सकेगा। ऐसी प्रत्येक प्रार्थना आर्बीट्रेशन ऐक्ट, १६४० के अर्थ में इस धारा की शर्तों के अनुसार उक्त मध्यस्थ निर्णय के लिये प्रस्तुति समझी जायगी, तथा उस अधिनियम की धारा २ को छोड़कर उसके सब उपबंध तद्नुसार प्रवृत्त होंगे।

परिनियम

२८—इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, परिनियमों में किसी भी विषय की व्यवस्था की जा सकती है तथा उनमें विशेष रूप से निम्नलिखित की व्यवस्था की जायगी।

(क) विश्वविद्यालय के प्राधिकारियों का संघटन और उनके अधिकार तथा कर्त्तव्य;

(ख) विश्वविद्यालय के प्राधिकारियों के सदस्यों का निर्वाचन, उनकी नियुक्ति तथा उनका पद पर बना रहना, जिनके अंतर्गत प्रथम सदस्यों का पद पर बना रहना भी है, तथा स्थानों की पूर्ति एवं उक्त प्राधिकारियों से संबद्ध ऐसे अन्य सभी विषय जिनकी व्यवस्था करना आवश्यक या वांछनीय हो;

(ग) विश्वविद्यालय के पदाधिकारियो का नामोद्देश उनको नियुक्ति की रीति, और उनके अधिकार तथा कर्त्तव्य;

(घ) अध्यापकों का वर्गीकरण तथा वियुक्ति की रीति;

(ङ) विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों, अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों के लाभ के लिये निवृत्ति-वेतन या भविष्य-निधि का संघटन तथा बीमा योजना की स्थापना;

(च) उपाधियों तथा डिप्लोमाओं की स्थापना;

(छ) संमान्य उपाधियों का प्रदान;

(ज) फैकल्टियों की स्थापना, एकीकरण उपविभाजन तथा उनका समापन;

(झ) फैकल्टियों में अध्यापन विभागों की स्थापना;

(ञ) विश्वविद्यालय द्वारा अनुरक्षित छात्रावासों की स्थापना तथा उनका समापन;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ट) परिषद् वृत्तियों छात्रवृत्तियों, पदकों तथा पारितोषिकों की स्थापना;

(ठ) पंजीकृत स्नातकों के रजिस्टर का रखा जाना;

(ड) विश्वविद्यालय में छात्रों का प्रवेश तथा नामांकन और उनका इस प्रकार बना रहना;

(ढ) विश्वविद्यालय की सब उपाधियों तथा डिप्लोमाओं के लिये निर्धारित किये जाने वाले पाठ्यक्रम;

(ण) शर्तें जिनके अधीन छात्र उपाधियों, डिप्लोमा तथा अन्य पाठ्यक्रमों और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में प्रविष्ट किये जायेंगे तथा वे उपाधियाँ और डिप्लोमा प्राप्त करने के पात्र होंगे;

(त) विश्वविद्यालय के छात्रों के आवास की शर्तें तथा विश्वविद्यालय द्वारा अनुरक्षित छात्रावासों में आवास के लिये शुल्कों का लिया जाना;

(थ) ऐसे छात्रावासों का अभिज्ञान तथा प्रबंध जो विश्वविद्यालय द्वारा अनुरक्षित न हों;

(द) विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा वेतनभोगी पदाधिकारियों की संख्या, अर्हतायें, उपलब्धियाँ तथा सेवा की अन्य शर्तें (जिनके अंतर्गत सेवा-निवृत्ति की आयु भी है) तथा उनकी सेवा और कार्यकलापों का अभिलेख तैयार करना और रखना;

(ध) शुल्क जो विश्वविद्यालय द्वारा किसी प्रयोजन के निमित्त लिये जा सकें;

(न) शर्तें जिनके अधीन व्यक्तियों को छात्रावासों में अध्यापन के निमित अर्ह स्वीकृत किया जाय;

(प) परीक्षा-निकायों, परीक्षकों तथा परिमार्जकों की नियुक्ति को शर्तें और रीति तथा उनके कर्त्तव्य;

(फ) परीक्षाओं का संचालन;

(ब) पारिश्रमिक तथा भत्ते जिनके अंतर्गत यात्रिक भत्ते और दैनिक भत्ते भी हैं, जो उन व्यक्तियों को दिये जायगा जो विश्वविद्यालय के कार्यों में नियोजित हों;

(भ) परिषद्-वृत्तियाँ, छात्रवृत्तियाँ विद्यार्थी-वृत्तियाँ, निर्धन छात्र-वृत्तियाँ पदक तथा पारितोषिक प्रदान किये जाने की शर्तें; तथा

(म) अन्य समस्त विषय जिनके लिये इस अधिनियम के अनुसार परिनियमों द्वारा व्यवस्था होनी चाहिये या हो सकती है।

परिनियम कैसे बनाये जायेंगे

२६—(१) धारा २८ के खंड (क) से (ठ) में दिये गये विषयों के संबंध में प्रथम परिनियम राज्य सरकार द्वारा बनाये जायेंगे और उनकी एक प्रति राज्य विधान मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष १४ दिन तक रखी जायगी और, तदन्तर्गत पहल से की गई किसी भी बात की वैधता पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले हुये, वे ऐसे परिवर्धनों एवं परिवर्तनों के अधीन रहेंगे जिनके बारे में दोनों सदन सहमत हों।

(२) इस धारा में आगे दी हुई रीति से बोर्ड समय-समय पर नये या अतिरिक्त परिनियम बना सकता है तथा उन्हें संशोधित अथवा निरस्त भी कर सकता है।

(३) विद्वत् परिषद् बोर्ड के समक्ष उसके द्वारा पारित होने के निमित्त किसी भी परिनियम का प्रारूप प्रस्तावित कर सकती है और ऐसे प्रारूप पर बोर्ड की आगामी बैठक मे विचार किया जायगा :

किंतु प्रतिबंध यह है कि विद्वत् परिषद् ऐसे परिनियम का या किसी परिनियम के ऐसे संशोधन का प्रारूप प्रस्तावित नहीं करेगी जिससे विश्वविद्यालय के किसी वर्तमान प्राधिकारी की स्थिति या उसके अधिकार या संघटन पर प्रभाव पड़ता हो, जब तक कि ऐसे प्राधिकारी को उस प्रस्ताव पर अपना मत प्रकट करने का अवसर न दिया जा चुका हो तथा इस प्रकार व्यक्त किसी मत पर बोर्ड विचार करेगा।

(४) बोर्ड, उपधारा (३) में अभिदिष्ट किसी प्रारूप को अनुमोदित कर सकता है तथा उस परिनियम को पारित कर सकता है, अथवा उसे अस्वीकार कर सकता है, अथवा उसे विद्वत परिषद् को अंशतः या अंशत या पूर्णतः पुनर्विचारार्थ ऐसे संशोधनों सहित लौटा सकता है जिनका वह सुझाव दे।

(५) बोर्ड का कोई सदस्य बोर्ड के समक्ष किसी अपरिनियम का प्रारूप प्रस्तावित कर सकता है तथा बोर्ड उस प्रस्ताव को, यदि वह ऐसे विषय से संबंधित है जो विद्वत् परिषद् के क्षेत्र में नहीं है, स्वीकार कर सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा अस्वीकार कर सकता है। यदि ऐसा प्रारूप विद्वत् परिषद् के क्षेत्र के भीतर के किसी विषय से संबंधित हो तो बोर्ड उसे विद्वत् परिषद् के विचारार्थ अभिदिष्ट करेगा। विद्वत् परिषद् बोर्ड को यह प्रतिवेदन कर सकती है कि वह उस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं करती है और तब वह प्रस्ताव बोर्ड द्वारा अस्वीकृत समझा जायगा, या वह उक्त बोर्ड के पास उस रूप में प्रस्तुत कर सकती है जिसे विद्वत् अनुमोदित करे और इस प्रकार प्रस्तुत प्रारूप पर इस धारा के उपबंध उसी प्रकार प्रवृत्त होंगे जैसे कि विद्वत् परिषद् द्वारा बोर्ड को प्रस्तावित प्रारूप के विषय में प्रवृत्त होते हैं।

(६) किसी भी नये परिनियम या परिनियमों के परिवर्धन पर या किसी परिनियम के संशोधन या निरसन पर कुलपति के पूर्वानुमोदन की आवश्यकता होगी। कुलपति उसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं अथवा उसे और विचार निमित्त वापस भेज सकते हैं।

विनियम

३०—(१) विश्वविद्यालय के प्राधिकार तथा बोर्ड इस अधिनियम तथा परिनियमों से संगत विनियम बना सकते हैं, जिनमें—

(क) उनकी बैठकों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया तथा गणपूर्ति के लिये अपेक्षित सदस्य संख्या निर्धारित की जाय;

(ख) ऐसे समस्त विषयों की व्यवस्था की जाय जो इस अधिनियम तथा परिनियमों के अधीन विनियमों द्वारा व्यवस्थित किये जानेवाले हों; तथा

(ग) किन्हीं अन्य ऐसे विषयों की व्यवस्था की जाय केवल उन प्राधिकारियों या बोर्डों से संबंध रखते हों और जिनके लिये इस अधिनियम तथा परिनियमों में व्यवस्था न की गई हो।

(२) विश्वविद्यालय का प्रत्येक प्राधिकारी विनियम बनायेगा जिनमें उस प्राधिकारी के सदस्यों को उन दिनांकों की जिन पर बैठकें होंगी और उस कार्य की जिस पर बैठकों में विचार किया जायगा, पूर्व सूचना देने तथा बैठकों की कार्यवाहियों का अभिलेख रखने की व्यवस्था की जायगी।

(३) बोर्ड ऐसी रीति से जो वह निर्दिष्ट करे, विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी द्वारा इस धारा के अधीन बनाये गये किसी विनियम में संशोधन या उपधारा (१) के अधीन बनाये गये किसी विनियम के रद्द किये जाने का आदेश दे सकता है।

(४) परिनियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुये, विद्वत् परिषद् संबद्ध फैकल्टी के बोर्ड से तत्संबंधी प्रारूप प्राप्त करने के पश्चात् विश्वविद्याय की विभिन्न परीक्षाओं तथा उपाधियों के पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था करने के लिये विनियम बना सकती है।

(५) विद्वत् परिषद् फैकल्टी के बोर्ड से प्राप्त प्रारूप में परिवर्तन नहीं कर सकती है, किन्तु प्राप्त प्रारूप को अस्वीकार कर सकती है या उसे अपने सुझावों सहित और अधिक विचार करने के लिये फैकल्टी के बोर्ड को वापस कर सकती है।

छात्रों का निवास

३१—छात्र, विश्वविद्यालय द्वारा अनुरक्षित या उपकुलपति द्वारा अनुमोदित निवासों में नियत शर्तों के अधीन रहते हुये, रहेंगे।

अधिकारों का प्रतिनिधायन

३२—बोर्ड इस अधिनियम द्वारा प्राप्त अपने किसी अधिकार को परिनियम द्वारा किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को, ऐसे प्रतिबंधों तथा शर्तों के अधीन, जो नियत किये जायँ, प्रयोग करने के लिये दे सकता है।

वार्षिक प्रतिवेदन

३३—विश्वविद्यालय का वार्षिक प्रतिवेदन उपकुलपति के निदेशाधीन तैयार किया जायगा तथा बोर्ड द्वारा राज्य सरकार को उस वार्षिक बैठक के एक मास पूर्व प्रस्तुत कर दिया जायगा जिसमें उस पर विचार किया जायगा।

लेखे और लेखा परीक्षा

३४—(१) विश्वविद्यालय का वार्षिक लेखा और रोकड़-पत्र उपकुलपति के निदेशाधीन तैयार किये जायँ और किसी भी साधन से विश्वविद्यालय को प्राप्त हुई समस्त धनराशियाँ और ऐसी धनराशियां जिनका वितरण अथवा भुगतान किया गया हो, लेखे में दर्ज की जायँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंध में यह महत्वपूर्ण है कि अपीलकर्ता जब अपने बहनोई के घर पकड़ा गया तो उसने पूछा तक नहीं कि वह क्यों पकड़ा जा रहा है वरन् इसके विपरीत उसने साथियों से कहा कि हम २० रु० और एक बकरा देंगे और आप हमें बचा लें। यह बयान उसको अपराधी बनानेवाली प्रकृति का है और इस संबंध में यदि महेश्वर साय का बयान सत्य है तो यह पूर्णरूपेण स्वेच्छा से दिया हुआ बयान है, प्रश्न करने के परिणामस्वरूप नहीं। इसलिए मनुष्य के सिर के लिये ८० रु० दिए जाने की बात दोषस्वीकृति की सत्यता को अनिवार्यतः समाप्त नहीं करती।

यह मामला ऐसा है जिसमें दोषस्वीकृति और परिस्थितियों को एक साथ देखना चाहिए। उपर्युक्त परिस्थितियाँ अभियुक्त को दोषी सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं। विद्वान् अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त ने, जो मनुष्य के बालों का गुच्छा मिला था, उसे स्पष्ट करने के लिये प्रश्न नहीं पूछा था। अभियुक्त के विरुद्ध यह एक महत्वपूर्ण स्थिति थी और इसे स्पष्ट करने के लिये दं० प्र० संहिता की धारा ३४२ के अंतर्गत प्रश्न पूछना चाहिए था किंतु पूछा नहीं गया। विद्वान् अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त ने दं० प्र० संहिता की धारा २३७ का पालन नहीं किया। किंतु इन त्रुटियों से अभियुक्त को कोई हानि नहीं पहुँची है। परिस्थिति ऐसी थी कि यदि उससे पूछा जाता तो उसने इनकार ही किया होता।

सारांश यह है कि नीचे के न्यायालय का यह निर्णय ठीक था कि दोषस्वीकृति का बयान स्वेच्छापूर्वक दिया गया था और प्रतिग्राह्य है। इसको असत्य प्रमाणित करने के लिये कोई आधार नहीं है। अगहनी के बयान को छोड़ देने पर भी और परिस्थितियाँ ऐसी हैं जो दोषस्वीकृति के साथ वैशाखी के वध के अपराध से अभियुक्त के संबंध को स्थापित कर देती हैं। इन सबसे केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि कुछ रुपए की आशा से अपीलकर्ता ने वैशाखी की हत्या की।

परिस्थिति को देखते हुए दंडादेश में हस्तक्षेप करने में औचित्य नहीं है। इन कारणों से हमारा निर्णय है कि अपील में बल नहीं है और उत्सर्जित की जानी चाहिए।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९ सर्वोच्च न्यायालय ९

(इलाहाबाद से : ए० आई० आर० १९५६ इलाहाबाद ३८३)

२३ सितंबर, १९५८

एस० आर० दास मुख्य न्यायाधिपति, एन० एच० भगवती, बी० पी० सिंह, के० सुब्बाराव और के० एन० वांचू न्यायमूर्तिगण

विक्री कर अधिकारी, बनारस तथा अन्य अपीलकर्तागण

वि०

कन्हैयालाल मुकुंदलाल सराफ उत्तरवादी

आगरा (बुलियन एक्सचेंज) तथा अन्य अंतस्थ (इंटरवीनर्स)

व्यवहार अपील सं० ८७।१९५७

अ—संविदा अधिनियम (कंट्रैक्ट ऐक्ट) १८७२, धा० ७२—धा० ७२ में 'गलती' (मिस्टेक) शब्द में विधि और तथ्य (ला ऐंड फैक्ट) दोनों प्रकार की गलती आती है—धा० ७२ और धा० २१ तथा २२ में विरोध नहीं है—विधि संबंधी गलती के कारण यदि रुपया दिया गया है तो वह वापस किया जा सकता है।

ब—संविदा अधिनियम (१८७२), धा० ७२—विधि (ला) संबंधी गलती में पड़कर करदाता ने यदि कर दे दिया है तो और वह धन सरकार ने दूसरे कामों में लगा दिया है तब भी करदाता को रुपया वापस पाने का अधिकार है।

स—साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धा० ११५—यदि दोनों ही पक्ष विधि संबंधी गलती में पड़े हैं तो प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) का प्रश्न नहीं पैदा होता—यदि उपबंध स्पष्ट हो तो समता (इक्युटेबुल) विचार नहीं लागू किया जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द—परिनियमों की व्याख्या—भारतीय परिनियम के उपबंध यदि स्पष्ट हों तो उनकी व्याख्या के लिये विदेशी निर्णयों का सहारा नहीं लिया जा सकता।

य—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धा० ११२—उच्च न्यायालय के समक्ष बात मान ली गई किंतु अपील में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष वही बात उठाई गई तो इसे उठाने की अनुमति प्रदान नहीं करना चाहिए।

र—व्यवहार प्रक्रिया संहिता, (१९०८) धा० ११२—स्पष्ट रूप से जो बात न तो उच्च न्यायालय में कही गई है और न तो अपीलकर्ता ने जो बयान सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल किया है उसमें है तो भी सर्वोच्च न्यायालय इस पर बहस करने की अनुमति दे सकता है यदि वास्तव में यह प्रश्न अपील के विषय में आता है।

न्यायमूर्ति एन० एच० भगवती—

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं। उत्तरवादी भारतीय साझेदारी अधिनियम (इंडियन पार्टनरशिप ऐक्ट) के अंतर्गत एक रजिस्टर्ड फर्म है जो बनारस में स्वर्ण-पिंड (बुलियन गोल्ड) चाँदी के आभूषण और भावी संविदा (फारवर्ड कंट्रेक्ट्स) में व्यापार करता है। कर निर्धारण वर्ष १९४८-४९, १९४९-५० और १९५०-५१ में बनारस के विक्रीकर अधिकारी ने चाँदी के व्यापार पर कर लगाया। उत्तरवादी ने रुपया जमा किया।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक निर्णय बुद्धप्रकाश जयप्रकाश वि० विक्रीकर अधिकारी कानपुर, १९५२ ए० एल० जे० ३३२ (ए० आई० आर० १९५२ इलाहाबाद ७६४) में निर्णय हुआ कि (फारवर्ड ट्रैंजैक्शंस) पर विक्री कर का लगना शक्ति परस्तात् (अल्ट्रा वारस) है। इसके बाद उत्तरवादी ने उपर्युक्त विक्रीकर का जमा किया रुपया वापस माँगा। उ० प्र० के विक्री कर के आयुक्त ने रुपया वापस करने से इनकार कर दिया।

इसके बाद उत्तरवादी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लेख प्रार्थनापत्र निवेशित किया कि उत्प्रेषण लेख (रिट आफ् सेर्टियोरेरी) जारी करके कर निर्धारणवाले आदेश अभिखंडित किए जाँय और परमादेश लेख (रिट आफ् मैंडमस) जारी करके जमा किया हुआ कुल १३६५ रु० १२ आना वापस किया जाय। इलाहाबाद उच्च न्यायालय का वह निर्णय इस न्यायालय के निर्णय द्वारा मान लिया गया (ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ४५९) और उस लेख प्रार्थनापत्र की सुनवाई न्यायमूर्ति चतुर्वेदी ने की। विद्वान् न्यायाधीश ने कर-निर्धारणवाला आदेश अभिखंडित कर दिया और परमादेश लेख जारी किया कि उत्तरवादी ने जो रुपया जमा किया है उसे वापस कर दिया जाय।

अपीलकर्ता ने विद्वान् न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय में विशेष अपील निवेशित किया। उच्च न्यायालय के विभागीय न्यायासन ने उस अपील की सुनवाई किया और उसके समक्ष उत्तर प्रदेश के महाधिवक्ता ने बहस किया कि यह रुपया विधि संबंधी गलती के कारण दिया गया है इसलिए अब वापस नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविदा अधिनियम की धारा ७२ इसमें लागू होती है और सरकार को यह रुपया वापस करना चाहिए क्योंकि यह अवैध तरीके से लिया गया था। इस प्रकार वह अपील परिव्यय (कास्ट्स) के साथ उत्सर्जित कर दी गई।

अपीलकर्ताओं ने संविधान के अनुच्छेद १३३ (१) (बी०) के अंतर्गत प्रमाणपत्र के लिये प्रार्थना किया और प्रमाणपत्र दिया गया। इस प्रकार यह अपील सुनवाई के लिये और अंतिम निर्वर्तन के लिये आई है।

इसमें निर्णय का प्रमुख प्रश्न है कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा ७२ इसके तथ्यों में लागू होती है कि नहीं।

अपीलकर्ता की ओर से यहाँ कहा गया है कि विक्रीकर अधिनियम में ही अपील और पुनरीक्षण के लिये प्रक्रिया (प्रोसीज़र) है और उत्तरवादी को उसी प्रक्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पालन करना चाहिए था यदि उसने ऐसा नहीं किया तो व्यवहार न्यायालय में वह रुपया वापस पाने की कार्यवाही नहीं कर सकता और किसी भी अवस्था में लेख प्रार्थनापत्र रुपया वापस पाने के लिये निवेशित नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय के समक्ष महाधिवक्ता ने स्पष्ट बयान दिया है इसलिए वे दोनों प्रश्न अब यहाँ नहीं उठाए जा सकते। दूसरे इस प्रश्न की चर्चा न तो अपील के आधार में है और न तो यहाँ दिए हुए वाद विवरण में है—सारा मामला इस आधार पर चला है कि उत्तरवादी को लेख प्रार्थनापत्र में रुपया वापस पाने का अधिकार है। इसलिए इस विषय को यहाँ पर उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा ७२ इन शब्दों में है :—

"उस व्यक्ति को वह रुपया दे देना चाहिए या लौटा देना चाहिए जो उसे गलती (मिस्टेक) से या दबाव में पड़कर दिया गया है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन शब्दों द्वारा विधि की गलती या तथ्य की गलती में भेद नहीं बतलाया गया है। 'गलती' (मिस्टेक) शब्द का प्रयोग बिना किसी शर्त के किया गया है इसलिए इसमें विधि और तथ्य दोनों की गलती आती है। फिर भी इंगलैंड, अमेरिका, और आस्ट्रेलिया में विधि की इस स्थिति के आधार पर विधि की गलती के कारण जो रुपया दिया गया है उसे वापस नहीं किया जा सकता अतः बहस यह की गई है कि धारा ७२ का भी यही अभिप्राय होता है।

इसमें संदेह नहीं कि इंगलैंड अमेरिका और आस्ट्रेलिया में स्थिति यह है कि रुपया जब स्वेच्छा से दिया जाता है अर्थात् रुपया देने के लिये बाध्य नहीं किया गया था या अनधिकृत दबाव नहीं डाला गया था और संपूर्ण तथ्यों से अवगत होने पर रुपया दिया गया था तो उसे वापस नहीं लिया जा सकता यद्यपि वह बिना किसी प्रतिफल (कंसिडरेशन) के था। देखना है कि क्या यही अवस्था भारत में भी है ?

पहले धा० ७२ पर विचार करना है। यदि धारा के उपबंध स्पष्ट हैं तो विदेश में इस संबंध में विधि की क्या स्थिति है इसका महत्व समाप्त हो जाता है। दूसरे देशों में विधि की क्या स्थिति है इस पर विचार करने की आवश्यकता उस समय पड़ सकती है जब कि धारा में कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष अस्पष्टता हो और न्यायालय को विधान मंडल के वास्तविक विचार को स्थिर करना हो। यदि परिनियम के शब्दों में ऐसी कोई अस्पष्टता न हो तो न्यायालय का यह कर्तव्य है कि परिनियम के सादे शब्दों का अर्थ लगाकर उनको लागू करे। १८९१ ए० सी० १०७ पृ० १४४ पर इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया गया था कि परिनियम का अर्थ लगाने के लिये बाहर भ्रमण नहीं करना चाहिए वरन् उसकी भाषा का ही सादा अर्थ लगाना चाहिए अन्यथा उस परिनियम का महत्व ही समाप्त हो जायगा।

इसको आई० एल० आर० २३ कलकत्ता ५६३ में माना गया था और प्रिवी कौंसिल ने भी मोहरी बीबी वि० धर्मदास घोष ३० भारतीय अपील्स ११४ में व्याख्या के इसी सिद्धांत का समर्थन किया था। इसमें प्रिवी कौंसिल को संविदा अधिनियम धारा १० की व्याख्या करनी थी। उनके सामने पहले के निर्णय थे जिनमें अवयस्क की संविदा को केवल विवर्ज्य (वायडेबुल) कहा गया था। इस विषय पर समय समय पर बहुत से न्यायाधीशों ने विरुद्ध निर्णय दिया था और कुछ निर्णयों में अवयस्क (माइनर) की संविदा को प्रभावशून्य (वायड) भी कहा गया था। जब उपर्युक्त मुकदमे में यह प्रश्न उठा कि अवयस्क द्वारा की गई संविदा प्रभावशून्य है क्या केवल विवर्ज्य तो श्रीपतियों ने इसके निर्णय के लिये स्वयं संविदा अधिनियम पर ही आना उचित समझा, इसके पहले विधिक स्थिति क्या थी इसको छोड़ दिया। इन्होंने स्पष्ट कहा कि :—

"सारा प्रश्न स्वयं संविदा अधिनियम के अर्थ पर ही आ जाता है।" उन्होंने इसके निर्णय के लिये संविदा अधिनियम की कतिपय धाराओं को उद्धृत किया और तब वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संविदा प्रभावशून्य है या विवर्ज्य इस पर विचार करने के पहले यह मान लिया गया रहता है कि अधिनियम के अंतर्गत कोई संविदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी और अवयस्क यदि उसमें हो तो यह प्रश्न उठता ही नहीं क्योंकि उसमें संविदा करने की सामर्थ्य है ही नहीं।

ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ४४ में संविदा अधिनियम की धारा ५६ विचाराधीन थी। उसमें निर्णय देते समय समर्थन में न्यायमूर्ति फजलअली का ए० आई० आर० १९५२ सर्वोच्च न्यायालय ९ में व्यक्त विचार उद्धृत किया गया था कि भारतीय संविदा अधिनियम में जो बात दी हुई है वह स्वतः पूर्ण है और इस परिनियमित उपबंध के लिये विदेश के सिद्धांत का सहारा नहीं लेना चाहिए। इंगलैंड के निर्णय केवल (परसुएसिव) होते हैं। इन निर्णयों से केवल इतना ही काम लिया जा सकता है कि ऐसी ही परिस्थिति में इंगलैंड में ऐसा निर्णय हुआ था, इससे अधिक नहीं।

इसलिए यह स्पष्ट है कि उपबंध के ठीक अर्थ और उसके ठीक अभिप्राय को समझने के लिये हमें स्वयं परिनियम के शब्दों पर ही आ जाना चाहिए—इन सब पर विचार करना एकदम छोड़ देना चाहिए कि पहले की विधि की स्थिति क्या थी या जब उस परिनियम का अधिनियमन हुआ तो इंगलैंड या अन्य देशों में स्थिति क्या थी। यदि ऐसा नहीं किया गया तो वह व्याख्या करना न होकर विधि का बनाना होगा। (देखिए ए० आई० आर० १९३८ प्रिवी कौंसिल २८१ पृ० २८३ पर)

भारतवर्ष के न्यायालयों ने उपर्युक्त सिद्धांत को नहीं अपनाया है और कई निर्णय हुए हैं कि यदि विधि संबंधी गलती में पड़कर रुपया दिया गया है तो उसमें धा० ७२ लागू नहीं होती। देखिए ए० आई० आर० १९२० बंबई १९२ और ए० आई० आर १९१९ मद्रास १७७। इन निर्णयों के आधार मुख्यतया इंगलैंड के निर्णय हैं और भारतीय संविदा अधिनियम की धारा २१ है जिसमें दिया हुआ है कि कोई संविदा केवल इस आधार पर विवर्ज्य नहीं होगी कि वह ब्रिटिश भारत में लागू किसी विधि के बारे में गलती के कारण हुई हो। दूसरी ओर कलकत्ता उच्च न्यायालय ने ए० आई० आर० १९४९ कलकत्ता २४५ में निर्णय दिया था कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा ७२ में तथ्य की ही गलती नहीं है वरन् इसमें विधि के संबंध की भी गलती आती है। इसमें यह भी कहा गया कि इस धारा में और संविदा अधिनियम की धारा २१ में विरोध नहीं है कारण कि वह धारा विधि की गलती के कारण रुपया देने में लागू नहीं होती वरन् विधि की गलती के कारण संविदा होने में लागू होती है जब कि धारा ७२ गलती के कारण रुपया देने के संबंध में है जो कि या तो संविदा के अंतर्गत होता ही नहीं या यदि होता भी है तो यह संविदा का कारण नहीं होता।

प्रिवी कौंसिल ने इस मतभेद को शिवप्रसाद सिंह वि० श्रीचंद चांदी (ए० आई० आर० १९३८ प्रिवी कौंसिल २९७) में दूर कर दिया। उसमें श्रीपतियों ने कहा कि "गलती" (मिस्टेक) का अर्थ करनेवाले प्रमाण बहुत ही कम हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि कोई निश्चित निर्णय हुआ है इसलिए उन्होंने कहा कि हमें इस प्रश्न पर विचार करना है। प्रिवी कौंसिल के श्रीपतियों का कहना है कि उन विद्वान् न्यायाधीशों ने जिन्होंने "गलती" शब्द का बहुत ही सीमित अर्थ लगाया है प्रतीत होता है कि वे पोलक और मुल्ला के भारतीय संविदा अधिनियम की धारा ७२ के भाष्य से प्रभावित थे। उस भाष्य में है कि यों तो विधि की गलती को इस धारा द्वारा हटाया नहीं गया है किंतु धा० २१ से पता चलता है कि यह शामिल नहीं किया गया है। इसी के आधार पर ए० आई० आर० १९२० बंबई १९२ में निर्णय हुआ था कि देखने में यही आता है कि गलती में विधि की गलती भी है किंतु धा० २१ में है कि कोई संविदा इस आधार पर विवर्ज्य (वायडेबुल) नहीं होगा कि वह ब्रिटिश भारत में लागू किसी विधि की गलती के कारण की गई है। इस धारा का प्रभाव ही उस समय समाप्त हो जायगा जब कि एक पक्ष विधि की गलती के कारण दिए हुए रुपए को धा० ७२ के अंतर्गत वापस पा सकता है और धा० २१ के अंतर्गत संविदा लागू भी रहेगी। बंबई उच्च न्यायालय ने कहा था कि यह पोलक और मुल्ला का तर्क है जो सही प्रतीत होता है। ए० आई० आर० १९१९ मद्रास १७७ में निर्णय हुआ था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गलती" का यों तो सीमित अर्थ नहीं किया जा सकता किंतु यह वही गलती है जिसके लिये धा० २० और २१ में सहायता प्रदान की जा सकती है और भारत में स्थिति यह है कि यदि किसी ने विधि की गलती के कारण रुपया दे दिया है तो समता के आधार पर उसे वापस करने के लिये सहायता प्रदान नहीं की जा सकती। धा० ७२ का सीमित अर्थ करनेवाला इसके अतिरिक्त कोई अन्य निर्णय नहीं है। प्रिवी कौंसिल के श्रीपतियों ने कहा कि यह तर्क गलत है। यदि विधि की किसी गलती में पड़कर कोई संविदा हुई है तो धा० २१ कहती है कि इस कारण वह संविदा विवर्ज्य (वायडेबुल) नहीं है। यदि उस संविदा के अंतर्गत रुपया दिया गया है तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह रुपया विधि की किसी गलती के कारण दिया गया; यह इसलिए दिया गया कि एक वैध संविदा के अंतर्गत इसे देना था और यदि नहीं दिया जाता तो जबरदस्ती वसूल किया जाता। 'गलती से रुपया देना' इसका धा० ७२ के अंतर्गत यह अर्थ होता है कि रुपया विधिक रूप से देय (ड्यू) नहीं है और जिसको जबरदस्ती वसूल नहीं किया जा सकता; यह सोचना कि रुपया देय (ड्यू) है जब कि वास्तव में वह देय नहीं है। धा० २१ और धा० ७२ में कोई विरोध नहीं है और धा० २१ के साथ इसके असंगत होने की बात यदि ठीक है तो धा० २२ से भी यह असंगत होनी चाहिए और निष्कर्ष यह निकलेगा कि धा० ७२ तथ्य की गलती में भी लागू नहीं होगी। श्रीपतियों ने धारा ७२ का सीमित अर्थ नहीं लगाया पर एक बात स्पष्ट कर दी कि यह सिद्धांत प्रत्येक परिस्थिति में समान रूप से लागू नहीं होगा। कुछ परिस्थितियाँ जैसे प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) आदि ऐसी हो सकती हैं कि रुपया वापस नहीं किया जा सकता।

हमारा निर्णय है कि प्रिवी कौंसिल के श्रीपतियों ने धा० ७२ का जो अर्थ किया है वह ठीक है। इस धारा में 'गलती' (मिस्टेक) शब्द का जो प्रयोग किया गया है उसका सीमित अर्थ नहीं होता वरन् इसमें विधि एवं तथ्य दोनों प्रकार की गलती आ जाती है। धा० ७२ और धा० २१ तथा धा० २२ में कोई विरोध नहीं है। सिद्धांत यह है कि एक पक्ष यदि गलती से चाहे वह गलती विधि की हो या तथ्य की दूसरे पक्ष को रुपया देता है जो रुपया कि संविदा के अंतर्गत या अन्य प्रकार से देय (ड्यू) नहीं है तो वह रुपया वापस कर देना चाहिए। गलती यह सोचने में हो जाती है कि यह रुपया देना है जब कि वास्तव में रुपया देना नहीं रहता और जब यह प्रमाणित हो जाता है कि ऐसी गलती हुई तो जिस पक्ष ने रुपया दिया है उसे रुपया वापस पाने का अधिकार है।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील ने अपना मुकदमा प्रिवी कौंसिल के उपर्युक्त निर्णय में कही हुई इस बात के अंतर्गत लाने का प्रयत्न किया कि ऐसी बात नहीं है प्रत्येक परिस्थिति में रुपया वापस पाने का अधिकार होगा, प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) आदि के आधार पर रुपया वापस पाने का अधिकार समाप्त भी हो सकता है। इस विचार के आधार पर यहाँ कहा गया है कि रुपया वापस करने योग्य परिस्थिति नहीं है कारण कि एक तो यह रुपया बिक्रीकर के दायित्व के संबंध में वसूल किया गया था और अपनी इच्छा से उत्तरवादी ने इसे दिया था; इसके देते समय कोई विरोध नहीं किया गया। दूसरे, उ० प्र० सरकार ने जो यह रुपया प्राप्त किया उसे इसने दूसरे दूसरे मदों में खर्च कर दिया इसलिए अब उत्तरवादी का रुपया वापस पाने का अधिकार समाप्त हो गया। यहाँ भी मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि यह बात न तो उच्च न्यायालय के समक्ष कही गई और न तो इस न्यायालय के मुकदमे के विवरण में है। फिर भी मैंने इस पर बहस इसलिए सुना कि यह इस प्रश्न के निर्वर्तन के लिये कि धारा ७२ इस मुकदमे के तथ्य में लागू होती है कि नहीं, आवश्यक है।

(१) यह कर उ० प्र० सरकार ने जिस मद में लिया था उस मद में उसे लेने का अधिकार नहीं था, इस संबंध में उपबंध शक्ति परस्तात् (आल्ट्रा वारस) हो चुका है। तात्पर्य है कि उत्तरवादी समझता था कि कर देना है जब कि वास्तव में कर देना नहीं था, विधि की यह गलती स्थापित हो जाने पर उत्तरवादी को रुपया वापस पाने का अधिकार धा० ७२ के अंतर्गत है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहस की गई है कि यह रुपया उ० प्र० विक्रीकर अधिनियम के अंतर्गत दायित्व पर दिया गया इसलिए यह 'कर' (टैक्स) का दायित्व था और यदि धा० ७२ लागू भी हो तो इसे वापस नहीं लिया जा सकता। इस बात के समर्थन में मद्रास की दो रूलिंग्स दिखलाई गई ए० आई० आर० १९३४ मद्रास ४२० और ए० आई० आर० १९३७ मद्रास ५५९ जिनमें निर्णय हुआ था कि कर का दिया जाना धा० ७२ के पहले भाग के अंतर्गत नहीं आता। उच्च न्यायालय ने आगे फिर विचार किया कि क्या यह धा० ७२ के दूसरे भाग में आता है? अर्थात् क्या यह दबाव में पड़कर (अंडर कोअर्सन) दिया हुआ रुपया है? उन मुकदमों के तथ्य के आधार पर निर्णय दिया गया कि पक्ष ने स्वेच्छा से रुपया दे दिया इसलिए उन्हें वापस पाने का अधिकार नहीं है। स्वेच्छा से दिया हुआ या दबाव डालकर दिया हुआ रुपया इनमें अंतर दिखलाया गया और वह रुपया जो विधि की गलती के कारण दिए जाने पर भी स्वेच्छा से दिया गया, निर्णय हुआ था कि वह वापस नहीं हो सकता। ऐसे निर्णय अपील कर्ता को सहायता नहीं पहुँचा सकते। ए० आई० आर० १९४९ प्रिवी कौंसिल २९७ के उपर्युक्त निर्णय में प्रिवी कौंसिल ने इन मामलों का निश्चायक निर्णय दिया है कि यदि उस पक्ष ने विधि संबंधी गलती के कारण रुपया दे दिया है तो उसे वापस पाने का अधिकार है और जिस पक्ष ने ऐसा रुपया प्राप्त किया है उसे लौटाना पड़ेगा—चाहे कर का यह रुपया हो चाहे किसी अन्य प्रकार का हो। कर के रुपए और अन्य प्रकार के रुपए में अमेरिका में अंतर होता है पर यहाँ इनमें कोई अंतर नहीं है। यह निर्णय देना कि कर के रूप में दिया हुआ रुपया वापस नहीं हो सकता विधि की व्याख्या करना नहीं होगा वरन् विधि का बनाना होगा क्योंकि इसके लिये "कर के रूप में दिया हुआ रुपया छोड़कर" आदि शब्द उस धारा में जोड़ना होगा।

जिस समय यह रुपया दिया गया उस समय दोनों पक्ष विधि की गलती में थे। ए० आई० आर० १९५२ इलाहाबाद ७६४ में ऐसा निर्णय हुआ और इस न्यायालय ने उसे ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ४५९ में मान लिया इसके बाद स्थिति जब निश्चित हो गई तो उत्तरवादी को वह रुपया वापस पाने का अधिकार हो गया। उत्तरवादी के मस्तिष्क की स्थिति पर यदि विचार करना है तो वह केवल इतना ही है कि वह विधि की गलती में था कि नहीं। उच्च न्यायालय के समक्ष यही बात थी कि उत्तरवादी ने विधि संबंधी गलती के कारण रुपया दिया था इसलिए उसे रुपया वापस पाने का अधिकार है। धारा ७२ के देखने से ज्ञात होता है कि इसके लिये केवल दो बातें प्रमाणित करनी चाहिए एक यह कि रुपया गलती से दे दिया गया या दबाव पड़ने पर दिया गया। यदि गलती चाहे विधि संबंधी या तथ्य की स्थापित हो जाती है तो जिस पक्ष ने यह रुपया प्राप्त किया है उसे लौटाना पड़ेगा और इस संबंध में कोई बाहरी विचार जैसे यह स्वेच्छा से दिया गया या इसमें प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) छोड़ देना (वेवर) या अवधि (लिमिटेशन) आदि पर विचार नहीं किया जायगा और इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वह परिस्थिति यदि एक बार स्थापित हो गई है तो उस पक्ष को सहायता पाने का अधिकार है। दूसरी ओर यदि न तो विधि की गलती और न तो तथ्य की गलती स्थापित होती है तो रुपया वापस पाने के लिये उस पक्ष को प्रमाणित करना पड़ेगा कि वह रुपया दबाव में डालकर वसूल किया गया। जब यह स्थिति होती है तब इसका महत्व हो जाता है कि रुपया स्वेच्छा से दिया गया या दबाव पड़ने पर देना पड़ा।

ए० आई० आर० १९४९ प्रिवी कौंसिल २९७ में प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) की जो चर्चा की गई है वह उस स्थिति में हो सकती है जब प्रतिवादी को वादी के आचरण द्वारा यह बतला दिया गया हो कि उसे अपना ही रुपया समझें और इस विश्वास के कारण उसने सब खर्च कर दिया तो इस प्रकार परिस्थिति बदल जाने पर प्रतिष्टंभ के सिद्धांत के अनुसार वादी यह नहीं कह सकता कि वह गलती से दिया गया। इस संबंध में विषय सं० ३ में विचार किया जायगा।

२—प्रतिष्टंभ का सिद्धांत क्या लागू होता है या परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिनके कारण यह कहा जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उत्तरवादी को रुपया वापस पाने का अधिकार नहीं है यह सब प्रत्येक मुकदमे के तथ्य और उनकी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। प्रतिष्टंभ का सिद्धांत उस समय लागू नहीं हो सकता जब कि इस मामले की तरह दोनों पक्ष विधि संबंधी गलती में पड़े रहते हैं और किसी एक पक्ष का दोष अधिक नहीं दिखलाया जा सकता। प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) केवल उस समय लागू होता है जब कि वादी अपने आचरण और अपने कार्य द्वारा कुछ तथ्यों के विषय में प्रतिवादियों को प्रतिनिवेदन (रिप्रजेंटेशन) करता है जिसको कार्यान्वित करने पर प्रतिवादी को हानि पहुँचती है; केवल इसी अवस्था में वादी को उससे भिन्न तथ्य कहने के लिये मना किया जाता है। यदि इस स्थिति का लाभ विधि संबंधी प्रतिनिवेदन के संबंध में लिया जाय तो ऐसा कोई अवसर नहीं आता क्योंकि यहाँ ऐसी गलती दोनों ओर समान रूप से है। समता (इक्युटी) के सिद्धांत पर न्यायालय परिस्थिति के अनुसार रुपया वापस करने को बाध्य नहीं कर सकता है किंतु यहाँ विधि के स्पष्ट उपबंध के सामने समता का सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता। समता के सिद्धांत को नागपुर उच्च न्यायालय ने लागू किया था किंतु नागपुर उच्च न्यायालय के उक्त विचार से हम सहमत नहीं हैं।

प्रिवी कौंसिल के उपर्युक्त निर्णय में इसी समता के सिद्धांत पर बहस की गई थी कि जो व्यक्ति समता चाहता है उसे स्वयं समता बर्तनी चाहिए के सिद्धांत पर जिस अवयस्क के विरुद्ध संविदा प्रभावशून्य घोषित हो चुकी है उसे चाहिए कि संविदा के अंतर्गत उसने जो लाभ उठाया है उसे वापस कर दे। इस बहस के उत्तर में प्रिवी कौंसिल के श्रीपतियों ने (१९०२) चांसरी १ के निम्नलिखित अंश को उद्धृत किया जिससे वे सहमत थे। वह अंश इस प्रकार था:—

"संक्षिप्त उत्तर यह है कि समता का न्यायालय यह नहीं कह सकता कि समता के सिद्धांत के अनुसार लेनदेन के किसी रुपए के बारे में किसी व्यक्ति को देने के लिये बाध्य किया जाय जब कि विधान मंडल ने उस व्यक्ति के विरुद्ध लेनदेन को प्रभावशून्य घोषित कर दिया है।"

निर्णय के उपर्युक्त आधार को श्रीपतियों ने उस समय विचारार्थ मामले में लागू किया था और उस कथन को माना नहीं। केवल इस कारण कि उ० प्र० सरकार के पास अब वह रुपया है नहीं वरन् उसने अपने व्यापार के सामान्य क्रम में खर्च कर दिया है स्थिति में कोई अंतर नहीं पैदा करता और भारतीय संविदा अधिनियम की धारा ७२ के स्पष्ट उपबंधों के अनुसार उत्तरवादी को वह रुपया वापस पाने का अधिकार है जो उसने विधि की गलती के कारण उ० प्र० सरकार को दिया है।

परिणामतः इस मामले के तथ्यों में धारा ७२ लागू न होने के संबंध में जितने तर्क दिए गए हैं उनमें से कोई भी अपीलकर्ता को लाभ नहीं पहुँचा सकता और इसलिए अपील उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५६ सर्वोच्च न्यायालय १५
(कलकत्ता से ए० आई० आर० १९५७ कलकत्ता २४)
(३० अक्टूबर १९५८)

एस० आर० दास मुख्य न्यायाधिपति, एन० एच० भगवती, बी० पी० सिंह के० सुब्बाराव और के० एन० वीचू न्यायमूर्ति गण

पी० के० मित्रा — अपीलकर्ता

वि०

पश्चिमी बंगाल राज्य तथा अन्य— उत्तरवादीगण

आपराधिक अपील सं० ११६।१९५६

दंड प्रक्रिया संहिता, (१८९८), धा० ४३१-४३९—दोषसिद्ध (कनविक्टेड) व्यक्ति द्वारा पुनरीक्षण—प्रार्थनापत्र के विचाराधीनवस्था में ही उसकी मृत्यु हो जाना—उपशमन (अबेटमेंट)—दोषसिद्धि और दंडादेश (कनविक्शन ऐंड सेटेंस) के औचित्य पर विचार करने के बारे में उच्च न्यायालय का अधिकार

न्यायमूर्ति बी० पी० सिंह—

कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र दिए जाने पर यह अपील हुई है। इसमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि दं० प्र० संहिता की धारा ४३९ के अंतर्गत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च न्यायालय में विचाराधीन पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र प्रार्थी की मृत्यु होने पर क्या अंतिम रूप से उपशमित (अबेट) हो जाता है और यदि हो जाता है तो किस सीमा तक।

इसके तथ्य इस प्रकार हैं। अपीलकर्ता के पिता की जो रेलवे में लिपिक था दोषसिद्धि अलीपुर के प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट ने की थी। दो धनराशि के बारे में धोखा देने के कारण उसकी दोषसिद्धि हुई थी। एक २५०-१३-० का था और दूसरा ३३-४-० का। मजिस्ट्रेट ने धोखा देने (चीटिंग) के अभियोग में उसे २५०-१३-० के लिये दोषी ठहराया और दूसरी धनराशि के बारे में उसे संदेह का लाभ देकर छोड़ दिया। उसे १ दिन का दंड दिया गया तथा इसके साथ ५०० रु० अर्थ दंड दिया गया और अर्थ दंड का भुगतान न करने पर ६ महीने और कठोर कारावास का दंड दिया गया। उन्होंने यह भी निर्देश दिया कि अर्थ दंड का रुपया यदि वसूल हो जाय तो उसमें से ३३३रु० रेलवे प्रशासन को प्रतिकर रूप में दिया जाय। इसके विरुद्ध अपील करने पर अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने अपील उत्सर्जित कर दिया और मजिस्ट्रेट द्वारा दोषसिद्धि और दंडादेश मान लिया।

नीचे के निर्णय और आदेश से असंतुष्ट होने पर अभियुक्त ने दं० प्र० संहिता की धा० ४३६ के अंतर्गत पुनरीक्षण अधिक्षेत्र के अंतर्गत कलकत्ता उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र दिया। उच्च न्यायालय ने (रूल) जारी किया और आदेश दिया कि जब तक 'रूल' की सुनवाई नहीं हो जाती तब तक अर्थ दंड के रुपए की वसूली रुकी रहेगी। उच्च न्यायालय में जब यह मामला विचाराधीन था उसी बीच अभियुक्त की मृत्यु हो गई। उसकी विधवा स्त्री के अतिरिक्त उसके ५ बच्चे थे जिनमें केवल प्रार्थी ही वयस्क था। प्रार्थी ने प्रार्थनापत्र दिया कि मैं मृतक अभियुक्त का उत्तराधिकारी हूँ और उसकी दोषसिद्धि तथा दंडादेश को चुनौती देने में हमारा हित है इसलिए पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में भी पक्ष बना दिया जाय। इस प्रार्थनापत्र को उच्च न्यायालय ने प्रतिस्थापना (सबस्टीट्यूशन) का प्रार्थनापत्र कहा था। विभागीय न्यायासन ने इस प्रार्थनापत्र की सुनवाई किया और निर्णय दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४३१ का सिद्धांत आपराधिक पुनरीक्षण में उस समय भी लागू होता है जब कि दंडादेश (सेंटेंस) मिश्रित (कंपोजिट) हो किंतु यह केवल उसी सीमा तक लागू होता है जहाँ तक अर्थ दंड का संबंध है। इसलिए प्रतिस्थापना प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया गया। उच्च न्यायालय ने स्पष्ट कह दिया कि दोषसिद्धि (कनविक्शन) पर इसलिए आपत्ति नहीं की जा सकती कि दंडादेश मिश्रित (कंपोजिट) है अर्थात् इसमें कारावास और अर्थ दंड दोनों प्रकार का दंड दिया गया है और इसलिए पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र केवल इसी सीमा तक लागू होगा कि अर्थ दंड का आदेश क्या उचित है या क्या यह बहुत कड़ा है।

इस प्रकार उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि के तत्व पर विचार करने से इनकार कर दिया और अपने को केवल इसी प्रश्न के निर्णय तक सीमित रखा कि ५०० रु० का अर्थ दंड क्या बहुत ही कड़ा है? अभियुक्त का कहना था कि मुझपर आरोप अधिक लगाया गया है और मैं अतिरिक्त धन लौटा देने को तैयार हूँ। उच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि इसे केवल २०५-१३ कर दिया जाय और अर्थ दंड का सब रुपया यदि वसूल हो गया तो रेलवे को दे दिया जाय। इस आदेश से असंतुष्ट होने पर प्रार्थी ने उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र दिया और उपयुक्तता का आवश्यक प्रमाणपत्र प्राप्त किया। अतः उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद १३४ (१) सी० के अंतर्गत स्वीकृत प्रमाणपत्र पर यह अपील यहाँ सुनवाई के लिये आई है।

इस संबंध में संहिता में केवल धा० ४३१ है जो इन शब्दों में है:—

"४३१—धा० ४११ ए० उपधारा (२) या धा० ४१७ के अंतर्गत प्रत्येक अपील अभियुक्त की मृत्यु पर अंतिम रूप से उपशमित हो जायगी और इस अध्याय के अंतर्गत कोई अन्य अपील (अर्थ दंड के विरुद्ध अपील के सिवा) अपीलकर्ता की मृत्यु पर अंतिम रूप से उपशमित (अबेट) हो जायगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस धारा से यह स्पष्ट है कि यह केवल अपील में लागू होती है। दं० प्र० संहिता १८८२ (अधिनियम १०, १८८२) में पहलेपहल धा० ४३१ आई। बंबई उच्च न्यायालय के एक विभागीय न्यायासन (डिवीजन बेंच) के समक्ष धारा ४३१ पर विचार किया गया (आई० एल० आर० १६ बंबई ७१४)। इसके तथ्य थोड़े में इस प्रकार हैं कि दो व्यक्तियों की दोषसिद्धि हुई और प्रत्येक व्यक्ति को १ वर्ष कठोर कारावास और १००० रु० अर्थदंड दिया गया। दोनों व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय में अपील निवेशित किया। अपील जब विचाराधीन थी उसी बीच एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। जो व्यक्ति जीवित था उसकी अपील का निर्वर्तन उच्च न्यायालय ने किया और उसकी दोषसिद्धि तथा दंडादेश निराकृत कर दिया। इसके बाद मरे हुए अपीलकर्ता के एक संबंधी ने उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण (रिविजनल) अधिक्षेत्र के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया कि मृतक व्यक्ति की दोषसिद्धि और उसके विरुद्ध पारित दंडादेश निराकृत किया जाय तथा दिया हुआ अर्थदंड का रुपया वापस कर दिया जाय। इसमें उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि मृतक व्यक्ति के संबंध में धारा ४३१ के अनुसार अपील का उपशमन (अबेटमेंट) हो चुका है। उच्च न्यायालय ने इसमें पुनरीक्षण अधिक्षेत्र के अंतर्गत विचार करने से इसलिए इनकार कर दिया कि यह मामला साक्ष्य के परीक्षण पर निर्भर करता है।

आई० एल० आर० २ बंबई ५६४ में सत्र न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त को ४ वर्ष कठोर कारावास का दंड और १००० रुपया अर्थदंड दिया गया था। अपील की सुनवाई हुई नहीं थी कि अभियुक्त की मृत्यु जेल में हो गई क्योंकि उसकी जमानत नहीं हुई थी। यह मामला विभागीय न्यायासन के समक्ष आया। इसमें न्यायमूर्ति मेलविल का विचार था कि अपीलकर्ता के मरने पर अपील का उपशमन हो गया और अपील के न्यायालय के पद से उच्च न्यायालय का काम समाप्त हो गया। उन्होंने यह भी निर्णय दिया कि चूँकि दोषसिद्धि के आदेश में विधि की कोई गलती नहीं है और यह भी नहीं दिखलाया गया कि दंडादेश बहुत ही अधिक था इसलिए इसमें उच्च न्यायालय अपने पुनरीक्षण अधिक्षेत्र का प्रयोग नहीं कर सकता। अपने निर्णय में उन्होंने कहा कि यों तो मृतक व्यक्ति के विधिक प्रतिनिधि का हित इसमें रहता है कि अर्थदंड आदि का आदेश समाप्त हो जाय किंतु (१८७२ की) दं० प्र० संहिता ने विधिक प्रतिनिधि को उस व्यक्ति के मरने पर अपील करने का अधिकार नहीं दिया है इसलिए अपील की सुनवाई और इसका निर्णय तत्व पर नहीं दिया जा सकता। न्यायमूर्ति केंबाल केवल इस बात से तो सहमत हुए कि मृतक का विधिक प्रतिनिधि अपील नहीं कर सकता पर वे इस बात से सहमत नहीं हुए कि अपील का उपशमन हो गया और उच्च न्यायालय की अपील के न्यायालय का अधिकार अपीलकर्ता की मृत्यु के बाद समाप्त हो गया। उनका यह विचार था कि अपील के अभिलेख न्यायालय के समक्ष हैं और न्यायालय जैसा उचित समझे अपील में आदेश पारित कर सकता है। उनका यह विचार इस आधार पर प्रतीत होता है कि उसके मरने पर यह प्रश्न तो समाप्त हो जाता है कि उसने कितना दंड भुगत लिया और कितना शेष है किंतु यदि समय के भीतर अर्थदंड का रुपया नहीं दिया गया है तो इसमें विधिक प्रतिनिधि का हित रहता है। दूसरे शब्दों में उनका निष्कर्ष था कि इसमें संदेह नहीं कि पुनरीक्षण न्यायालय के पद से उच्च न्यायालय इसका निर्वर्तन कर सकता है लेकिन उनका यह भी कहना था कि अपील के न्यायालय के पद से न्यायालय को निर्णय देना अनिवार्य है। इस प्रकार दो न्यायाधीशों में मतभेद होने पर इसे मुख्य न्यायाधिपति वेस्ट्रप के समक्ष रखा गया। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति मेलविल न्यायमूर्ति से सहमत हुए कि विधिक प्रतिनिधि द्वारा अपील नहीं हो सकती और दोषसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर अपील में उच्च न्यायालय के अधिकार की समाप्ति हो जाती है। उनका यह निर्णय मुख्यतया इस आधार पर आधारित था कि अपील निवेशित करने का अधिकार और अपील चालू रखने का अधिकार स्पष्टतया परिनियम द्वारा या उसके आवश्यक ध्वनितार्थ द्वारा दिया गया रहता है। इस विचार को धारा ४३१ में अब परिनियमित मान्यता प्रदान कर दी गई है। उन्होंने यह भी निर्णय दिया कि यों तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपील उपशमित हो चुकी है पर उच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि स्वतः वह अभिलेख को मँगा ले और पुनरीक्षण अधिक्षेत्र का प्रयोग करे किंतु उन्होंने इस पर कोई विचार प्रकट नहीं किया कि इस मामले में पुनरीक्षण अधिक्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता है कि नहीं।

जैसा उपबंध अपील के लिये धारा ४३९ में दिया गया है वैसा कोई उपबंध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में लागू होने के लिये नहीं है पर धारा ४३९ के अंतर्गत उच्च न्यायालय का जो पुनरीक्षण का अधिकार दिया गया है उसके अंतर्गत वह जो उचित समझे आदेश पारित कर सकता है। वास्तव में यह विवेक का अधिकार है और इसका प्रयोग न्याय के साथ करना चाहिए। उच्च न्यायालय को इस अधिकार का प्रयोग करना चाहिए कि नहीं यह उस मुकदमें के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। पुनरीक्षण में पक्षों को कोई अधिकार (राइट) नहीं होता; इसमें उच्च न्यायालय को यह अधिकार (पावर) दिया गया रहता है कि वे देखा करें कि नीचे के न्यायालय आपराधिक विधिशास्त्र के मान्य सिद्धांत के अनुसार काम करते हैं कि नहीं और संहिता द्वारा प्रदान किए हुए अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) के बाहर तो नहीं जाते और उसके द्वारा दिए हुए अधिकार का दुष्प्रयोग तो नहीं करते। दूसरी ओर अपील का अधिकार परिनियमित अधिकार है और प्रत्येक न्यायालय को इसे मानना पड़ता है तथा विवेक (डिस्क्रीशन) का प्रयोग करके स्वयं उच्च न्यायालय भी इसे इनकार नहीं कर सकता। इसलिए विधान मंडल ने अपीलकर्ता के मरने पर प्रतिस्थापना (सब्स्टीट्यूशन) के लिये नियम तो स्पष्ट रूप से धारा ४३१ में दे दिया है किंतु इस प्रकार का कोई उपबंध अध्याय ३२ में नहीं है जो आपराधिक पुनरीक्षण के संबंध में है। यदि विधानमंडल का अभिप्राय यह होता कि विचाराधीन पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र का काम उसी प्रकार होगा जिस प्रकार अपील का होता है तो इसके लिये इस प्रकार का अधिनियम हुआ होता। किंतु यदि ऐसा अधिनियम नहीं हुआ तो इससे यह पता चलता है कि संहिता के अध्याय ३२ में उच्च न्यायालय को जो अधिकार दिया गया वह ज्यों का त्यों है और प्रत्येक मामले की आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग होता रहता है। उच्च न्यायालय को पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र का लेना अनिवार्य नहीं है और पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र स्वीकार करने पर प्रत्येक अवस्था में प्रतिस्थापना (सबस्टीट्यूशन) का आदेश देना भी अनिवार्य नहीं है। कुछ एकाकी न्यायाधीश ने जैसा निर्णय दिया है उच्च न्यायालय मिश्रित दंडादेश (कंपोजिट सेंटेंस) के रहने के कारण पुनरीक्षण को उपशमित (अबेटेड) ठहराने के लिये बाध्य नहीं है। उच्च न्यायालय को प्रार्थी के मरने पर विचाराधीन मामलों में अपने विवेक का प्रयोग न्याय के लिये करने की पूरी छूट दी गई है। चाहे अभियुक्त हो चाहे परिवादी (कंप्लेनेंट) यदि उसने उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण अधिक्षेत्र के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया गया है, और उच्च न्यायालय ने यदि 'रूल' जारी किया है तो उस 'रूल' की सुनवाई और उसका निर्वर्तन विधि के अनुसार होना चाहिए चाहे उच्च न्यायालय का वह प्रार्थी जीवित हो या मर गया हो या उसकी ओर से कोई वकील उपस्थित हो या न हो। संहिता की धारा ४३९ के अंतर्गत अधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय परिनियमित काम आपराधिक पक्ष के निरीक्षण और प्रशासन का करता है इसलिए अपील के उपशमनवाला उपबंध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में नहीं लागू हो सकता। इसलिए हमारे विचार से बंबई उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय में इस संबंध में ठीक बात कही गई है।

कुछ एकाकी न्यायाधीशों ने निर्णय दिया है कि यों तो धारा ४३१ के शब्द पुनरीक्षण में लागू नहीं होते किंतु उनके सिद्धांत पुनरीक्षण में लागू होते हैं। उनमें से प्रत्येक पर अलग अलग विचार करने की आवश्यकता नहीं है। कोई परिनियम इसके बारे में नहीं है फिर भी हमारा निर्णय है कि दोषसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु के बाद भी उच्च न्यायालय को मामले पर विचार करने का अधिकार है कारण कि यह मृतक की उस संपत्ति पर प्रभाव डालता है जो मरने के बाद उसके विधिक प्रतिनिधि के हाथ में आ चुकी रहती है। अब विचार इस पर करना है कि क्या उच्च न्यायालय को अपने पुनरीक्षण का अधिकार केवल अर्थदंड तक ही सीमित रखना उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और इसके लिये दोषसिद्धि के आदेश के तत्व पर विचार नहीं करना है ? एक बार जब यह तय हो जाता है कि उच्च न्यायालय को ऐसे मामलों के पुनरीक्षण का अधिकार है तो फिर इसे सीमित नहीं किया जा सकता। संहिता की धारा ४३६ में है कि अपील के न्यायालय के समस्त अधिकार उच्च न्यायालय को प्राप्त हैं और परिस्थिति के अनुसार जैसी आवश्यकता पड़े उच्च न्यायालय अपने विवेक के अनुसार उन अधिकारों का प्रयोग कर सकता है—दंडादेश को बढ़ाने तक का भी अधिकार दिया गया है बशर्ते कि अभियुक्त के विरुद्ध कोई आदेश पारित तब तक नहीं करना चाहिए जब तक अपनी बात कहने के लिये अभियुक्त को अवसर न दे दिया गया हो। यहाँ हमारा संबंध दंड बढ़ाने से नहीं है हमारा संबंध इतना ही है कि क्या कोई ऐसा उपबंध है जो किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश की सत्यता, वैधता या औचित्य का परीक्षण करने में उच्च न्यायालय के विवेक प्रयोग पर कोई रोक लगाता है। दोषसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर उसके कारावास के पूर्ण दंड भुगतने या आंशिक दंड भुगतने का प्रश्न पैदा नहीं होता पर अर्थ दंड का आदेश तब भी रह जाता है कि क्या विधि पर यह आधारित है। इस प्रश्न पर अच्छी तरह विचार तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि स्वयं दोषसिद्धि के आदेश का परीक्षण तत्व पर नहीं किया जाता। यदि विधिक प्रतिनिधि को इस कारण अपील या पुनरीक्षण को चालू रखने का अधिकार दिया जाता है कि वह रुपया मृतक की संपत्ति से देना है तो इसी सिद्धांत के अनुसार उसे दोषसिद्धि के आदेश को भी चुनौती देने का अधिकार देना चाहिए क्योंकि जब तक दोषसिद्धि रहती है तो नाम-मात्र का ही अर्थदंड क्यों न हो मृतक की संपदा से देना पड़ेगा। इसलिए हमारे विचार से यदि उच्च न्यायालय उचित समझता है कि पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाय या स्वयं अभिलेख माँगता है तो अर्थदंड के आदेश की सत्यता, वैधता और उसके औचित्य पर विचार करने का उसे पूरा अधिकार है और इस प्रकार स्वयं दोषसिद्धि के आदेश के परीक्षण की आवश्यकता पड़ जाती है।

उपर्युक्त कारणों से हम अपील स्वीकार करते हैं और और इसे उच्च न्यायालय में भेज देते हैं कि विधि के अनुसार इसकी सुनवाई हो।

प्रतिप्रेषित (रिमांडेड)

विधि पत्रिका वर्ष ३, १६५६ सर्वोच्च न्यायालय १६

(बंबई से)

४ नवंबर, १६५८

एन० एच० भगवती, के सुब्बाराव और के० एन० वांचू न्यायमूर्तिगण

भोगीलाल चुन्नीलाल पंड्या— अपीलकर्ता

वि०

बंबई राज्य — उत्तरवादी

आपराधिक अपील सं० ३१।१६५८

साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धा० १५७, १७ से २१, ३२, ३६ और १४५—अभिकथन (स्टेटमेंट) का अर्थ

न्यायमूर्ति के० एन० वांचू—

यह अपील विशेष अनुमति पर आई है। यह अपील केवल इसी प्रश्न तक सीमित है कि कुछ अभिलेख एक आपराधिक अन्वीक्षा में साक्ष्य में प्रतिग्राह्य (ऐडमिसिबुल) हैं कि नहीं। अपीलकर्ता पर आरोप यह था कि ४,१४,७५० रु० का सापराध न्यास दुरुपयोग (क्रिमिनल ब्रीच आफ ट्रस्ट) किया है। अभियोजन साक्षियों में गोपी किसन अध्यक्ष, मोदी मंत्री और संतूक कंपनी के वादेक्षक (सालिसिटर) थे। जब इस गड़बड़ी का पता चला तो गोपी किसन, मोदी संतूक और अपीलकर्ता के बीच कुछ बातचीत हुई। इस पर संतूक ने इस बातचीत का उपस्थिति विवरण तैयार किया। यह उपस्थिति विवरण जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर प्रदर्श ५ पड़ा था संतूक के अभिसाक्ष्य के संपोषण के लिये दिया गया। अन्वीक्षा न्यायाधीश के समक्ष इस विवरण की प्रतिग्राह्यता (ऐडमिसिबिलिटी) पर दो आधारों पर आपत्ति की गई—.

१—यह कि उन्हें साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि संहिता की धारा १७३ के अंतर्गत उनकी प्रतिलिपि नहीं दी गई है।

२—यह कि इन्हें साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा १५७ के अंतर्गत वे संतूक के साक्ष्य का संपोषण (करोबोरेशन) नहीं कर सकते ।

अन्वीक्षा न्यायाधीश ने इन दोनों बातों को नहीं माना और उक्त विवरण को साक्ष्य में स्वीकार कर लिया। उन्होंने इसका निर्देश जूरी को कर दिया। जूरी ने बहुमत से अपीलकर्ता को निर्दोषी कहा। इस पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ३०७ के अंतर्गत अन्वीक्षा न्यायाधीश ने इसका निर्देश उच्च न्यायालय को किया और उच्च न्यायालय ने प्रदर्श ५ के साथ समस्त साक्ष्यों पर विचार किया और अपीलकर्ता को दोषी ठहराया।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १७३ के आधार पर इस विवरण की प्रतिग्राह्यता (ऐडमिसिबिलिटी) पर आपत्ति उठाया है जो ए० आई० आर० १९५७ सर्वोच्च न्यायालय ७२७ के अनुसार है। उन्होंने इस बात पर बहुत ही अधिक जोर दिया है कि यह साक्ष्य अधिनियम की धारा १५७ के अंतर्गत स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उनका कहना है कि 'अभिकथन' (स्टेटमेंट) शब्द जो इस धारा में प्रयुक्त है उसका तात्पर्य यह होता है कि जिस व्यक्ति का यह अभिकथन है उससे और दूसरे व्यक्ति के बीच आदान-प्रदान (कम्युनिकेटेड) हुआ हो और इसके अंतर्गत कोई यह लिखावट या स्मृतिपत्र (मेमोरंडम) नहीं आ सकता जो अपने निजी प्रयोग के लिये होता है। और जिसका किसी से आदान प्रदान नहीं हुआ रहता। कहा गया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा १५९ के अंतर्गत यह लिखावट साक्षी की स्मरण शक्ति को ताजा करने के लिये प्रयुक्त हो सकता है। संक्षेप में विद्वान् वकील का कहना है कि ऐसी लिखावट केवल धारा १५९ के अंतर्गत ही प्रयुक्त हो सकती है धारा १५७ के अंतर्गत नहीं, कारण कि इस धारा के अंतर्गत जो 'अभिकथन' (स्टेटमेंट) शब्द प्रयुक्त है ध्वनितार्थ से इसका अर्थ यह होता है कि दूसरे व्यक्ति से आदान प्रदान हुआ हो।

साक्ष्य अधिनियम में 'अभिकथन' शब्द की परिभाषा नहीं दी गई है। इसलिए इसके ठीक अर्थ के लिये हमें शब्दकोश का सहारा लेना होगा। इस शब्द का प्रयोग इस अधिनियम में अन्य स्थलों पर जिस अर्थ में हुआ है उसकी भी सहायता लेनी है।

शार्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी और वेब्स्टर्स न्यू वर्ल्ड डिक्शनरी में 'अभिकथन' (स्टेटमेंट) शब्द का अर्थ दिया हुआ है कि 'वह जो अभिकथित हो।' शार्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी में इसका दूसरा अर्थ है लिखित या मौखिक आदान प्रदान (कम्युनिकेशन)। इसमें संदेह नहीं कि अभिकथन का किसी अन्य व्यक्ति से आदान प्रदान (कम्युनिकेशन) हो सकता है किंतु यह इसका मुख्य अर्थ नहीं है। इसलिए जब तक धारा १५७ में कोई ऐसी बात नहीं दिखलाई जाती जिससे बाध्य होकर धारा १५७ में अभिकथन शब्द का जो अर्थ दिया हुआ है उसके मुख्य अर्थ को छोड़ना पड़े तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि धारा १५७ के अभिकथन का आदान प्रदान होना आवश्यक है। साक्ष्य अधिनियम में अभिकथन शब्द का प्रयोग कई जगह इसके मुख्य अर्थ (वह जो अभिकथित हो) में हुआ है इसलिए यह अर्थ धारा १५७ में भी लागू होना चाहिए जब तक कि उसका वह अर्थ इस धारा के लिये सीमित न कर दिया गया हो। किसी परिनियम में प्रयुक्त शब्द सर्वत्र एक ही अर्थ रखते हैं जब तक प्रसंग के अनुसार कोई विरुद्ध बात नहीं आती।

धारा १७ से २१ तक की धाराओं में 'अभिकथन' शब्द आया है। ये धाराएँ 'स्वीकृति' (ऐडमिशन) के संबंध में हैं। धारा १८ से २० तक की धाराओं में दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है कि अभिकथन ही स्वीकृति (ऐडमिशन) होता है। इन धाराओं में इतना ही है कि 'उसके द्वारा अभिकथित।' इसमें संदेह नहीं कि कुछ अभिकथन उसी व्यक्ति के विरुद्ध 'स्वीकृति' (ऐडमिशन) के रूप में प्रयुक्त हो सकता है यद्यपि इस अभिकथन का आदान प्रदान नहीं हुआ रहता। उदाहरणार्थ लेखा पुस्तिका (एकाउंट बुक) का यह अभिकथन कि हमारे ऊपर अमुक व्यक्ति का इतना ऋण है उसके विरुद्ध स्वीकृति (ऐडमिशन) रूप में प्रयुक्त हो सकता है यद्यपि इसका आदान प्रदान नहीं हुआ रहता इसी प्रकार धारा २१ में भी अभिकथन शब्द का प्रयोग इसके मुख्य अर्थ में हुआ है। इसके 'अभिकथन' होने के लिये आदान प्रदान की आवश्यकता नहीं है।

इस संबंध में दूसरी धारा ३२ है। यह उस अभिकथन के बारे में है जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा था जो अब साक्ष्य देने में असमर्थ है या उसे बुलाने में अब बहुत देर हो सकती है या इतना अधिक खर्च हो सकता है कि न्यायालय उसे उचित नहीं समझता। इसी प्रकार इसमें अन्य उपबंध हैं जिनसे पता चलता है कि अभिकथन के लिये उसके आदान प्रदान की आवश्यकता नहीं है।

धारा ३६ में दिया हुआ है कि कोई अभिकथन किसी उस लेख्य (डाकूमेंट) में हो सकता है जो कि किसी पुस्तक का एक भाग है। इसमें भी इसके अभिकथन होने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि इस अभिकथन का किसी दूसरे व्यक्ति के साथ आदान प्रदान हुआ हो।

धारा १४५ में है कि साक्षी का जो पहला अभिकथन लिख लिया गया है उसके संबंध में विरोध दिखलाने के लिये उसका प्रतिपरीक्षण (क्रास एक्जामिनेशन) किया जा सकता है। इस धारा के अंतर्गत साक्षी ने वह अभिकथन जो अपनी डायरी में लिखा है उसके द्वारा उसका प्रतिवाद (कंट्राडिक्शन) किया जा सकता है यद्यपि कि डायरी के उस अभिकथन का कभी आदान प्रदान नहीं हुआ था।

अब धारा १५७ में जो अभिकथन है उसके लिये कोई कारण नहीं है कि क्यों न उसको प्रमुख अर्थ में प्रयुक्त न माना जाय। इस धारा से यह पता नहीं चलता कि इसके लिये आदान प्रदान का होना आवश्यक है। बहस की गई है कि इसके लिये यदि आदान प्रदान की शर्त न मानी जाय तो कोई साक्षी अपने उस अभिकथन से संपोषण कर सकता है जो उसने स्वयं लिखा है पर छिपा कर रखा था और यह बहुत ही खतरनाक होगा। इसके लिये इस लिखावट की प्रतिग्राह्यता और इसके महत्व के अंतर को समझ लेना है। धारा १५७ के अंतर्गत इस प्रकार के अभिकथन की भी प्रतिग्राह्यता का नियम है किंतु ऐसे संपोषण को कितना महत्व प्रदान करना चाहिए यह दूसरी बात है और इसका निर्णय न्यायालय को परिस्थिति के अनुसार करना है। जिस साक्षी का संपोषण किया जाना है वह न्यायालय में लाया जाता है और उसका प्रतिपरीक्षण (क्रासएक्जामिनेशन) हो सकता है। प्रतिपरीक्षण से यह दिखलाया जा सकता है कि इस पूर्व अभिकथन पर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता। उस साक्षी का प्रतिपरीक्षण हो सकता है इसलिए विद्वान् वकील ने जिस खतरे की बात कही गई है वह वास्तव में है नहीं। साक्षी जो उपस्थित होकर बयान देता है मुख्य साक्ष्य वही होता है और इस प्रकार का लेख्य केवल उसके संपोषण (करोबोरेशन) के लिये होता है। इसलिए मुख्य साक्ष्य की विश्वसनीयता ही यदि प्रतिपरीक्षण द्वारा समाप्त कर दी जाती है तो इस प्रकार के लेख्य द्वारा संपोषण का महत्व ही समाप्त हो जाता है। खतरे की जो बात कही जाती है वह वास्तव में है नहीं इसलिए इस धारा में प्रयुक्त 'अभिकथन' शब्द का भिन्न अर्थ लगाना ठीक नहीं है।

विद्वान् वकील ने मुख्यतया धारा १५९ की ओर संकेत इसलिए किया कि प्रदर्श नं० ५ जैसे लेख्य केवल स्मरणशक्ति को ताजा करने के लिये ही प्रयुक्त हो सकते हैं। किंतु उन्होंने यह नहीं बतलाया कि जो धारा १५९ में आता है वह निश्चय ही धारा १५७ के के 'अभिकथन' शब्द में नहीं आता। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति जब कोई बात हुई हो उस समय किसी दूसरे व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उस बात के बारे में पत्र लिख सकता है और इसे अपनी स्मरणशक्ति को ताजा करने के प्रयोग में भी ला सकता है। कोई पत्र दूसरे व्यक्ति से आदान प्रदान के लिये होता है और इसलिए अपीलकर्ता के विद्वान् वकील के कहने के अनुसार भी यह धारा १५७ के अंतर्गत अभिकथन है और संपोषण के लिये प्रयुक्त हो सकता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कोई वह लेख्य जो धारा १५९ के अंतर्गत स्मरणशक्ति को ताजा करने के लिये प्रयुक्त होता है वह धारा १५७ के अंतर्गत अभिकथन नहीं हो सकता। धारा १५९ विशेष परिस्थितियों के लिये है और उसमें 'अभिकथन' शब्द का प्रयोग भी नहीं हुआ है। धारा १५७ में 'अभिकथन' शब्द का क्या अर्थ होता है इसके लिये धारा १५९ तनिक भी सहायता नहीं प्रदान कर सकती। धारा० १५९ में दिए हुए प्रतिबंध के साथ जो लिखावट होती है केवल उसी की चर्चा है जब कि धारा १५७ के संपोषण के लिये यह लिखित भी हो सकता है और मौखिक भी। यही कारण है कि धारा १५७ और धारा १५९ की भाषा में अंतर है परंतु इस अंतर का यह अर्थ नहीं निकल सकता कि धारा १५७ के अभिकथन के लिये आदान प्रदान का होना आवश्यक है। 'अभिकथन' शब्द के मुख्य अर्थ पर और साक्ष्य अधिनियम की कई धाराओं पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धारा १५७ के अंतर्गतवाले अभिकथन शब्द का अर्थ इतना ही होता है कि जो अभिकथित हो और अभिकथन होने के लिये इसके आदान प्रदान की आवश्यकता नहीं है। इसलिए उक्त उपस्थिति विवरण धारा १५७ के अंतर्गत अभिकथन है और धारा १५७ के अंतर्गत संतूक के साक्ष्य के संपोषण के लिये प्रतिग्राह्य होगा।

ए० आई० आर० १९३८ रंगून १७४ में रंगून उच्च न्यायालय का पूर्ण न्यायासन संपोषण की प्रकृति के संबंध में विचार कर रहा था जब कि अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य सहापराधी का हो। इस प्रकार जो प्रश्न यहाँ है उस प्रकार का प्रश्न रंगून उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं था। इसमें विद्वान् न्यायाधीशों नेधारा १५७ के लिये कहा था कि विधि का यह सिद्धांत अब निश्चित हो चुका है कि कोई व्यक्ति स्वयं अपना संपोषण नहीं कर सकता। इसमें जो निश्चित सिद्धांत की बात कही गई है वह इंगलैंड के निश्चित सिद्धांत की बात है जो इंगलिश इविडेंस ऐक्ट १९३८ के पहले था। साक्ष्य अधिनियम १९३८ द्वारा विधि में परिवर्तन किया गया और अब प्रदर्श ५ की तरह का विवरण जो यहाँ है वह कुछ शर्तों के साथ इंगलैंड में प्रतिग्राह्य है। चूँकि उपर्युक्त निर्णय में इस प्रकार का कोई स्पष्ट प्रश्न नहीं था इसलिए वह सहायता नहीं प्रदान कर सकता।

दूसरी रूलिंग ए० आई० आर० १९२८ प्रिवी कौंसिल ५४ है। उसमें एक पत्र के बारे में कहा गया था कि वह पत्र इस धारा के अंतर्गत किसी भी प्रयोग के लिये स्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारे विचार से यह विचार भी अपीलकर्ता को सहायता नहीं प्रदान कर सकता क्योंकि उस पत्र का आदान प्रदान हुआ था फिर भी उसे धारा १५७ के लिये नहीं माना गया।

इसलिए विद्वान् न्यायाधीश ने जब उस पत्र को अस्वीकार किया तो इस आधार पर नहीं कि इस अभिकथन का आदान प्रदान नहीं हुआ था वरन् यह उसके मूल्य के कारण अस्वीकार किया गया।

इसलिए यह स्पष्ट है कि धारा० १५७ में जो 'अभिकथन' शब्द का प्रयोग हुआ है उसका अर्थ होता है कि जो अभिकथित हो और इसका दूसरे व्यक्ति से आदान प्रदान होना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार संतूक ने जो उपस्थिति विवरण तैयार किया था वह धारा १५७ के अर्थ के अंतर्गत अभिकथन है और साक्ष्य में प्रतिग्राह्य है।

परिणामतः यह अपील असफल होती है और एतद् द्वारा उत्सर्जित की जाती है।

—अपील उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९ सर्वोच्च न्यायालय २३

(बंबई से)

२४ सितंबर, १९५८

वी० पी० सिंह, एस० जे० इमाम और जे० एल० कपूर न्यायमूर्तिगण

एस० एम० जकाती तथा अन्य — अपीलकर्तागण

विरुद्ध

एस० एम० बोर्कर तथा अन्य — उत्तरवादीगण

अ—साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धारा ४३—सहकारी समिति के उप प्रस्तोता ने रुपया देने का आदेश पारित किया—उसके पुत्र ने परवर्ती कार्यवाही में उस आदेश को इसलिए प्रस्तुत किया कि उससे पता चलता था कि यह ऋण अव्यावहारिक था—निर्णय हुआ कि उक्त निर्णय प्रतिग्राह्य नहीं हो सकता।

ब—हिंदू विधि—अव्यावहारिक ऋण का अभिप्राय - संयुक्त परिवार—मिताक्षरा संदायदता (कोपार्सनरी)—यदि पिता ने ऋण लिया है तो पुत्र का उसे चुकाना एक धार्मिक बंधन है।

स—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), धारा ५१—मिताक्षरा संदायदता—हिंदू पिता के विरुद्ध डिग्री का पारित होना—पुत्र का धार्मिक बंधन में होना—इसको कैसे लागू किया जा सकता है :

द—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धारा ५३—पिता के विरुद्ध रुपए की डिग्री का पारित होना—पुत्र द्वारा पिता के ऋण का चुकता करने के संबंध में धार्मिक बंधन—बँटवारा हो जाने पर भी यह बंधन रहता है।

य—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), आ० २१ नि० ९४—न्यायालय के विक्रय द्वारा निर्णीत ऋणी (जजमेंट डेटर) का अधिकार, स्वत्व (टाइटिल) और हित (इंटरेस्ट) हस्तांतरित होता है।

र—हिंदू विधि—पिता द्वारा लिया हुआ ऋण—कब अव्यावहारिक नहीं कहा जा सकता।

न्यायमूर्ति जे० एल० कपूर (उनके साथ यस० जफर इमाम) न्यायमूर्ति।

यह अपील बंबई उच्च न्यायालय के निर्णय और डिग्री के विरुद्ध निवेशित की गई है। इसमें अन्वीक्षा न्यायालय की डिग्री को बदलकर बँटवारा के बाद अपने परिवार की संपत्ति पर धारण (पोजेशन) पानेवाले वादी के वाद में डिग्री दी गई थी।

इसके तथ्य इस प्रकार है। प्रतिवादी १ धारवार अरबन कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड का प्रबंधकारी संचालक था। इस बैंक का अवसायन (लिक्युडेशन) हो गया। यह काम करने के लिये उसे १०००) प्रतिवर्ष मिलता था। प्रतिवादी सं० १ के विरुद्ध बैंक के अवसायक (लिक्युडेटर) ने कार्यवाही किया और इस संबंध में सहकारी समितियों के उप प्रस्तोता ने १५, १०० रु० देने का आदेश दिया और रुपया देने के इस आदेश के निष्पादन के सिलसिले में प्रतिवादी सं० १ के एक बंगले को कलक्टर ने कुर्क कर लिया। तत्संबंधी विधिक कार्यवाही के प्रसंग में प्रतिवादी १ ने प्रार्थनापत्र दिया कि बिक्री स्थगित कर दी जाय पर यह प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिया गया। इसका नीलामी विक्रय हो गया तथा २२ जून १९४३ को इसका स्थिरीकरण भी हो गया। इसको खरीदनेवाले एस० एन० बोर्कर प्रतिवादी सं० ७ थे जो यहाँ उत्तरवादी सं० १ हैं। १० फरवरी १९४४ को इस उत्तरवादी सं० १ ने यह संपत्ति वर्तमान उत्तरवादी गण सं० २ से ४ को बेच दिया।

मामले को समझने के लिये निम्नलिखित वंशावली से सहायता मिलेगी।

माधवराव बालकृष्ण जकाती-प्रतिवादी १=भीमाबाई-प्रतिवादी २

कृष्ण जी	श्रीनिवास	शांतिबाई	इंदुमती
वादी सं० १	वादी सं० १ (अ)	(पुत्री) प्रतिवादी ३	(पुत्री) प्रतिवादी-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५ जनवरी १६४३ को प्रतिवादी सं० १ के एक पुत्र ने संयुक्त परिवार की संपत्ति के बँटवारे के लिये तथा उसके अलग से धारण के लिये एक वाद निवेशित किया। इसमें उसका कहना था कि उत्तरवादी १ ने जो बँगले को खरीदा है उसका बंधन संयुक्त परिवार पर नहीं है कारण कि प्रतिवादी १ के अवैध और अनैतिक काम के संबंध में यह बेचा नहीं जा सकता था। वह नीलामी विक्रय बंबई भूराजस्व संहिता की धारा १५५ के अंतर्गत था और इस धारा के अंतर्गत केवल पिता का अधिकार स्वत्व और हित ही बेचा जा सकता था और इसलिए परिवार के अन्य सदस्यों का हिस्सा नहीं बेचा गया। उसका कहना था कि हम आजकल अपनी मौसी के साथ रहते हैं और पिता से हमसे पटती नहीं और हमारा पालन पोषण भी पिता नहीं करते हैं। १२ जनवरी १६४४ को अपीलकर्ता १ अपना लिखित अभिकथन निवेशित किया कि मैं बँटवारा मानता हूँ और हमारा हिस्सा भी अलग कर दिया जाय। उसने तत्कालीन वादी के वाद का समर्थन किया कि उत्तरवादी १ के पक्ष में जो विक्रय है उसका बंधन संयुक्त परिवार पर नहीं है प्रतिवादी २ माता ने भी वादी का समर्थन किया और कृष्ण जी की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी के पद से अपने हिस्से का दावा किया। आरंभिक वादी कृष्ण जी के मरने पर श्री निवास अपीलकर्ता १ की प्रतिस्थापना वादी के स्थान पर हुई।

वाद का विरोध मुख्य रूप से उत्तरवादी १ से ४ तक के लोगों ने किया। उत्तरवादी १ का कहना है कि वादी ने जो यह बँटवारे का दावा किया है वह प्रतिवादी १ की साजिश से किया गया है और सद्भावना नहीं है। उसका कहना है कि प्रतिवादी ने बैंक के काम में असावधानी दिखलाया उसी के कारण वह देनदार ठहराया गया है। प्रतिवादी १ को इस काम के लिये वार्षिक भत्ता मिलता था और यह संपत्ति परिवार के ऊपर ऋण रहने से वेची गयी और इसलिए इसका बंधन परिवार पर है। उसका कहना है कि इसके निष्पादन के सिलसिले में में पुत्रगण आपत्ति नहीं उठा सकते कारण कि उनपर पिता के ऋण के चुकता करने का धार्मिक बंधन है; वे तभी आपत्ति कर सकते हैं जब यह प्रमाणित हो जाय कि प्रतिवादी का यह ऋण अनैतिक और अवैध प्रयोजन के लिये था। इन अभिकथनों से अनेक वाद पद (ईशूज) उठते हैं।

विद्वान् व्यवहार न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि यह वाद साजिश से निवेशित किया है, यह कि जिसके लिये प्रतिवादी १ देनदार था—वह अव्यवहारिक था और इसलिए इसका बंधन पुत्रों पर नहीं है; इस प्रकार अपीलकर्ता १ का ⅓ हिस्सा होगा, प्रतिवादी १ का ⅓ और अपीलकर्ता २ का भी ⅓ हिस्सा होगा। इस प्रकार उन्होंने संयुक्त परिवार की संपत्ति में हिस्सों की घोषणा कर दी जिसमें वह बँगला था।

अपील निवेशित करने पर उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि ऋण अव्यावहारिक नहीं था इसका कारण बतलाया गया कि इसके समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है और उप प्रस्तोता का आदेश जो निर्णय के समान था उसमें न तो लड़के और न तो नीलामी क्रेता पक्ष थे इसलिए सिवा इस ऐतिहासिक तथ्य के कि यह निर्णय दिया गया था यह किसी वस्तु का साक्ष्य नहीं है। इस प्रश्न के लिये कि बंबई भूराजस्व संहिता की धारा १५५ के अंतर्गत नीलामी क्रेता को क्या मिला, निर्णय दिया गया कि संपूर्ण संपदा जिसमें लड़कों का हिस्सा भी शामिल था उक्त आदेश के निष्पादन में वेच दी गई इसलिए उस संपत्ति के संबंध में पुत्र का कोई अधिकार बाकी नहीं रहा। उच्च न्यायालय ने इस सीमा तक डिग्री को बदल दिया और वादीगण बंबई उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र दिए जाने के बाद इस न्यायालय में अपील में आए हैं।

यहाँ अपीलकर्ता का कहना है कि:—

१—यह कि ऋण अव्यावहारिक था इसलिए नीलामी विक्रय में पुत्रों का और संयुक्त परिवार के अन्य सदस्यों का अधिकार नीलामी क्रेता को नहीं मिला।

२—यदि ऋण अव्यावहारिक हो तब भी बँटवारे के मुकदमे से संयुक्त स्थिति की समाप्ति हो गई और पुत्रों के हिस्से को बेचनेवाला पिता का अधिकार समाप्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि सर्वसाधारण की दृष्टि में वह सेंधमार या चोर समझा जाता है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये कोई तीसरा रास्ता नहीं है। उसने कई चोरियाँ की है या उसने कई सेंधे मारी हैं इसको प्रमाणित करने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि केवल उसकी पहले की दोष-सिद्धि (कनविक्शन) दिखलाई जाय; यह इस साक्ष्य से भी प्रमाणित किया जा सकता है कि उसने अमुक अमुक चोरियाँ की या सेंधें मारीं। यह आवश्यक नहीं है कि चोरी या सेंध के संबंध में जो साक्ष्य दिया जाय वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य हो; यह साक्ष्य उस व्यक्ति द्वारा भी दिया जा सकता है जो व्यक्तिगत रूप से उन तथ्यों से अवगत हो जिनसे यह निष्कर्ष निकलता हो कि जो चोरियाँ हुईं या सेंधें पड़ीं उसमें प्रार्थी का हाथ था। दूसरे शब्दों में सेंध या चोरी को प्रमाणित करने वाला साक्ष्य प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक दोनों हो सकता है। इसमें जो ध्यान देनेवाली महत्वपूर्ण बात है वह केवल यही है कि जो साक्ष्य दिया जाय वह सेंध या चोरी किए जाने को प्रमाणित करे—ऐसा साक्ष्य नहीं कि वे सब अपराध संदेह हैं कि प्रार्थी द्वारा किए गए होंगे। प्रार्थी को जब पाबंद (बाउंड डाउन) किया जायगा तो इस आधार पर किया जायगा कि वह एक अभ्यस्त सेंधमार या चोर है—इस आधार पर नहीं कि उसके बारे में सेंधमार या चोर होने का संदेह है। चोर या सेंधमार होने का संदेह अधिक से अधिक यही प्रमाणित कर सकता है कि प्रार्थी संदेह युक्त सेंधमार या चोर है—यह नहीं कि प्रार्थी (वास्तव में) अभ्यस्त सेंधमार या चोर है। संदेह द्वारा यदि किसी अपराध का किया जाना प्रमाणित नहीं किया जा सकता तो संदेह द्वारा यह भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि कोई व्यक्ति अभ्यस्त सेंधमार या चोर है। साक्षियों ने चोरी होने के संबंध में बयान दिया है किंतु किसी ने यह नहीं कहा है कि वह चोरी इस प्रार्थी ने की या प्रार्थी का इसमें हाथ था। कुछ ने कहा कि हमारा संदेह है और कुछ ने कहा कि हमने बाद में सुना कि उस चोरी में इसका हाथ था। ऐसा साक्ष्य सर्वथा अप्रतिग्राह्य (इनऐडमिसिबुल) साक्ष्य है और आश्चर्य है कि मजिस्ट्रेट ने ऐसे साक्ष्य को लिया कैसे?

इसके अतिरिक्त छानबीन करनेवाले अधिकारी का यह बयान कि हमारा संदेह है कि कुछ लोगों ने अपराध किया अप्रतिग्राह्य है कारण कि यह उसकी संमति (ओपीनियन) मात्र है—उसके व्यक्तिगत ज्ञान के अंतर्गत यह तथ्यों का अभिकथन (स्टेटमेंट आफ फैक्ट्स) नहीं है।

अपराध के संबंध में संमति (ओपोनियन) अप्रतिग्राह्य है चाहे यह छानबीन के विशेषज्ञ की ही क्यों न हो। उसे बयान यह देना चाहिए कि स्वतः हमने अमुक अमुक तथ्यों को देखा और उन तथ्यों के आधार पर हमारी संमति है कि अभियुक्त सेंधमार या चोर है इसके बाद न्यायालय इस पर विचार करेगा कि उन तथ्यों से वह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नहीं।

इस प्रकार थानेदार का बयान कि प्रार्थी के बारे में संदेह है कि कई चोरियों और सेंधों में उसका हाथ था अप्रतिग्राह्य (इनऐडमिसिबुल) है और ऐसा साक्ष्य लिया नहीं जाना चाहिए था। आई० एल० आर० ५१ इलाहाबाद ६६३ में निर्णय हुआ था कि अनेक अभियोग करने के संदेह की बात साक्ष्य में नहीं ली जानी चाहिए और उसमें यह भी कह दिया गया कि समय समय पर इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कह दिया है कि संदेह की बात पूर्णरूपेण अप्रतिग्राह्य है इसलिए इस प्रकार का साक्ष्य लेना समय को बरबाद करना है। शोहरत के बारे में साक्ष्य दिए जाने के विषय में इसमें कहा गया था कि केवल कई साक्षियों का उपस्थित करना ही पर्याप्त नहीं है। ऐसे साक्षियों का साक्ष्य कम महत्त्व का होता है। उसमें कहा गया कि ऐसे साक्ष्य का महत्व तब तक नहीं होता जब तक कि यह दिखलाने का प्रयत्न न किया गया हो कि उस व्यक्ति की स्थिति ऐसी है कि वह उसके शोहरत (रेपुटेशन) को जान सकता है और इस प्रकार के साक्ष्य के मूल्य का परीक्षण करने का प्रयत्न अभियुक्त के वकील या न्यायालय द्वारा किया गया हो। २३ क्रिमिनल ला जर्नल (लाहौर) पृ० ५०७, ए० आई० आर० १९३५ पेशावर पृ० १५३-१५६, ११ सी० डब्ल्यू० एन० ४१३-२५ कलकत्ता वीकली नोट्स ३३४ में निर्णय हुआ था कि दं० प्र० सं० की धारा ११० के मामले में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन साक्ष्यों पर निर्भर नहीं करना चाहिए जो केवल यह बतलाते हों कि अभियुक्त पर संदेह है कि उसने अमुक अमुक अपराध किया। संदेह की पुष्टि में ठोस तथ्य पर साक्ष्य देना चाहिए। १४ क्रिमिनल ला जर्नल इलाहाबाद पृ० ४०७ में कहा गया था कि यह साक्ष्य कि संदेह है कि अभियुक्त ने कुछ अपराधों में भाग लिया शोहरत का साक्ष्य नहीं है। ए० आई आर० १९२८ इलाहाबाद पृ० ३५७ में निर्णय हुआ था कि ११० के मामलों में यह साक्ष्य नहीं दिया जा सकता कि संदेह है कि अभियुक्त ने अमुक अमुक अपराध किया है। यदि इस प्रकार का साक्ष्य अनुमित होगा तो यह सुना साक्ष्य (हीयर से इविडेंस) होगा। इसमें कहा गया था कि अभ्यस्त चोर होने के आरोप के समर्थन में शोहरत का साक्ष्य दिया जा सकता है किंतु शोहरत (रेपुटेशन) का साक्ष्य भी एक निश्चित तथ्यवाला साक्ष्य होता है।

बहुत से निर्णय ऐसे हुए हैं जिनमें संदेह के साक्ष्य को माना गया है और कहा गया है कि अच्छे व्यवहार के लिये धारा ११० के अंतर्गत वे पाबंद किए जा सकते हैं। ३२ सी आर० एल० जे० अवध, पृ० २७३ में निर्णय हुआ था कि यदि अभियुक्त के बारे में संदेह का पर्याप्त साक्ष्य है तो यह उसकी शोहरत का संपोषण कर सकता है। अत्यंत सम्मान के साथ मैं इस कथन को मानने में असमर्थ हूँ क्योंकि शोहरत का साक्ष्य निश्चित तथ्य का साक्ष्य होता है और यह साक्ष्य उन्हीं व्यक्तियों द्वारा दिया जा सकता है जिन्हें इसका व्यक्तिगत ज्ञान है। अपराधों में हाथ रहने का संदेह खराब चाल चलन का संदेहजनक पारिस्थितिक साक्ष्य है। जैसा ३९ सी० आर० एल० जे० (मद्रास) पृ० ८९८ में निर्णय हुआ था कि शोहरत (रेप्युटेशन) का साक्ष्य वह साक्ष्य नहीं है कि किसी की चाल चलन के बारेमें क ख ग की राय क्या है वरन् यह कि उसके संबंध में सर्वसाधारण की राय क्या है क्योंकि शोहरत (रेप्युटेशन) वही वस्तु नहीं है जो आचरण (कैरेक्टर) है। १४ सी आर० एल० जे० इलाहाबाद पृ० ४०७ में संदेह के साक्ष्य को शोहरत का साक्ष्य नहीं माना गया था किंतु संदेह के साक्ष्य को शोहरत का आधार माना गया था। अत्यंत सम्मान के साथ मैं इस बात को मानने में असमर्थ हूँ कि कोई व्यक्ति शोहरत के आधार के बारे में साक्ष्य दे सकता है। आधार संमति (ओपीनियन) के बारे में दिए जा सकते हैं, तथ्य के लिये नहीं। शोहरत सर्वसाधारण के बीच की बात है इसलिए कोई एक व्यक्ति इस कारण के लिये साक्ष्य नहीं दे सकता कि लोगों की धारणा उसकी चालचलन के बारे में ऐसी क्यों है कारण कि इस प्रकार का साक्ष्य सुना साक्ष्य होगा। अत्यंत सम्मान के साथ मैं न्यायमूर्ति आशवर्थ (आई० एल० आर० ५१ इलाहाबाद पृ० २७५) के इस विचार से सहमत नहीं होता कि दं० प्र० संहिता की धारा ११० के अंतर्गत कार्यवाही में साक्ष्य अधिनियम नहीं लागू होता। ३२ सी आर० एल० जे० लाहौर पृ० ६२ में न्यायमूर्ति दलीप सिंह ने अपराध प्रमाणित करनेवाले संदेह के साक्ष्य को अस्वीकार कर दिया था किंतु इसे शोहरत प्रमाणित करनेवाला माना था। अत्यंत सम्मान के साथ मैं समस्त संदेह के साक्ष्य को अस्वीकार करता हूँ। अपनी बचत में अभियुक्त ने भी साक्षियों को उपस्थित किया है जिनकी संख्या अभियोजन साक्षियों से कम नहीं है। इन साक्षियों का बयान है कि वह ताँगा चलाकर चूड़ियाँ वेचकर और एक सराय की देखभाल करके जीवन निर्वाह करता है। इन साक्षियों के कथन में बहुत मामूली अंतर रहने के कारण अन्वीक्षा न्यायालय ने इसे अस्वीकार कर दिया है जब कि बचत में आए हुए बहुत से साक्षी प्रार्थी के गाँव के हैं और अधिकांश बहुत उच्च सामाजिक स्तर के हैं।

शोहरत का साक्ष्य यह दिखलाने के लिये प्रतिग्राह्य है कि कोई व्यक्ति अभ्यस्त चोर या सेंधमार है किंतु यह प्रश्न सर्वथा भिन्न है कि किसी विशेष मामले में एकमात्र शोहरत के आधार पर अभियुक्त को चोर या सेंधमार प्रमाणित होना कहा जा सकता है कि नहीं। यदि प्रार्थी द्वारा विरोध में कोई साक्ष्य नहीं दिया जाता तो शोहरत का साक्ष्य स्वीकार किया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। यदि विरोध में साक्ष्य हो तो भी यदि बचत में दिया गया साक्ष्य ठीक नहीं है या अभियोजन साक्ष्य के साथ साथ यह विशिष्ट प्रमाण दिया जाता है कि प्रार्थी ने चोरी किया या सेंध मारी या अभियोजन साक्ष्य के साथ साथ पहले की दोष सिद्धि का प्रमाण दिया जाता है तो शोहरत का साक्ष्य स्वीकार किया जा सकता है। पर्याप्त संख्या में चोरी या सेंध मारने के अपराध को इस बात के लिये प्रमाणित किया जा सकता है कि वह एक अभ्यस्त सेंधमार या चोर है किंतु यदि चोरी या सेंधों की संख्या कम है तो शोहरत का साक्ष्य इसका पूरक हो सकता है।

"मैं अभियुक्त को जानता हूँ। उसकी चालचलन खराब है। उसकी संगति बुरी है। वह चोरी करता है और डाका डालता है···।" इस प्रकार के साक्ष्य के बारे में आई० एल० आर० ४३ मद्रास ४५० में निर्णय हुआ था कि :—

"ऐसे साधारण ढंग के बयान न्यायालय को कोई सहायता नहीं प्रदान कर सकते·········केवल विश्वास और संमतिवाला साक्ष्य बिना कार्य या विशिष्ट प्रमाण के जिस पर कि उक्त संमति और विश्वास आधारित होता है शोहरत का साक्ष्य नहीं कहा जा सकता······ शोहरत का साक्ष्य ऐसा साक्ष्य है कि इसको तोलने में बहुत सावधानी की आवश्यकता है।" ए० आई० आर० १६२५ लाहौर में निर्णय हुआ था कि धारा ११० में पाबंद करने के लिये शोहरत का साक्ष्य बहुत ही निर्बल साक्ष्य है और इसके लिये सारभूत संपोषण की आवश्यकता है। ३६ सी आर० एल० जे० मद्रास ५८८ में कहा गया था कि शोहरत का साक्ष्य बहुत अनिश्चित रहता है और इसके अनिश्चित रहने से अभियुक्त प्रतिपरीक्षण (क्रास एक्जामिनेशन) भी ठीक से नहीं कर सकता। हकीम सिंह वि० सम्राट् के मामले में तय हुआ था कि अभियुक्त की ओर से यदि उच्चे सामाजिक स्तर के व्यक्ति साक्ष्य देते हो तो ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साक्ष्य को स्वीकार न करने के लिये बहुत ही दृढ़ तर्क देना चाहिए।

इस मामले में शोहरत के संबंध में दिया गया साक्ष्य निर्बल है, इसका संपोषण नहीं हुआ और बचत में जो साक्षी आए हैं उनका साक्ष्य भी बहुत ही महत्व का है। हमारे विचार से अभियोजन ने न्यायालय के समक्ष यह प्रमाणित नहीं किया कि अभियुक्त एक अभ्यस्त चोर और सेंधमार है और उससे जमानत माँगना ठीक नहीं है।

यह प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है और अभियुक्त को पाबंद करनेवाला मजिस्ट्रेट का आदेश निराकृत किया जाता है और उसे उन्मुक्त किया जाता है। यदि उसने जमानत दे दी है तो यह निरसित की जाती है।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका वर्ष ३, १६५६

इलाहाबाद उच्च न्यायालय १६

न्यायमूर्ति एम० सी० देसाई

आपराधिक पुनरीक्षण सं० ५४३।१६५८

३ सितबंर १६५८

महावीर — प्रार्थी

वि०

राज्य विपक्षी

आपराधिक अन्वीक्षा—प्रतिष्टंम (इस्टापेल) का सिद्धांत—प्रतिष्टंम का आपराधिक अन्वीक्षा में लागू होना।

न्यायमूर्ति एम० सी० देसाई—

प्रार्थी ने अपनी दोष सिद्धि पर एकमात्र यही आपत्ति की है कि यह दं० प्र० संहिता की धारा ४०३ द्वारा बाधित (बार्ड) है। प्रार्थी की दोष सिद्धि तार. अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम (टेलिग्राफ वायर्स ऐक्ट) की धारा ५ के अंतर्गत हुई थी। परिस्थिति इस प्रकार है :—

इसके पहले एक बार प्रार्थी की अन्वीक्षा पुलिस के सीनियर सुपरिंटेंडेंट के सम्मोदन (सैंक्शन) पर हुई थी। यह अन्वीक्षा इसी अपराध के लिये हुई थी। विधि के अनुसार उसकी अन्वीक्षा पुलिस सुपरिंटेंडेंट के सम्मोदन (सैंक्शन) पर होनी चाहिए थी। अन्वीक्षा न्यायालय ने प्रार्थी की दोष सिद्धि की और अपील के न्यायालय में प्रार्थी का कहना था कि संमोदन (सैंक्शन) गलत दिया गया कारण कि "पुलिस का सीनियर सुपरिंटेंडेंट" वही अधिकारी नहीं है जो "पुलिस का सुपरिंटेंडेंट" होता है। अपील के न्यायालय ने यह बात मान लिया तथा प्रार्थी की दोषसिद्धि निराकृत करके उसे छोड़ दिया। इसके बाद अभियोजन ने तार विभाग के एस० डी० ओ० का संमोदन लिया जो संमोदन देने के अधिकारी थे और तब प्रार्थी की अन्वीक्षा उसी आधार पर किया और प्रार्थी की दोषसिद्धि फिर हुई। यहाँ मेरे समक्ष श्री पी० सी० चतुर्वेदी का कहना है कि सीनियर एस० पी० और एस० पी० में कोई अंतर नहीं है और इस प्रकार पहलेवाला सीनियर एस० पी० द्वारा लिया हुआ संमोदन वैध था और प्रार्थी की दोषमुक्ति (ऐक्युटल) गलत आधार पर हुई थी और यह कि दोषमुक्ति यदि गलत आधार पर हुई हो किंतु वह अन्वीक्षा वैध रही हो तो उसी बात पर दूसरी अन्वीक्षा (ट्रायल) नहीं हो सकती या दूसरी बार उसका अभियोजन नहीं हो सकता। यों तो यह ठीक है कि गलत आधार पर भी दोषमुक्ति चाहे वह आधार तथ्य का हो या विधि का उसी बात पर दूसरी अन्वीक्षा होने में बाधक है किंतु यह इतना सरल नहीं है। यहाँ तथ्य यह है कि पहली अन्वीक्षा में प्रार्थी का स्वयं ही यह कहना था कि उपयुक्त संमोदन के बिना यह अन्वीक्षा अवैध है; अपील के न्यायालय ने प्रार्थी की इस बात को मान लिया और आवश्यक विधिक परिणाम के साथ उसे छोड़ दिया कि समर्थ अधिकारी के नवीन संमोदन पर उसका अभियोजन पुनः हो सकता है। अब जब उसकी अन्वीक्षा फिर होती है और उसकी दोषसिद्धि की जाती है तो वह बदल जाता है और कहता है कि पहले की अन्वीक्षा वैध थी। इसमें संदेह नहीं कि अब वह यह नहीं कह सकता कि पहले का संमोदन समर्थ अधिकारी द्वारा दिया गया था। प्रार्थी पक्ष और विपक्ष की दोनों बातों पर एक साथ निर्भर नहीं कर सकता और सर्वथा विरोधी बातों का आश्रय एक साथ नहीं ले सकता। जब प्रार्थी ने जोर दिया कि पहले की अन्वीक्षा समर्थ अधिकारी द्वारा है और इसमें सफल होकर उसने द्वितीय अन्वीक्षा की माँग की और नवीन संमोदन पर जब यह द्वितीय अन्वीक्षा आरंभ हुई तो वह अब यह नहीं कह सकता कि पहले की अन्वीक्षा समर्थ अधिकारी द्वारा दी गई थी और उसके परिणामस्वरूप यह द्वितीय अन्वीक्षा बाधित (बार्ड) है। विधि यदि किसी व्यक्ति को इस प्रकार समनुमोदन और अननुमोदन (अप्रोबेशन ऐंड डिसअप्रोबेशन) की अनुमति प्रदान करे तो न्याय उपहास मात्र होगा। प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) का सिद्धांत जैसे व्यवहार (सिविल) मामलों में लागू होता है उसी प्रकार यह आपराधिक मामलों में भी लागू होता है और यह सिद्धांत अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) से संबंध रखनेवाले मामलों में भी लागू हो सकता है। केवल संमति (कंसेंट) अधिक्षेत्र नहीं प्रदान कर सकती पर इस सिद्धांत को यहाँ लागू करने के लिये कोई गुंजाइश नहीं है; नीचे के न्यायालय ने प्रार्थी की अन्वीक्षा करने का अधिक्षेत्र इसलिए नहीं अपनाया कि अन्वीक्षा करते समय उसने अपनी संमति दी थी वरन् उसने ऐसा पहले की अन्वीक्षा के परिणामस्वरूप किया। इसके अतिरिक्त यह सर्वव्यापी सिद्धांत नहीं है कि संमति अधिक्षेत्र प्रदान नहीं कर सकती। कुछ परिस्थितियों में यह कर सकती है।

२४ कार्पस जुरिस सेकंडम "क्रिमिनल ला" परिच्छेद १८४२ में है कि:—

"आपराधिक कार्यवाही में कोई पक्ष असंगत स्थिति को नहीं अपना सकता चाहे वह अन्वीक्षा न्यायालय में हो चाहे अपील के न्यायालय में तथा सामान्य नियम तो यह है कि अन्वीक्षा न्यायालय की गलती के बारे में उस बात के विपरीत बात कहने की उसे अनुमति नहीं दी जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए जिसमें उसने स्वतः अपनी सहमति प्रगट किया था या जो उसके निजी कार्यों का स्वाभाविक परिणाम था"। ए० आई० आर० १९४४ कलकत्ता पृ० ५३ में ऐसा ही निर्णय हुआ था।

डेलने वि० यू० एस० २६३ यू० एस०, ५८६–६८ एल० आर० ४६२ में किसी विधि के अनुसार किसी न्यायाधीश को किसी व्यक्ति विशेष की अन्वीक्षा के बारे में न्यायासन में बैठने का अधिकार नहीं था। किंतु अन्वीक्षा के बाद प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) के सिद्धांत के अनुसार न्यायाधीश के उस न्यायासन में बैठने के विषय पर आपत्ति करने से उसे मना कर दिया गया। 'कार्पस् जुरिस सेकंडम्' 'क्रिमिनल ला' परिच्छेद १४७ में है कि यों तो किसी अपराध के संज्ञान (कागनिजेंस) का अधिक्षेत्र अभियुक्त की संमति पर किसी न्यायालय को प्रदान नहीं किया जा सकता किंतु जब न्यायालय को अभियुक्त पर अधिक्षेत्र होता है तो छोड़कर या संमति देकर इसे प्रदान किया जा सकता है। यह कि न्यायालय विधिक न्यायालय नहीं है अथवा उसे अपराध की सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं है—इसको न तो छोड़ा जा सकता है और न तो प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) के सिद्धांत के आधार पर अधिक्षेत्र प्रदान किया जा सकता है किंतु यह बात कि न्यायालय का संघटन केवल दोषपूर्ण है, जब कि अन्य प्रकार यह वैध हो तो इसे छोड़ा जा सकता है अथवा आरंभिक मामले या कार्यवाहियों में कोई अनियमितता हो गई हो तो इसे भी छोड़ा जा सकता है। 'कार्पस जुरिस सेकंडम्' 'कोर्ट्स' परिच्छेद १०८ में है कि किसी विषय के बारे में अधिक्षेत्र किसी पक्ष के प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) पर आधारित नहीं किया जा सकता कि वह इसके अस्तित्व से इनकार करे किंतु अधिक्षेत्र संबंधी अन्य आपत्तियों के लिये प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) हो सकता है। जो छोड़ा नहीं जा सकता वह उस विषय या वादमूल के संबंध में अधिक्षेत्र का सर्वथा न होना है (देखिए परिच्छेद १०६)। इस मामले में इस विषय पर और अभियुक्त पर भी अन्वीक्षा न्यायालय का अधिक्षेत्र था; उस अपराध के संबंध में उस न्यायालय को अन्वीक्षा का अधिकार था। 'कार्पस जुरिस सेकंडम्' 'क्रिमिनल ला' परिच्छेद २४४ में है कि किसी व्यक्ति का दो बार उसी विषय के लिये विपत्ति में डालना उस समय नहीं होता जब कि पहलेवाले मुकदमे में अधिक्षेत्र न रहने के कारण जो वह छोड़ा गया था उसके बारे में दूसरी बार यह कहने से मना कर दिया गया हो कि पहलेवाले न्यायालय को अन्वीक्षा का अधिक्षेत्र था। हकीम सईद खुर्शेद अली वि० तिरहुत के आयुक्त ए० आई० आर० १९५५ पटना १९८ में निर्णय हुआ था कि किसी न्यायाधिकरण के अधिक्षेत्र से यदि कोई पक्ष इनकार करता हो और वह उस अभिकथन में सफल हो गया हो तो इसके बाद के दूसरे न्यायालय की कार्यवाही में वह इसकी सत्यता से इनकार नहीं कर सकता। आपराधिक मामलों में प्राङ्न्याय (रेसजुडिकेटा) का सिद्धांत 'उन विषयों की समाप्ति के लिये लागू होता है जिन पर निर्णय पहले दिया जा चुका है।' (देखिए ९५ एल० ई० ७४७) यों तो संमति (कंसेंट) किसी न्यायालय को अधिक्षेत्र नहीं प्रदान कर सकती किंतु पक्षों को किसी उस तथ्य की स्थिति को स्वीकार करने का अधिकार है जिससे यह पता चलता हो कि अधिक्षेत्र है और न्यायालय को ऐसी स्वीकृति को न्यायिक ढंग पर कार्यान्वित करने का अधिकार है। २३ वाल ३२२–२२–एल० ई० ८२३। केवल जब न्यायालय को अंतर्भूत (इनहेरेंट) अधिक्षेत्र का अभाव हो तभी पक्षों द्वारा उस न्यायालय को अधिक्षेत्र नहीं प्रदान किया जा सकता किंतु जब अधिक्षेत्र की कमी कुछ तथ्यों के प्रमाण पर निर्भर करती है और यदि वे तथ्य न उठाए गए और न प्रमाणित किए गए तो किसी पक्ष को अधिक्षेत्र न रहने की बात उठाने की अनुमति नहीं देना चाहिए कि इस प्रकार वह निर्णय को प्रभावशून्य कर दे (ए० आई० आर० १९१६ पटना २६४)। केवल यदि न्यायालय को अधिक्षेत्र बिलकुल ही न हो केवल तभी यह संमति द्वारा ठीक नहीं की जा सकती (१८४८ क्वींस बेंच ५)। इस मामले में अन्वीक्षा न्यायालय को ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अधिक्षेत्र बिलकुल ही नहीं था

इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं—कि प्रतिष्टंभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इस्टापेल) के सिद्धांत द्वारा प्रार्थी अब यह नहीं कह सकता कि पहले का संसोदन वैध था। यदि वह यह नहीं कह सकता कि पहले का संसोदन वैध था तो निर्णय यह है कि पहले की अन्वीक्षा अवैध थी और इस प्रकार दूसरी अन्वीक्षा को यह नहीं कहा जा सकता कि दं० प्र० संहिता की धारा ४०३ से बाधित है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९ इलाहाबाद

उच्च न्यायालय २२

(पूर्ण न्यायासन)

(लखनऊ न्यायासन)

एम० एल० चतुर्वेदी, ए० एन० मुल्ला और बी० एन० निगम न्यायमूर्ति गण

आपराधिक निर्देश सं० ४३।१९५६ अक्टूबर ८, १९५८

गंगा बख्श सिंह प्रार्थी

वि०

सुखदीन परिवादी-विपक्षी

राय बरेली के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा दिनांक २३ जून १९५६ का निर्देश (रेफरेंस)

अ—दंड प्रक्रिया संहिता १८९८, धा० १४५ (४)—प्रथम परंतुक (प्राविजो)—कार्यवाही आरंभ होने की तिथि—२ महीने की अवधि की गणना कब से की जानी चाहिए।

ब—दंड प्रक्रिया संहिता, १८९८, धारा १४५ (४)-परंतुक-एक पक्ष का धारण जबरदस्ती छुड़ा दिया गया और इस पर धा० १४५ के अंतर्गत कार्यवाही आरंभ हुई—मजिस्ट्रेट ने धारण (पोजेशन) छोड़ने के दो महीने बाद आरंभिक आदेश (प्रेलिमिनरी आर्डर) पारित किया—जिस पक्ष को धारण छोड़ना पड़ा है उसे इस कार्यवाही में धारण वापस पाने का आदेश नहीं दिया जा सकता।

चतुर्वेदी और निगम न्यायमूर्तिगण —

८-८-१९५५ को सुखदीन ने एस० डी० ओ० के न्यायालय में एक प्रार्थनापत्र धा० १४५ के अंतर्गत दिया कि हम विवादग्रस्त खेत के सीरदार हैं और पहले के जमींदार गंगाबख्श सिंह ने २४-७-१९५५ को इस खेत का धारण(पोजेशन)जबरदस्ती ले लिया है। एस० डी० ओ० ने आदेश दिया कि शांतिभंग की संभावना के बारे में पुलिस २३-८-१९५५ तक प्रतिवेदन दे। उस दिन पुलिस का प्रतिवेदन प्राप्त नहीं हुआ और उसकी प्रतीक्षा के लिये १२-९-१९५५ तिथि निश्चित हुई। वास्तव में पुलिस ने ३१-८-१९५५ को ही प्रतिवेदन दे दिया था और मजिस्ट्रेट ने इसे ८-९-१९५५ को प्राप्त किया किंतु इसका कोई कारण नहीं बतलाया गया कि वह १२-९-१९५५ को मजिस्ट्रेट के सामने क्यों नहीं रखा गया। आरंभिक आदेश (प्रेलिमिनरी आर्डर) धारा १४५ (१) के अंतर्गत १४-१०-१९५५ को पारित किया गया। विवादग्रस्त खेत १८-११-१९५५ को कुर्क किया गया।

जांच पूरी करने के बाद मजिस्ट्रेट ने २४-४-१९५६ को निर्णय दिया कि सुखदीन सर्वदा से उस खेत के धारण में रहा है और उन्होंने कुर्की उठाकर उसका धारण सुखदीन को दे दिया और गंगाबख्श सिंह को मना किया कि सुखदीन के धारण में हस्तक्षेप न करें। इसके बाद गंगा बख्श सिंह ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया। इसकी सुनवाई विद्वान् अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने की। इनका निष्कर्ष यह था कि सुखदीन ने स्वतः स्वीकार किया है कि मजिस्ट्रेट के आरंभिक आदेश के दिन से २ महीने से अधिक तक उसका धारण नहीं था इसलिए संहिता की धारा १४५ (४) के परंतुक के अंतर्गत ऐसा नहीं समझा जा सकता कि उस आदेश के दिन सुखदीन धारण में था। इसलिए उन्होंने इस मामले का निर्देश इस न्यायालय में कर दिया है—तथा उनकी अभिस्तावना (रिकमेंडेशन)

CC-0: In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट का दिनांक २४-४-१९५६ का आदेश निराकृत कर दिया जाय और घोषित किया जाय कि गंगाबख्श सिंह का धारण है और उन्हें धारण पुनर्स्थापित (रिस्टोर) कर दिया जाय।

निर्देश जब सुनवाई के लिये आया तो बहस की गई कि मजिस्ट्रेट के विलंब करने का दंड सुखदीन को नहीं दिया जा सकता क्योंकि १२-९-१९५५ को वह प्रतिवेदन मजिस्ट्रेट के यहाँ था और मजिस्ट्रेट ने १२-९-१९५५ को ही यदि आरंभिक आदेश पारित कर दिया होता तो वह धारण छोड़ने के दो महीने के भीतर होता और धारण सुखदीन को पुनर्स्थापित कर दिया गया होता। आई० एल० आर० १९५१ मद्रास ९५१ में निर्णय हुआ था कि न्यायालय की गलती से किसी पक्ष को हानि नहीं पहुँच सकती। इसलिए कहा गया कि संहिता की धारा १४५ (१) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट का आरंभिक आदेश उस दिन पारित हुआ समझा जाना चाहिए जिस दिन प्रार्थनापत्र दिया गया था अर्थात् जिस दिन मजिस्ट्रेट ने सुखदीन के प्रार्थनापत्र का संज्ञान (काग्निजेंस) लिया। यह विचार इस न्यायालय के एक निर्णय के प्रतिकूल पड़ता था इसलिए विद्वान् एकाकी न्यायाधीश ने इसे विभागीय न्यायासन के समक्ष भेज दिया और विभागीय न्यायासन ने जब देखा कि यह विषय महत्वपूर्ण है और विभिन्न उच्च न्यायालयों में इस विषय पर मतभेद है तो उसने इसे बृहत्तर न्यायासन के समक्ष निर्देशित करना उचित समझा।

चंचू नारायण वि० करापति केसप्पा आई० एल० आर० १९५१ मद्रास ९५१ के निर्णय का आधार यह था कि न्यायालय की गलती से किसी पक्ष को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए। मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष यह बहस की गई थी कि धारा १४५ (१) के अंतर्गत आरंभिक आदेश (प्रेलिमिनरी आर्डर) पारित करने की बात जब कही जाती है तो इसके विषय में समझना यह चाहिए कि यह परिवाद (कंप्लेंट) पाने या पुलिस के प्रतिवेदन के पाने के साथ ही पारित किया गया इसलिए पिछले दो महीने की गणना परिवाद निवेशित करने की तिथि से करनी चाहिए।

तत्कालीन विधि पर विचार करते हुए और कलकत्ता उच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर विचार करते हुए विद्वान् न्यायाधीशों ने निर्णय दिया था कि इस धारा का परंतुक इस उद्देश्य से है कि जो व्यक्ति धारण में नहीं है फिर भी विधि की कल्पना द्वारा वह धारण में समझा जाता है। दूसरे शब्दों में यह परंतुक विधिक कल्पना पर आधारित है। विधान मंडल का उद्देश्य यह था कि यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो जाय तो प्रार्थनापत्र निवेशित करने और आरंभिक आदेश के पारित करने के बीच कोई समय नहीं बीतना चाहिए। एक ठीक दूसरे के पीछे होना चाहिए। मजिस्ट्रेट की संतुष्टि या तो पुलिस प्रतिवेदन पर अवलंबित रहनी चाहिए या अन्य प्रकार से प्राप्त सूचना पर। इसलिए उसमें निर्णय हुआ था कि पुलिस प्रतिवेदन आदि यदि संतुष्ट हो जाने योग्य हो कि शांतिभंग की आशंका है तो आरंभिक आदेश पारित करने में देर करने में कोई औचित्य नहीं है। यदि देर करने में औचित्य नहीं है तो आदेश में जो समय दिया हो वह यदि बादवाली तिथि का हो तो समझना यह चाहिए कि पुलिस के प्रतिवेदन या अन्य प्रकार से प्राप्त सूचना के ठीक बाद यह आदेश पारित किया गया। निर्णय में यह कहा गया था कि यदि यह बात सत्य है कि परिवाद निवेशित करने का प्रतिवेदन प्राप्त करने और आरंभिक आदेश पारित करने के बीच काफी समय व्यतीत नहीं होना चाहिए तो इसका परिणाम यह होता है कि आरंभिक आदेश का पारित होना उस दिन समझना चाहिए जिस दिन मजिस्ट्रेट उस मामले का संज्ञान (काग्निजेंस) लेता है और संतुष्ट हो जाता है कि मामले में कार्यवाही शीघ्र करना है। इस प्रकार विधिक कल्पना के आधार पर यह समझना चाहिए कि आरंभिक आदेश पहले वाली किसी तिथि को पारित किया गया था।

चूँकि इसमें बहस यह की गई थी कि आरंभिक आदेश का पारित होना प्रार्थनापत्र निवेशित करने या पुलिस का प्रतिवेदन प्राप्त करने के समय समझना (डीम) चाहिए इसलिए इस अवस्था पर यहाँ यह दिखलाने की आवश्यकता नहीं है कि उपबंध सर्वथा स्पष्ट है और न्यायालय का काम विधान बनाना नहीं है वरन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि जिस दशा में है उसी दशा में इसे लागू करना है तथा यह भी बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि अवधि (लिमिटेशन) को बहुत कड़ाई से लागू करना चाहिए और इस कमी को दिखलाने पर भी कोई परिवर्तन नहीं किया गया जब कि दंड प्रक्रिया संहिता और स्वतः धारा १४५ का संशोधन हाल ही में हुआ है।

इसी प्रकार का विचार भद्रम्मा वि० कोटम राज ए० आई० आर० १९५५ हैदराबाद १४० में व्यक्त किया गया था कि जब परिनियम के शब्द स्पष्ट हों तो परिनियम को उसी प्रकार लागू करना चाहिए, किंतु जब कोई अवस्थाविशेष परिनियम में प्रयुक्त स्पष्ट शब्दों के अंतर्गत न आती हो अथवा उपबंध के शब्दों के नितांत स्पष्ट होने पर भी वे तत्कालीन प्रश्न विशेष में लागू नहीं होते और साथ ही साथ यह स्पष्ट हो कि विधानमंडल को विचार ऐसा नहीं था तो व्याख्या के संबंध में इसे 'काजस ओमिसस' कहते हैं अर्थात् परिनियम में इसके लिये कोई उपबंध नहीं है।

विचार करने के बाद हम उक्त विचार से सहमत नहीं होते हैं और इन दो रूलिंग्स में जो सूक्तों (मैक्सिम्स) की बात कही गई है उन्हें लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

धारा १४५ (१) में विशिष्ट प्रकार से किसी प्रार्थना पत्र की चर्चा नहीं है। मजिस्ट्रेट को पुलिस प्रतिवेदन से या किसी अन्य प्रकार से संतुष्ट होना है—कार्यवाही आरंभ करने के लिये प्रार्थनापत्र का ही होना आवश्यक नहीं है। यह बात नहीं है कि वह पक्ष किसी वाद मूल (काज) के साथ उपस्थित होता है। प्रत्येक मामले में यह उपलब्ध नहीं हो सकता कि प्रार्थनापत्र कब से आरंभ हो रहा है या पुलिस प्रतिवेदन भी कब से शुरू हो रहा है और अवस्था यदि इस प्रकार की हो तथा मजिस्ट्रेट स्वतः जब शांतिभंग की आशंका देखता है और जाँच करने के बाद संतुष्ट होने पर कि शांतिभंग की आशंका है जब वह आरंभिक आदेश पारित करता है तो इस आदेश की तिथि को पिछली उस तिथि से नहीं लिया जा सकता जब कि मजिस्ट्रेट ने पहले पहल सूचना प्राप्त किया था। इससे यह स्पष्ट है कि कार्यवाही का आरंभ उस तिथि से नहीं होता जिस दिन मजिस्ट्रेट ने सूचना प्राप्त की या जिस दिन उसके यहाँ प्रार्थनापत्र पड़ा वरन् जब वह अपनी संतुष्टि लिखित रूप में व्यक्त करता है उस दिन से कार्यवाही का आरंभ होता है। ए० आई० आर० १९५५ आंध्र ९९ में इसी बात पर जोर दिया गया है। इस रूलिंग में कहा गया था कि यों तो प्रायः जो पक्ष हानि में रहता है वही मजिस्ट्रेट के यहाँ प्रार्थनापत्र देता है परंतु यह आवश्यक नहीं है कि आरंभिक जाँच (प्रेलिमिनरी इनक्वाइरी) उस पक्षविशेष के कहने पर हो। मजिस्ट्रेट उसे स्वतः आरंभ कर सकता है। पक्ष विशेष के कहने पर जब आरंभिक जाँच आरंभ भी हुई हो तो मजिस्ट्रेट यदि संतुष्ट हो जाता है कि इस कार्यवाही की आवश्यकता नहीं है तो वह इसे बंद भी कर सकता है।

यह कार्यवाही मजिस्ट्रेट की व्यक्तिगत संतुष्टि पर आरंभ होती है, परिवाद या पुलिस प्रतिवेदन पर नहीं। इसके लिये महत्वपूर्ण तिथि वही है जिस दिन मजिस्ट्रेट अपनी संतुष्टि लिख लेता है। यही वह तिथि है जिस दिन पक्षों के धारण (पोजेशन) के बारे में जाँच की जानी चाहिए और यही वह तिथि भी है जिस दिन से उक्त परंतुक (प्राविजो) में दिए हुए दो महीने की गणना करनी होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विधान मंडल का यह अभिप्राय था, इसी तिथि से कार्यवाही का आरंभ समझना चाहिए—मजिस्ट्रेट को दी गई आरंभिक सूचना से नहीं। इस प्रकार 'काजस ओमिसस' जिसकी चर्चा उपर की जा चुकी है यहाँ लागू नहीं हो सकता।

उपबंध से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट को यह अधिकार शांति स्थापित करने के विचार से दिया गया है। प्रसंगवश इससे व्यक्तिगत अधिकार पर प्रभाव पड़ जाता है। जाँच की प्रकृति आभास न्यायिक (क्वासी जुडिशियल) है। यह आपराधिक न्यायालय का व्यवहार (सिविल) न्यायालय के अधिक्षेत्र में घुस जाना है इसीलिए यह आवश्यक है कि इसको सीमित करके उतना ही लागू किया जाय जितना शांति व्यवस्था के लिये अत्यावश्यक हो। मजिस्ट्रेट को धा० १४५ के अंतर्गत तत्व पर विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करना होता या धारण करने का किस पक्ष का क्या अधिकार है इस पर भी विचार नहीं करना होता। उसको इतना ही देखना होता है कि संबद्ध तिथि को वास्तविक धारण किसका था। इससे भी यह पता चलता है कि कार्यवाही का आरंभ होना उस तिथि से समझना चाहिए जब कि मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो गया हो कि शांति भंग की आशंका है—जिस दिन उसे प्रथम सूचना मिली उस दिन से नहीं।

यह भी स्पष्ट है कि पक्षों का यह अधिकार नहीं है कि मजिस्ट्रेट को निर्णय देने के लिये बाध्य करें। यदि मजिस्ट्रेट सोचता है कि किसी कार्यवाही की आवश्यकता नहीं है तो इस धारा के अंतर्गत कार्यवाही न करके धारा १०७ या धा० १४४ के अंतर्गत कार्यवाही कर सकता है। उसे किसी निर्णय पर पहुँचने की पाबंदी भी नहीं है। मजिस्ट्रेट के विवेक पर यह निर्भर करता है कि या तो निर्णय दे दे या यह बता दे कि मैं निर्णय देने में असमर्थ हूँ। नियमित वाद और धा० १४५ के अंतर्गत की कार्यवाही में अंतर होता है इसलिए जो सूत्र (मैक्सिम्स) व्यवहार कार्यवाही (सिविल प्रोसीडिंग्स) में लागू होते हैं उनका इस कार्यवाही में लागू होना संभव नहीं है। मजिस्ट्रेट धारण संबंधी अधिकार पर निर्णय नहीं देता, वह धारण की प्रकृति पर भी विचार नहीं करता। मजिस्ट्रेट की जाँच केवल वास्तविक धारण पर होती है उसकी प्रकृति पर नहीं। जाँच भी सरसरी (समरी) होती है। हाल में जो संशोधन हुआ है उससे यह बात और स्पष्ट हो जाती है। जाँच का परिणाम व्यवहार न्यायालय (सिविल कोर्ट) द्वारा जारी किए हुए अस्थायी निषेधाज्ञा (टेंपोरेरी इंजंक्शन) के समान नहीं होता। दं० प्र० संहिता की धारा १४५ के अंतर्गत की जाँच अन्वीक्षा (ट्रायल) नहीं होती। कोई प्रक्रिया (प्रोसीजर) विशेष नहीं दिया हुआ है और सर्वदा ही निर्णय के विरुद्ध पक्षों का व्यवहार न्यायालय में जाने का अधिकार अक्षुण्ण रहता है।

धा० १४५ (४) का प्रथम परंतुक केवल अनुमति ही देता है। मजिस्ट्रेट उस पक्ष का धारण में होना मान सकता है जिसने आरंभिक आदेश के दो महीने के भीतर धारण छोड़ा है। यह मजिस्ट्रेट का विवेक है पर यह विवेक न्यायिक होना चाहिए जिसके आधार पर दो महीने के भीतर धारण छोड़ने पर उसे धारण में होना या तो मान सकता है, या धारण में होना मानने से इनकार कर सकता है। यदि मजिस्ट्रेट यह समझता है कि आरंभिक आदेश पारित होने के दो महीने के भीतर उसके वास्तविक स्वामी ने ही अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) का धारण हटाकर स्वतः धारण में आ गया है तो यदि वह धारणच्युति पर विचार नहीं करता तो उसका ऐसा करना ठीक है। पक्षों को यह अधिकार नहीं है कि मजिस्ट्रेट को (इस प्रकार धारण छोड़ देने पर) यह निर्णय देने को बाध्य करें कि वह पक्ष धारण में माना जाय। यह विवेक पर निर्भर करता है इसलिए एक निश्चित सीमा के भीतर इसे लागू करना चाहिए और एक बार जब सीमा निर्धारण कर दिया गया तो इसका पालन कड़ाई से करना चाहिए। विधान मंडल ने सोच समझकर केवल सीमित विवेक का अधिकार दिया है और हमें कोई कारण नहीं दीखता कि इस विवेक के प्रयोग के लिये यह मानकर कि आरंभिक प्रार्थनापत्र के दिन को आरंभिक आदेश पारित हुआ था इस अवधि को आगे और क्यों बढ़ा दिया जाय।

पक्ष को इसके अंतर्गत किसी आदेश का अधिकार नहीं है। यह कार्यवाही केवल शांति स्थापना के लिये है किसी पक्ष के अधिकार की स्थापना के लिये नहीं। इसलिए आंध्र के निर्णय में व्यक्त किए हुए विचार से हम सहमत हैं और मद्रास के निर्णय में दिए हुए विचार से हम असहमत हैं। इसमें समता के सिद्धांत (इक्युटेबुल प्रिंसिपुल) को लागू करना ठीक नहीं है।

धारा में अस्पष्टता नहीं है। कुछ अवस्था विशेष में कठिनाई पैदा हो सकती है किंतु इससे न्यायालय व्याख्या के निश्चित सिद्धांत से हट नहीं सकता कारण कि न्यायालय का काम व्याख्या करने का है विधान बनाने का नहीं। जो दो महीने की अवधि दी गई है वह ठीक भी है कारण कि यदि एक पक्ष इतनी लंबी अवधि तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांतिपूर्वक धारण में रहा है तो वह धारण गलत ही क्यों न हो उससे वास्तविक शांतिभंग की आशंका नहीं होती इसलिए ऐसा कहना कि बाद में शांतिभंग की संभावना हो सकती है ठोक नहीं है। झगड़ा तब भी रह जाता है पर इसका निर्णय व्यवहार न्यायालय पर छोड़ देना चाहिए। मजिस्ट्रेट का अधिकार उस समय शुरू होता है जब वह संतुष्ट हो जाता है कि शांतिभंग की आशंका है और ज्योंही वह समझता है कि शांतिभंग की आशंका नहीं है त्यों ही उसके अधिकार की समाप्ति हो जाती है। उपधारा ५ में है कि सभी पक्षों को यह दिखलाने का अधिकार है कि शांतिभंग की संभावनावाला कोई झगड़ा 'न है और न था'। इस उपबंध में दी गई अवधि का पालन कड़ाई से करना चाहिए। विधान मंडल ने यदि सावधानी से अवधि की सीमा निर्धारित किया है तो कड़ाई से हमें उसका पालन भी करना चाहिए।

पक्ष और विपक्ष की कतिपय रूलिंग्स् पर विचार करने के बाद हमारा निष्कर्ष है कि उस उपबंध का अभिप्राय स्पष्ट है और उसका पालन कड़ाई से करना चाहिए। यदि ठीक आरंभिक आदेश (प्रेलिमिनरी आर्डर) के दो महीने से अधिक पहले वह धारण छोड़ चुका है तो धारा १४५ के परंतुक के अंतर्गत उस आदेश के दिन यदि मजिस्ट्रेट उसके धारण को मानते हैं तो यह ठीक नहीं है।

परिणाम स्वरूप मैं विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के निर्देश (रेफरेंस) और अभिस्तावना (रेकमेंडेशन) को स्वीकार करता हूँ।

न्यायमूर्ति मुल्ला –

प्रश्न है कि यदि एक पक्ष ने धारण छोड़ने के बाद समय के भीतर ही धा० १४५ के अंतर्गत की कार्यवाही आरंभ की किंतु मजिस्ट्रेट ने आरंभिक आदेश धारण छोड़ने की तिथि के २ महीने के बाद पारित किया और अपने अंतिम आदेश द्वारा धारण उसे वापस दिला दिया तो यह आदेश इस आधार पर वैध है कि नहीं कि देर न्यायालय ने किया इसलिए इसका नुकसान उस पक्ष को नहीं होना चाहिए जिसने अपना काम समय के भीतर कर दिया है।

मैं अपने साथी न्यायाधीशों के निर्णय से सहमत हूँ। इसके लिये हमारे तर्क निम्नलिखित प्रश्नोत्तर के रूप में हैं :—

प्रश्न—१—धारा १४५ के अभिप्राय और उसके क्षेत्र को देखने से क्या यह प्रतीत होता है कि दं० प्र० संहिता की धा० १४५ (४) का अभिप्राय स्पष्ट नहीं है?

मेरे विचार से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १४५ के अंतर्गत पारित आदेश शासन का आदेश है जिसके पीछे न्याय का समर्थन रहता है। सार्वजनिक शांति व्यवस्था के लिये मजिस्ट्रेट को देखना होता है कि झगड़ा होकर पहले की परिस्थिति में परिवर्तन न होने पाए। इस संबंध की जाँच भी सरसरी जाँच होती है। आई० एल० आर० ३० कलकत्ता १५५ में यही बात कही गई थी। इसलिए हमारा निष्कर्ष यह है कि इस उपबंध के अंतर्गत मजिस्ट्रेट पक्षों के बीच किसी प्रश्न का निर्णय नहीं करता वरन् उसका संबंध सार्वजनिक शांति से होता है। इसके पक्ष की स्थिति वाद (सूट) के वादी (प्लैंटिफ) की सी नहीं होती। इस उपबंध का अर्थ स्पष्ट है। इसमें स्पष्ट रूप से अवधि दी हुई है। अवधि (लिमिटेशन) का नियम यह होता है कि यह निश्चित तो की जाती है मनमाने ढंग पर पर इसका पालन किया जाता है कड़ाई से।

प्रश्न २—धारा १४५ (४) की भाषा क्या अस्पष्ट है जिससे न्यायालय को यह अधिकार हो जाता है कि समता (इक्युटी) के सिद्धांत द्वारा उसके शब्दों के स्वाभाविक अर्थ को न लगाकर उससे भिन्न अर्थ भी लगाए?

परिनियम की व्याख्या के संबंध में नियम यह होता है कि जब उसके शब्द स्पष्ट हों तो उसे ठीक उसी प्रकार लागू करना चाहिए। जब उसके शब्दों से दो अर्थ निकलते हों तब बात दूसरी होती है। यहाँ दो अर्थ नहीं निकल रहे हैं। इसकी भाषा स्पष्ट है इसलिए आग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार के आधार पर भिन्न अर्थ लगाने का कोई कारण नहीं है ।

प्रश्न ३—धारा १४५ (६) में पारित आदेश के अंतर्गत क्या साम्यिक (इक्युटेबुल) सिद्धांत लागू किया जा सकता है ?

एकमात्र सार्वजनिक शांति व्यवस्था के भंग होने की संभावना पर ही इसके अंतर्गत मजिस्ट्रेट का अधिक्षेत्र शुरु होता है । और भी परिस्थितियाँ हैं जब कि किसी पक्ष को धारण गलत ढंग पर छोड़ना पड़ता है किंतु उससे यदि शांति व्यवस्था भंग नहीं होती तो इस धारा में वह कार्यवाही नहीं कर सकता; कार्यवाही इसलिए नहीं की जा सकती कि उसको हानि पहुँचने पर भी शांति व्यवस्था भंग होने की संभावना नहीं रहती । वह पक्ष व्यवहार (सिविल) में जाकर उचित सहायता प्राप्त कर सकता है । इसीलिए इस कार्यवाही में मजिस्टेट को पहले पहल यही देखना होता है कि इस झगड़े से शांति व्यवस्था भंग होने की संभावना है कि नहीं । इन मामलों में समता (इक्युटी) का सिद्धांत लागू नहीं हो सकता । समता का सिद्धांत वहाँ लागू होता है जहाँ ऐसी हानि होने की संभावना रहती है कि उसकी पूर्ति नहीं की जा सकती या उससे भयंकर अन्याय हो जाने की आशंका रहती है। धारा १४५ के अंतर्गत की कार्यवाही द्वारा अधिक से अधिक वास्तविक अधिकारी का धारण उस संपत्ति पर से हटाया जा सकता है पर यह भी महत्वपूर्ण है धारण का इस प्रकार हटाया जाना थोड़े समय के लिये ही होता है। यह सच है कि किसी परिनियम के जब दो अर्थ होते हों तो वही अर्थ लगाना चाहिए जो अधिक साम्यिक हो किंतु यदि उसकी भाषा सर्वथा स्पष्ट है तो इस प्रकार की अर्थ लगाना मना है । जब कि अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता और उसका शाब्दिक अर्थ लगाने में भयंकर अन्याय होता हो केवल तभी समता (इक्युटी) का सिद्धांत लागू हो सकता है । इस धारा के शब्दों का यदि स्वाभाविक अर्थ लगाया जाता है तो ऐसा भयंकर अन्याय नहीं होता है जो किसी के मस्तिष्क में क्रांति की भावना जागृत करे। यदि किसी का धारण थोड़े समय के लिये हट भी जाता है तो इससे किसी के मस्तिष्क में क्रांति की भावना नहीं जागृत हो सकती। वह व्यवहार न्यायालय से सर्वदा ही सहायता प्राप्त कर सकता है और दूसरे इस आदेश द्वारा उसे ऐसी हानि नहीं होती जो पूरी नहीं की जा सकती । अतः हमारा निष्कर्ष है कि दं० प्र० संहिता की धा० १४५ (४) के अंतर्गत पारित आदेश में समता का सिद्धांत लागू नहीं होता ।

प्रश्न ४ और ५ पर एक साथ विचार करना है। ये प्रश्न इस प्रकार हैं :—

प्रश्न ४—क्या विधि का अर्थ यह होता है कि मजिस्ट्रेट जब व्यक्तिगत रूप से इस बात से संतुष्ट नहीं हो गया रहता कि शांति भंग की आशंका है तब भी उसे आरंभिक आदेश (प्रेलिमिनरी आर्डर) पारित कर देना चाहिए ?

प्रश्न ५—क्या किसी और समय विशेष पर यह कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट हो चुका है जब कि वास्तव में वह इस प्रकार संतुष्ट नहीं हो गया रहता और बराबर ऐसी सूचना इकट्ठा करने में लगा रहता है कि शांति भंग की आशंका है कि नहीं ?

मेरे विचार से इस मामले में मजिस्ट्रेट का अधिक्षेत्र केवल उस समय आरंभ होता है जब वह व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट हो जाता है कि सार्वजनिक शांति भंग की आशंका है। यदि मजिस्ट्रेट व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट नहीं होता है तो उसे धा० १४५ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र की सुनवाई करने का अधिकार ही नहीं है। यदि ऐसी बात न हो तो जब कभी किसी का धारण (पोजेशन) छूटेगा वह इन आपराधिक न्यायालयों में आने का प्रयत्न करेगा ताकि उसे शीघ्र सहायता मिल सके। इसलिए इसमें मजिस्ट्रेट को स्वतः संतुष्ट हो जाना पड़ता है कि शांति भंग की आशंका है कि नहीं। इसके लिये उसे उस पक्ष विशेष की बातों पर ही अवलंबित नहीं रहना है क्योंकि वह पक्ष तो कहेगा ही कि शांति भंग की आशंका है—उसे अन्य साधनों से इसका पता लगाना पड़ता है। शांति भंग की आशंका से संतुष्ट होने पर ही वह कार्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाही शुरू कर सकता है। यह बात नहीं है कि जिस पक्ष को धारण छोड़ना पड़ा है वह ज्यों ही परिवाद निवेशित करता है त्यों ही मजिस्ट्रेट को आरंभिक आदेश पारित कर देना चाहिए।

चंचूनरायन के उपर्युक्त मुकदमों में कहा गया था—"...'यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो गया हो।' तो विधान मंडल का विचार यह था कि प्रार्थनापत्र देने और आरंभिक आदेश पारित करने के बीच समय व्यतीत नहीं होना चाहिए; पहला तुरत दूसरे के बाद होना चाहिए।'

इसमें यह स्वीकार किया गया था कि मजिस्ट्रेट को संतुष्ट पहले होना चाहिए और आरंभिक आदेश उसके बाद। संतुष्ट होने और आरंभिक आदेश पारित करने के बीच समय नहीं बीतना चाहिए वरन् तुरत होना चाहिए। मेरे विचार से यदि आरंभिक आदेश पारित हो गया है तो यह दिखलाता है कि मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो गया था। संतुष्टि का प्रश्न मजिस्ट्रेट का व्यक्तिगत प्रश्न है। यदि वह केवल पक्ष आदि के कहने से ही संतुष्ट नहीं होता कि शांतिभंग की आशंका है और इसके लिये वह स्वतंत्र सूचना की खोज में है तो यह नहीं कहा जा सकता कि देर करके गलती किया।

इसमें संदेह नहीं कि दो महीने की अवधि जो नियत है वह पर्याप्त है। जो पक्ष धारण छोड़ता है वह तुरत न्यायालय में आता है इसलिए जाँच करने के लिये यह महीने की अवधि पर्याप्त है। किंतु इस बीच भी यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट नहीं होता कि शांति भंग की आशंका है और इसके लिये उसे पर्याप्त साधन नहीं मिलते कि वह संतुष्ट हो तो उसे बाध्य नहीं किया जा सकता कि आरंभिक आदेश पारित कर दे कारण कि किसी पक्ष का यह अंतर्भूत अधिकार नहीं है कि आपराधिक न्यायालय से सहायता पाने के लिये वह जोर दे। इसलिए हमारा निष्कर्ष है कि (नन प्रो टंक ऐंड एक्टस् क्यूरी नेमिनम ग्रैवा बिट) के सिद्धांत इसमें लागू नहीं हो सकते।

मैं ए० आई० आर० १९५५ ट्रावनकोर २६२ आयन पद्मनाभन् वि० पद्मनाभन् के निर्णय में व्यक्त किए हुए विचार से पूर्ण सहमत हूँ।

मैं प्रस्तावित आदेश से सहमत हूँ और मैं यह निर्देश स्वीकार करता हूँ।

न्यायालय द्वारा—इस प्रकार विद्वान् अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के निर्देश और अभिस्तावना को हम स्वीकार करते है। इस खेत का धारण गंगाबखश सिंह को दे दिया जाय।

निर्देश (रेफरेंस) स्वीकृत

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९ इलाहाबाद उच्च न्यायालय २८

न्यायमूर्ति धावन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख (सिविल मेसलेनियस रिट) सं० २७८७।१९५८

(३० सितंबर १९५८)

रामधनी लाल — प्रार्थी

वि०

बस्ती के कलक्टर तथा अन्य— उत्तरवादीगण

उ० प्र० मेडिकल नियमावली, परिच्छेद २३५—युवक की आयु निश्चित करने की कार्यवाही असंतोषजनक होती है और इसके दुष्प्रयोग की गुंजाइश रहती है इसलिए आवश्यकता यह है कि इसके लिये कोई युक्तिसंगत और वैज्ञानिक आधार होना चाहिए।

न्यायमूर्ति धावन—

प्रार्थी ने एस० डी० ओ० के यहाँ एक प्रार्थनापत्र दिया था कि लेखपाल के रजिस्टर में मेरी जन्म तिथि गलत लिख दी गई है इसलिए उसे ठीक कर दिया जाय। इस प्रार्थनापत्र को कलक्टर ने अस्वीकार कर दिया। अतः भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्गत इस लेख प्रार्थनापत्र में प्रार्थना है कि एस० डी० ओ० को आदेश दिया जाय कि जन्मतिथि के ठीक करने वाले उस प्रार्थनापत्र पर निर्णय दें और कलक्टर ने जिस आदेश द्वारा इस प्रार्थनापत्र को अस्वीकार कर दिया है वह आदेश अभिखंडित (क्वैश) कर दिया जाय। प्रार्थी के शपथपत्र के अनुसार वह बस्ती जिले में एक हलके का लेखपाल था। उसके कहने के अनुसार उसकी जन्म तिथि लेखपाल-रजिस्टर में २६-६-१८६८ लिखी गई है जो गलत है। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि प्रार्थी ने इसकी कोई सूचना नहीं दी कि यह गलती आई कैसे ? उसका कहना है कि उसकी सही जन्म तिथि २०-१०-१६०२ है। दूसरे शब्दों में आयु रजिस्टर में जो आयु लिखी हुई है उसका कहना है कि हमारी आयु उससे ४ वर्ष कम है। उसने रजिस्टर की शुद्धि के लिये प्रार्थनापत्र दिया। सदर सुपरवाइजर कानूनगो ने अपने प्रतिवेदन में इसे अभिस्तावित (रिकमेंड) किया। इसके बाद यह प्रार्थनापात्र भू–अभिलेख अधिकारी के समक्ष रखा गया और उन्होंने प्रार्थी को डाक्टरी परीक्षा के लिये सिविलसर्जन के यहाँ भेज दिया। सिविलसर्जन ने प्रतिवेदन दिया कि प्रार्थी के कहने के अनुसार उसकी आयु ५६ वर्ष की है और देखने से वह ५६ वर्ष का प्रतीत होता है। इस प्रतिवेदन के प्राप्त करने के बाद वह प्रार्थनापत्र एस० डी० ओ० के यहाँ भेजा गया। एस० डी० ओ० ने उस पर अपना कोई आदेश नहीं दिया किंतु अभिस्तावना (रेकमेंडेशन) के साथ कलक्टर के यहाँ भेज दिया। कलक्टर ने कहा कि प्रार्थी की जन्म तिथि बदलने का कोई युक्ति संगत कारण नहीं है और उन्होंने प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिया।

इस आदेश से असंतुष्ट होने पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत प्रार्थी सहायता के लिये इस न्यायालय में आया है।

जब प्रार्थनापत्र सुनवाई के लिये स्वीकार कर लिया गया तो मैंने बस्ती के सिविलसर्जन को आदेश दिया कि उन्होंने प्रार्थी को जो प्रमाणपत्र दिया है कि देखने से उसकी आयु ५६ वर्ष की प्रतीत होती है उसके बारे में वे शपथपत्र दें कि वे इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँचे। मैंने सिविलसर्जन को आदेश दिया कि दूसरी सुनवाई के दिन वे न्यायालय में उपस्थित हों और न्यायालय इसके बारे में जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर दें।

सिविलसर्जन का शपथपत्र निवेशित किया गया और वे स्वतः न्यायालय में उपस्थित हुए। मैंने सरकारी वकील से कहा कि वे सिविलसर्जन से पूछकर बतलाएँ कि वे जो उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुँचे वह उनका अनुमान था या और कुछ। सिविलसर्जन ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि वह अनुमान के सिवा कुछ नहीं था। मेरे विचार से सिविलसर्जन का यह बयान सही है। चूँकि सिविलसर्जन ने बहुत स्पष्ट उत्तर दे दिया है इसलिए इसके बारे में उनसे कोई और प्रश्न पूछना मैं ठीक नहीं समझता।

मेडिकल नियमावली नि० १७६ उपवाक्य ८ में मेडिकल प्रमाणपत्र देने का नियम है। नि० १७७ के देखने से पता चलता है कि जब कभी आयु निश्चित करने का प्रश्न होता है तो सिविलसर्जन या सरकारी डाक्टर से मेडिकल प्रमाणपत्र माँगने का एक सामान्य कार्यक्रम हो गया है। निर्धारित प्रपत्र देखने से पता चलता है कि उस व्यक्ति के बयान और देखने से वह व्यक्ति जैसा प्रतीत होता है उसके आधार पर अपने विचार के अतिरिक्त डाक्टर को अपना निर्णय देने के लिये जगह नहीं के बराबर है।

अतः यह स्पष्ट है कि प्रार्थी जब सिविलसर्जन के यहाँ परीक्षा के लिये भेजा गया तो डाक्टर ने वही काम किया जो सामान्य क्रम में किया जाता है। अपने शपथपत्र में डाक्टर ने स्वीकार किया है कि युवक की आयु निश्चित करने की कोई वैज्ञानिक सामग्री नहीं है और इसलिए उस व्यक्ति की सामान्य आकृति से डाक्टर को अपना निष्कर्ष निकालना पड़ता है। उ० प्र० मेडिकल नियमावली के परिच्छेद २३५ में है कि युवावस्था प्राप्त होने के बाद आयु निर्धारित करने की कोई निश्चित सामग्री नहीं मिलती इसलिए आयु का निश्चित करना एक अनुमान ही होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पूर्णरूपेण संतुष्ट हूँ कि डाक्टर क्लिफर्ड ने प्रार्थी को जो प्रमाणपत्र दिया वह नियमावली के सामान्य क्रम में था इसलिए इसके बारे में उनकी कोई गलती नहीं है। किंतु बाध्य होकर मुझे कहना पड़ता है कि युवावस्था पर आयु निर्धारण की समस्त प्रक्रिया (प्रोसीजर) असंतोषजनक है और इसका बहुत बड़ा दुरुपयोग हो सकता है। यह विचित्र बात है कि एक ओर तो मेडिकल नियमावली के परिच्छेद २३५ में स्पष्ट लिखा हुआ है कि उपर्युक्त अवस्था में आयु निश्चित करना केवल अनुमान है और दूसरी ओर स्थिति यह है कि जब कभी ऐसे व्यक्ति की आयु झगड़े में पड़ती है तो सरकार को बराबर इस अनुमानित आयु को मानना पड़ता है। मैं सोचता हूँ कि अच्छा यह होता कि उस व्यक्ति विशेष की आयु निश्चित करने का भार अपने ऊपर न लेकर सरकार उस व्यक्ति पर ही छोड़ देती कि वह प्रमाण देकर सरकार को संतुष्ट करे कि वह अपनी आयु जितनी कहता है वह ठीक है। मेरा सुझाव है कि आयु निश्चित करने की समस्त प्रक्रिया को और युक्तिसंगत और वैज्ञानिक आधार पर अवलंबित होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो इसमें जो कमी रह जाती है उसके कारण नित्यप्रति ऐसे प्रार्थनापत्र आते रहेंगे।

प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि एस० डी० ओ० को स्वयं उस प्रार्थनापत्र का निर्णय करना चाहिए था किंतु उन्होंने यह बात मान ली कि एस० डी० ओ० उस प्रार्थनापत्र पर निर्णय देने के लिये बाध्य नहीं था और वह इसे कलक्टर के यहाँ भेज सकता था। उन्होंने यह भी मान लिया कि कलक्टर को निर्णय का अधिकार था। इसलिए इस कथन में बल नहीं है कि एस० डी० ओ० को स्वतः इस प्रश्न पर निर्णय करना चाहिए था। प्रार्थी की ओर से यह भी कहा गया कि कलक्टर ने प्रार्थी के उन साक्ष्यों पर विचार नहीं किया जो उसने अपने सही आयु के बारे में दिया था। इन साक्ष्यों में उसकी जन्मकुंडली थी और डाक्टर का प्रतिवेदन था।

जन्मकुंडली का महत्व इसलिए समाप्त हो जाता है कि प्रार्थी ने इसका कोई कारण नहीं बतलाया कि उसने आरंभ में अपनी जन्मतिथि २६-६-१८९८ क्यों दी थी। प्रार्थी ने यह मान लिया है कि लेखपाल रजिस्टर के विषय में नियम यह है कि उसमें वही आयु लिखी जाती है जो प्रार्थी बतलाए। प्रार्थी का यह काम था कि न्यायालय को बतलाए कि उसकी जन्मतिथि २६-६-१८९८ क्यों लिखी गई। प्रार्थी यदि इसे बतलाता तो न्यायालय इस समय दिए गए साक्ष्यों से उसकी तुलना करता कि कौन सही है। किंतु प्रार्थी के शपथपत्र में इसके बारे में कुछ नहीं है कि उसकी जन्मतिथि २६-६-१८९८ कैसे लिखी गई।

डाक्टर क्लिफोर्ड का प्रतिवेदन अनुमान पर आधारित था इसलिए कलक्टर के सामने कोई ऐसा महत्वपूर्ण साक्ष्य नहीं था जिस पर वे विचार करते। कलक्टर को जन्मकुंडली के मूल्य पर विचार नहीं करना था वरन् उन्हें इस पर विचार करना था कि पहलेवाली जन्मतिथि क्या गलत लिखी गई है? इस प्रश्न पर निर्णय देने के लिये प्रार्थी ने कलक्टर के सामने कोई सामग्री उपस्थित नहीं किया। यह बात नहीं है कि कलक्टर ने साक्ष्य पर विचार नहीं किया। कलक्टर का आदेश स्पष्टतः एस० डी० ओ० के प्रतिवेदन पर आधारित है। कलक्टर का आदेश है तो छोटा सा किंतु इससे यह प्रकट होता है कि यह एस० डी० ओ० के प्रतिवेदन के पढ़ने के बाद पारित किया गया।

यह उन मामलों में से है जो बराबर उठते रहते हैं और जिनके द्वारा सरकारी कर्मचारी को विधि और समता (इक्युटी) के अनुसार जितने समय तक सेवा करने का अधिकार है उससे अधिक अवधि तक सेवा करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रार्थनापत्र में बल नहीं है इसलिए अस्वीकार किया जाता है।

इस आदेश की एक प्रतिलिपि उ० प्र० सरकार के मुख्य सचिव के पास और एक प्रतिलिपि उ० प्र० मेडिकल विभाग के सचिव के पास अवलोकनार्थ भेज दी जाय।

प्रार्थनापत्र अस्वीकृत

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९ इलाहाबाद
उच्च न्यायालय ३१

(लखनऊ न्यायासन)

मुख्य न्यायाधिपति मूथम

व्यवहार प्रकीर्णक (सिविल मिसलेनियस) प्रार्थना-पत्र सं० १९।१९५७—२७ अक्टूबर १९५८

शिवसहाय शुक्ला प्रार्थी

वि०

जिला बोर्ड बाराबंकी विपक्षी

उ० प्र० जिला बोर्ड अधिनियम, धा० ११४—'व्यापार करना' (कैरिंग आन बिजनेस) सरकार या स्थानीय संस्था की नौकरी में लागू नहीं होता—निवास स्थान की भी एक शर्त है इसलिए सरकारी नौकर यदि उस क्षेत्र के भीतर रहता है तो वह दायित्व से नहीं बच सकता।

मुख्य न्यायाधिपति मूथम—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र दिया गया है। इसमें प्रश्न यह है कि सरकारी कर्मचारी द्वारा पाया गया वेतन जिलाबोर्ड अधिनियम के अंतर्गत परिस्थिति और संपत्ति कर के संबंध में कर निर्धारण के लिये उसकी पूरी कर लगाने योग्य आय में जोड़ा जा सकता है कि नहीं।

प्रार्थी तहसीलदार है जो मार्च १९५५ से बाराबंकी में है। बाराबंकी के जिलाबोर्ड ने प्रार्थी पर परिस्थिति और संपत्ति कर (सर्कमस्टांसेज ऐंड प्रापर्टी टैक्स) इसलिए लगाया कि वह जिले के भीतर रहता है।

इस संबंध में उस पर एक नोटिस भी तामील कर दी गई। प्रार्थी का कहना है कि कर देने के दायित्व में हमारा वेतन नहीं आ सकता। इस प्रार्थनापत्र में उसने कहा है कि उस पर जो माँग की नोटिस तामील की गई है उसे अभिखंडित कर दिया जाय।

जिला बोर्ड अधिनियम के धा० ११४ के संबद्ध अंश इस प्रकार हैं :—

"अ—देहात में रहनेवाले या व्यापार करनेवाले किसी भी व्यक्ति पर कर लगाया जा सकता है बशर्ते ऐसे व्यक्ति ने कर निर्धारण वर्ष में कुल मिलाकर कम से कम ६ महीने तक या तो निवास किया है या व्यापार किया है;...... ।"

व्याख्या.....................

"व्यापार करना" ये शब्द सरकार या स्थानीय संस्था की नौकरी में लागू नहीं होते।"

अंतिम वाक्य उ० प्र० अधिनियम १६।१९३४ द्वारा जोड़ा गया। प्रार्थी का कहना है कि इस वाक्य का अभिप्राय यह होता है कि वेतन को छोड़ देना है।

अब इसमें झगड़ा नहीं है कि यदि प्रार्थी को वेतन के अतिरिक्त दूसरे साधनों से आय रहती तो कर देने के दायित्व को निश्चित करते समय इस अतिरिक्त आय का लेना उचित था और इसमें संदेह नहीं कि यदि धारा में अंतिम वाक्य न होता तो कर देनेवाली पूरी आय पर यह कर देने का दायी प्रार्थी इस आधार पर होता कि वह देहाती क्षेत्र में रह रहा था। इसलिए प्रश्न यह है कि "व्यापार करना" ये शब्द सरकार या स्थानीय संस्था की नौकरी में लागू नहीं होते" का वही अर्थ होता है जो प्रार्थी कह रहा है। बहस की गई है जब तक इसका अर्थ इस प्रकार नहीं किया जाता जिससे कि वेतन कर से बच जाय तब तक अंतिम वाक्य का कुछ अर्थ ही नहीं होगा। मैं सोचता हूँ कि ऐसी बात नहीं है। इस कर के देने का दायित्व या तो देहात में निवास करने पर आधारित है या देहात में व्यापार करने पर और मेरे विचार से इस वाक्य का अर्थ एकमात्र यही हो सकता है कि सरकारी या स्थानीय संस्था के कर्मचारी पर इस आधार पर कर नहीं लगाया जा सकता कि वह व्यापार करता है। मेरे विचार से कर देने का निवास करनेवाला जो दूसरा आधार है उससे प्रार्थी नहीं बच सकता।

धारा में इस वाक्य के जोड़ने का प्रयोजन वास्तव में क्या था इसे समझना कठिन प्रतीत हो रहा है। गौरीशंकर वर्मा वि० नगरपालिका सीतापुर ए० आई० आर० १९३३ अवध, ६१ में ऐसा ही प्रश्न विचाराधीन था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ० प्र० नगरपालिका अधिनियम १९१६ में इस प्रकार का कर 'निवासी' (इनहैबिटेंट) पर लगाया जा सकता था। 'निवासी' की परिभाषा दी गई थी 'कोई व्यक्ति जो साधारणतया निवास करता हो, व्यापार करता हो या उसके अंतर्गत कोई अचल संपत्ति हो जिसको या तो वह धारण करता हो या जिसका वह स्वामी हो।' श्री गौरीशंकर वर्मा न्यायाधीश थे जिनका न्यायालय सीतापुर में था किंतु यह मान्य है कि वे सीतापुर नगरपालिका की सीमा के भीतर न तो निवास करते थे और न उनकी कोई संपत्ति उस सीमा के भीतर थी। प्रश्न था कि क्या यह कहा जा सकता है कि वे व्यापार करते थे ? पूर्ण न्यायासन का निर्णय हुआ कि 'व्यापार करना' में व्यक्तिगत या अर्द्ध व्यक्तिगत प्रकार का काम आता है और इसमें सरकारी कर्मचारी का काम नहीं शामिल है। इसलिए इसमें निर्णय हुआ था कि प्रार्थी नगरपालिका की सीमा के भीतर 'व्यापार' नहीं करता अतः उस पर परिस्थिति और संपत्ति कर नहीं लगाया जा सकता। सेठ विमल प्रसाद वि० जिला बोर्ड सहारनपुर १९५४ ए० एल० जे० रिपोर्टर ५८२ में इस न्यायालय ने जिलाबोर्ड अधिनियम की धारा ११४ में प्रयुक्त शब्द 'व्यापार करना' (कैरिंग आन बिजनेस) का अर्थ लगाया था और इस प्रकार अर्थ करने के बाद निर्णय दिया कि इसमें लाभ के लिये कोई काम करना होता है न कि वेतन पर किसी दूसरे का काम करना। इस प्रकार उसमें निर्णय हुआ था कि प्रार्थीगण पर जो चीनी मिल के कर्मचारी हैं ऐसा कर नहीं लगाया जा सकता। मुख्य न्यायाधिपति मलिक ने इस अंतिम वाक्य के बारे में कहा था कि:—

'१९३४ के पहले कोई निर्णय ऐसा नहीं हुआ था जिसमें 'व्यापार करना' इसका अर्थ यह लगाया गया हो कि इसमें सरकारी कर्मचारी का वेतन भी शामिल है तो व्याख्या के रूप में इन शब्दों को जोड़ने की आवश्यकता क्यों पड़ी यह स्पष्ट नहीं है'

इसके अतिरिक्त गौरीशंकर वर्मा वाले उपर्युक्त मुकदमे में यह स्पष्ट निर्णय हुआ था कि इन शब्दों में सरकारी कर्मचारियों की सेवा नहीं आती। ये शब्द क्यों जोड़े गए इसका संभावित कारण न्यायालय ने दिया था कि एबंडंटी काटला' के सिद्धांत पर जोड़े गए। मेरे विचार से इस वाक्य द्वारा—'व्यापार करना' ये शब्द सरकारी या स्थानीय कर्मचारियों की सेवा में लागू नहीं होते' विधिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसका परिणाम यह होता है कि चूँकि प्रार्थी देहाती क्षेत्र में रहता है इसलिए वह परिस्थिति और संपत्ति कर के देने के लिये दायी है और यह कि कर लगानेवाली उसकी पूरी आय को निश्चित करते समय सरकारी कर्मचारी के पद से पाया जानेवाला वेतन शामिल कर लेना चाहिए। इसलिए यह प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ३२

न्यायमूर्ति जे० के० टंडन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख (सिविल मेसलेनियस रिट)
सं० ३४७६।१९५६–दिसंबर १, १९५८

मुसम्मात सघीर कुबरा — प्रार्थी
वि०
उ० प्र० राज्य तथा अन्य — विपक्षीगण

भारतीय संविधान, अनुच्छेद २२६—प्रार्थी यदि सत्य को छिपाकर गलत बयान देता है तो वह अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत उच्च न्यायालय की सहायता पाने का अधिकारी नहीं है।

न्यायमूर्ति टंडन—

प्रार्थी श्रीमती सघीर कुबरा ने परमादेश (मैंडमस) लेख जारी करने की प्रार्थना किया है कि उत्तर प्रदेश राज्य, जिलाधीश बरेली, और बरेली के पुलिस अधीक्षक को मना कर दिया जाय कि वे प्रार्थी को पकड़कर पाकिस्तान न भेजे। परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका वर्ष ३, (१९८०) ५८-५६ इला० राजस्व६

(लखनऊ न्यायासन)

न्यायमूर्ति आर० सिंह (उच्च न्यायालय) व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० २१७।१९५६

१५ अक्टूबर, १९५७

बाबूराम — प्रार्थी

वि०

परागी तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम, १९४७ धा० १२ डी०, २ (ई०)—गाँव सभा के प्रधान के चुनाव के संबंध में चुनाव याचिका (एलेक्शन पेटिशन) —एस० डी० ओ० इसे कलक्टर के आदेश पर अतिरिक्त एस० डी० ओ० के यहाँ नहीं भेज सकता—उ० प्र० संशोधन अधिनियम १६।१९५७, धा० २ का प्रभाव।

ब—भारतीय संविधान अनुच्छेद २२६ का क्षेत्र-अभिवचन (सी) यदि ऐसा है कि उससे अधिक्षेत्र के मूल पर प्रभाव पड़ता है तो लेख प्रार्थनापत्र (रिट पेटिशन) में उसे उठाया जा सकता है।

न्यायमूर्ति सिंह—

प्रार्थी ने गाँव सभा के प्रधान के पद के लिये विपक्षी के निर्वाचित घोषित होने पर उसके विरुद्ध चुनाव याचिका निवेशित किया था। यह चुनाव याचिका उत्सर्जित कर दी गई। इस उत्सर्जन के आदेश का अभिखंडित करने के लिये प्रार्थी ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६–२२७ के अंतर्गत यह उत्प्रेषण लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) प्रार्थनापत्र निवेशित किया है।

यह चुनाव याचिका पहले क्षेत्रीय एस० डी० ओ० के यहाँ निवेशित की गई थी और उन्होंने कलक्टर के आदेश के अनुसार इसे एक दूसरे अधिकारी के यहाँ भेज दिया जिसका पद अतिरिक्त एस० डी० ओ० का था। अतिरिक्त एस० डी० ओ० को इसके निर्णय का अधिकार नहीं है यह १९५७ ए० एल० जे० ३७६ पूर्ण न्यायासन में निश्चित हो चुका है।

विपक्षियों की ओर से दूसरी बात यह कही गई है कि अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) के प्रश्न को नीचे के न्यायालय में नहीं उठाया गया था इसलिए इस लेख प्रार्थनापत्र में उसे उठाया नहीं जा सकता। यों तो लेख (रिट) का जारी करना विवेक पर निर्भर करता है और इसलिए यदि प्रार्थी ने पहले इसपर आपत्ति नहीं उठाई है तो लेख प्रार्थनापत्र में उसकी यह आपत्ति नहीं सुनी जानी चाहिए किंतु बाद में इधर कुछ निर्णय ऐसे हुए हैं जिनके अनुसार न्यायालय को अधिक्षेत्र के प्रश्न पर सुनवाई करने में पूर्ण रुकावट नहीं है। १९५५ ए० एल० जे० ६ और ए० आई० आर० १९५६ बंबई ५३० के निर्णयों के अनुसार यदि उठाई गई आपत्ति अधिक्षेत्र के मूल पर प्रभाव डालनेवाली है तो नीचे के न्यायालय में न उठाई जाने पर भी ऐसे लेख प्रार्थनापत्र में उठाई जा सकती है। यहाँ प्रथम श्रेणी के सहायक कलक्टर का जो अतिरिक्त एस० डी० ओ० के नाम से पुकारा जाता है विधि के अंतर्गत कोई अस्तित्व नहीं है इसलिए चुनाव-याचिका की सुनवाई का उसे अधिक्षेत्र नहीं था। इस प्रकार यह अभिवचन (सी) इस लेख प्रार्थनापत्र में लिया जा सकता है।

इस लेख प्रार्थनापत्र तथा अन्य लेख प्रार्थनापत्रों के निवेशित करने के बाद राज्य के विधानमंडल ने उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम का संशोधन अधिनियम १६।१९५७ द्वारा कर दिया। विपक्षी के विद्वान् वकील ने बहस की है कि संशोधन के बाद अतिरिक्त एस० डी० ओ० द्वारा पारित आदेश वैध हो गया क्योंकि उक्त संशोधन अतीत प्रभावी (रिट्रास्पेक्टिव) है। संशोधन में दिया गया कि एस० डी० ओ० में वह अतिरिक्त एस० डी० ओ० भी संमिलित है जो उपयुक्त प्राधिकरण द्वारा नामोद्दिष्ट या नियुक्त है।

यह मान्य है कि इस संशोधन को अतीत प्रभावी बनाया गया और ऐसा करना ठीक था फिर भी प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि इस संशोधन द्वारा भी विपक्षी की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। उनका कहना है कि ऐसे अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति 'उपयुक्त प्राधिकरण' द्वारा होनी चाहिए किंतु 'उपयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राधिकरण' कौन सा होगा इसकी चर्चा न तो संशोधन अधिनियम में है और न तो आरंभिक अधिनियम में ही है। विपक्षी की ओर से कोई प्रमाण ऐसा नहीं दिया गया जिसमें 'उपयुक्त प्राधिकरण' का नाम दिया गया हो इसलिए 'उपयुक्त प्राधिकरण' (अप्राप्रिएट अथारिटी) के अर्थ के लिये हमें शब्दकोश का सहारा लेना पड़ेगा। विपक्षी की ओर से एक बात यह अवश्य कही गई है कि जैसे भूराजस्व अधिनियम (लैंडरेवेन्यू ऐक्ट) के अंतर्गत राज्य सरकार को किसी प्रथम श्रेणी के सहायक कलक्टर को जिले के किसी विभाग का अधिकारी बनाने का अधिकार है और इसी अधिकारी को साधारणतः एस० डी० ओ० कहते हैं उसी प्रकार राज्य सरकार को या अधिकार देने पर कलक्टर को अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति का अधिकार है। यह तर्क मन में नहीं बैठता। जहाँ कहीं भी अतिरिक्त अधिकारियों की नियुक्ति की बात आई है वहाँ उसके लिये नियम बना दिया गया है जैसे अवध न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये स्पष्ट उपबंध है और इसी प्रकार बंगाल आसाम और आगरा व्यवहार न्यायालय अधिनियमों के अंतर्गत अतिरिक्त जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में उपबंध है। दंड प्रक्रिया संहिता में भी अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश और ए० डी० एम० की नियुक्ति के संबंध में दिया हुआ है। उ० प्र० भूराजस्व अधिनियम के अंतर्गत अतिरिक्त आयुक्त और अतिरिक्त कलक्टर की नियुक्ति के संबंध में दिया हुआ है। इन सबसे यह प्रतीत होता है कि अतिरिक्त (अडिशनल) अधिकारियों की नियुक्ति के लिये उपबंध स्पष्ट होना चाहिए और इसीलिए यह नहीं कहा जा सकता कि जिस प्राधिकरण द्वारा एस० डी० ओ० की नियुक्ति होती है उसी के द्वारा अडिशनल एस० डी० ओ० की भी नियुक्ति हो सकती है। अडिशनल एस० डी० ओ० की नियुक्ति या नामोद्दीष्ट (डिजिग्नेट) करने के संबंध में किसी उपबंध के न रहने के कारण तथा ऐसी नियुक्ति के लिये "उपयुक्त अधिकारी" कौन है इसकी ओर संकेत न रहने से उक्त संशोधन द्वारा अडिशनल एस० डी० ओ० की नियुक्ति वैध नहीं बनाई जा सकती। वर्तमान लेख प्रार्थनापत्र का जहाँ तक संबंध है इस पर संशोधन अधिनियम का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिले के जिस उपविभाग में यह गाँव सभा पड़ती है उसके एस० डी० ओ० को ही एकमात्र इस चुनाव याचिका की सुनवाई का अधिकार है और उस एस० डी० ओ० को इसे किसी अन्य अधिकारी के पास जिसे अडिशनल एस० डी० ओ० कहा जाता है भेजने का अधिकार नहीं है जब तक कि उक्त अडिशनल एस० डी० ओ० किसी समर्थ प्राधिकरण द्वारा नामोद्दीष्ट न हो। विपक्षी सं० २ का २८ जून प्रश्न १९५६ का चुनाव याचिका का उत्सर्जन वाला आदेश अभिखंडित किया जाता है और चुनाव याचिका विचाराधीन समझी जायगी। मुकदमें की अवस्था विशेष के कारण परिव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

विधि पत्रिका वर्ष १(१९८०)५८-५९ इला०(राजस्व)१०

एम० एम० सिद्दिकी, न्यायिक सदस्य (राजस्व मंडल)

राजस्व मंडल के दिनांक २३ मई १९५१ के आदेश पर पुनर्विचार प्रार्थनापत्र जो ज० वि० अधिनियम की धारा २३२ के अंतर्गत था

११ जुलाई १९५८।

रेवा, मुसम्मात तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

केदार सिंह तथा अन्य — उत्तरवादीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार नियमावली १९५२ नि० ४, ५—"सुनवाई के लिये विचाराधीन" (पेंडिंग फार हीयरिंग) का तात्पर्य—पुनर्विचार प्रार्थनापत्र निहित होने की तिथि को स्वीकार नहीं किया गया नि० ४ के अंतर्गत स्थगित होने या नि० ५ के अंतर्गत उपशमन (अबेटमेंट) का प्रश्न नहीं उठता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब- उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, (१६५१), धा० २—पुनर्विचार प्रार्थनापत्र–अधिवासी अधिकार का प्रश्न ऐसे प्रार्थनापत्र में नहीं उठाया जा सकता।

न्यायिक सदस्य एम० एस० सिद्दिकी—

ये तीन प्रार्थनापत्र राजस्व मंडल के २३ मई १६५१ के आदेश पर पुनर्विचार करने के लिये दिए गए हैं जो अपील सं० ४८४, ४८५ और ४८६।१६५०-५१ में पारित किया गया था।

अकबरी बेगम वाद विषय की भूमि की स्वामिनी थी। उसने अपने स्वामित्व अधिकार को भगीरथ को बेच दिया। केदार सिंह तथा अन्य (जो इसमें उत्तरवादी हैं) लोगों ने अकबरी बेगम और भगीरथ के विरुद्ध अग्रक्रय वाद (प्रीएम्प्शन सूट) निवेशित किया और मुंसिफ के न्यायालय से डिग्री प्राप्त किया। इसके विरुद्ध अपील की गई किंतु अपील भी उत्सर्जित हो गई। अपील जब विचाराधीन थी उसी बीच भगीरथ ने इस संपत्ति का पट्टा वर्तमान प्रार्थियों को कर दिया। अग्रक्रय वाद की अपील के उत्सर्जित होने पर उत्तरवादियों ने अग्रक्रय-संपत्ति का दखल ले लिया और प्रार्थियों को अनधि-प्रवेशी (ट्रेसपासर्स) कहकर उनके अधिनिष्कासन (एजेक्टमेंट) का वाद निवेशित किया। प्रार्थियों ने वाद के विरोध में कहा कि हमने भगीरथ से अपने कृषक के अधिकार को प्राप्त किया है और यह सद्भावना (बोना फाइडी) था। अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने तो यह वाद उत्सर्जित कर दिया पर अपील में अति-रिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया कि प्राथियों के पक्ष में भूधारण अधिकार का दिया जाना वास्तविक नहीं है और यही निष्कर्ष राजस्व मंडल ने अपने आदेश दिनांक २३ मई १६५१ में मान लिया। इस आदेश के पुनर्विचार के लिये यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

राजस्वमंडल के निष्कर्ष को गलत ठहराने के लिये कोई प्रमाण नहीं दिया गया।

इन प्रार्थनापत्रों में दो अन्य आधारों पर जोर दिया गया है जिनमें से एक यह है कि जमींदारी विनाश नियमावली के नियम ५ और ४ के अनुसार कार्यवाही का उपशमन (अबेटमेंट) हो जाना चाहिए था। इसमें संदेह नहीं कि पुनर्विचार प्रार्थनापत्र निहित तिथि को विचाराधीन था किंतु उत्तरवादी के विद्वान् वकील ने हमारा ध्यान नि० ४ (१) पर दिलाया जो इन शब्दों में है 'समस्त वाद और कार्यवाहियाँ········जो निहित होने की तिथि को किसी न्यायालय में सुनवाई के लिये थीं"। उनका कहना है कि उस तिथि को प्रार्थनापत्र स्वीकार (ऐडमिट) नहीं किया गया था इसलिए किसी न्यायालय में कुछ सुनवाई के लिये नहीं था और इसलिए नि० ४ के अंतर्गत यह न तो स्थगित हो सकता था और न नि० ५ के अंतर्गत उपशमित (अबेटेड)। मैं इससे सहमत हूँ। जबतक कि अपील या प्रार्थनापत्र स्वीकृत (ऐडमिट) न हो जाय तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सुनवाई के लिये है। इसलिए कार्यवाही के उपशमित होने का कोई प्रश्न नहीं है।

प्रार्थियों का दूसरा आधार है कि हमें अधिवासी अधिकार प्राप्त हो गया है। इस संबंध में ज० वि० अधि-नियम की २३ के अंतर्गत के मामले में पारित आदेश से यह स्पष्ट है कि ये अधिवासी नहीं हैं। यदि वे हों भी तो इस पुनर्विचार प्रार्थनापत्र में यह प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

उत्तरवादियों की ओर से एक आरंभिक आपत्ति यह उठाई गई थी कि एक उत्तरवादी के मरने पर अवधि के भीतर उसके उत्तराधिकारी अभिलेख (रिकार्ड) पर नहीं लाए गए इसलिए प्रार्थनापत्र संधार्य (मेनटेनेबुल) नहीं हैं। प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि उपशमन (अबेटमेंट) नियम पुनर्विचार (रेव्यू) प्रार्थनापत्र में लागू नहीं होता। चूँकि मैंने तत्व पर निर्णय दे दिया है इसलिए अब इस आपत्ति पर विचार करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

इस प्रकार प्रार्थनापत्रों में बल नहीं है और वे परिव्यय (कास्ट्स) के साथ उत्सर्जित किए जाते हैं।

—पुनर्विचार (रेव्यू) प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका वर्ष ३, (१९८०) ५८-५९
इला० (राजस्व) १२

न्यायमूर्ति गुर्तू (उच्च न्यायालय)

बुलंदशहर के जिला न्यायाधीश के आदेश दिनांक ३१ अगस्त १९५० के विरुद्ध एस० ए० सं० १९४९। १९५० ।

१ नवंबर, १९५७

चौधरी पृथी सिंह तथा अन्य — वादी अपीलकर्तागण
वि०
चौधरी गुरुदयाल तथा अन्य — प्रतिवादी-उत्तरवादीगण
जामा कुँवर, मुसम्मात तथा अन्य — वादी उत्तरवादीगण

सहभागी (कोशेरयर्स)—यदि संयुक्त भूमि से संबंध पूर्णरूपेण टूट गया है तो इस स्थिति में संयुक्त धारण करनेवाले का अधिकार यदि किसी बड़े महाल में सहभागीदार लोग बंजर भूमि के धारण में अकेले हों और अकेले खेती करते हों तो उस स्थिति में जब कि संयुक्त भूमि से पूर्णरूपेण संबंध विच्छेद हो जाता है इस अधिकार को मान्यता नहीं देनी चाहिए ।

न्यायमूर्ति गुर्तू—

घोषणा (डिक्लेरेशन) के लिये यह वाद निवेशित किया गया था कि वादी इन खेतों के संयुक्त स्वामी हैं और प्रतिवादीगण के साथ वादीगण को इस पर धारण (पोजेशन) दिला दिया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन खेतों के संबंध में यह मुकदमा है वह पहले बाग था और इसके एक भाग पर के पेड़ १३३३ फ० में काट दिए गए। इस खाली भूमि पर प्रतिवादियों ने अकेले खेती करना आरंभ किया। इसके बाद शेष भाग पर के पेड़ भी काट डाले गए और १३३३ फ० में प्रतिवादियों ने इस भाग पर भी अकेले खेती करना आरंभ किया।

वादीगण का उन खेतों से जब पूर्णरूपेण संबंध विच्छेद हो गया तो उन्होंने यह वाद निवेशित किया। प्रतिवादियों का कहना है कि वादियों का संयुक्त धारण का अधिकार नहीं है वरन् वे केवल बँटवारा कर सकते हैं।

अन्वीक्षा न्यायालय ने केवल इतना ही घोषित किया कि वादीगण प्रतिवादियों के साथ इन खेतों के सह भागीदार है—और कुछ नहीं।

नीचे के न्यायालय द्वारा अपील उत्सर्जित कर दी गई।

यह अपील वादियों द्वारा निवेशित की गई है। इसमें कहा गया है कि चूँकि यह घोषणा हो चुकी है कि वादीगण इन खेतों के संयुक्त कृषक हैं इसलिए हमें संयुक्त धारण का अधिकार है।

इस न्यायालय की रुलिंग्स में यह निर्णय हो चुका है यदि आपस में व्यवस्था करके प्रतिवादीगण अकेले धारण में हैं तो वादी को व्यवस्था (अरेंजमेंट) भंग करने का अधिकार नहीं है और वादी यदि नहीं चाहता कि व्यवस्था चालू रहे तो उसे बँटवारा करना पड़ेगा। इस मामले में चूँकि प्रतिवादी गण १३३३ फ० से ही धारण में हैं इसलिए इससे यह ध्वनित होता है कि कोई व्यवस्था हुई थी जिसके अनुसार प्रतिवादीगण अकेले उस भाग के धारण में थे। शेष भाग का जहाँ तक संबंध है उसके बारे में कोई व्यवस्था नहीं प्रतीत होती।

ऐसी परिस्थिति में बँटवारा ही एकमात्र उपाय है। यह १९४९ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) १७१ में निर्णय हुआ था किंतु मेरा निर्णय यह है कि यह अधिकार उस समय नहीं देना चाहिए जब कि इस अधिकार द्वारा समस्त संयुक्त भूमि पर से वादी का संबंध विच्छेद पूर्णरूपेण हो जाता हो।

इस मामले में जिस भाग पर प्रतिवादियों का धारण बाद में हुआ मेरे विचार से उस भाग पर वादियों और प्रतिवादियों का संयुक्त धारण होना चाहिए। समता के विचार से ही यह अच्छा नहीं होगा वरन् पक्षों के अधिकार से भी यह मेल खाता है। भूमि के संयुक्त धारण करनेवालों का अधिकार जो इस न्यायालय द्वारा सीमित किया गया है उसका विस्तार इस सीमा तक नहीं किया जा सकता कि संयुक्त धारण करनेवालों में से किसी एक संयुक्त खाते के किसी भाग के उपभोग से पूर्णरूपेण विच्छेद हो जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए यह अपील आंशिक रूप में स्वीकार की जाती है और नीचे के न्यायालय की डिग्री का संशोधन किया जाता है कि वादीगण को उस भाग का संयुक्त धारण दिया जाय जिस भाग पर १३५३ फ० में खेती आरंभ हुई थी। यदि आवश्यकता पड़े तो इस डिग्री का जब निष्पादन किया जाय उस समय निष्पादन (एक्जीक्यूशन) न्यायालय उचित जाँच करने के बाद क्षेत्रफल निश्चित करके उसकी हदबंदी कर देगा।

परिस्थिति ऐसी है कि उभय पक्ष अपने अपने परिव्यय (कास्ट्स) को सहन करें।

अपील आंशिक रूप में स्वीकृत

विधि पत्रिका वर्ष ३ (१९८०) ५८–५९

इला० (राजस्व) १३

न्यायमूर्ति वी० जी० ओक

(उच्च न्यायालय)

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० १५९८।१९५६

२३ दिसंबर १९५७

गजराम सिंह — प्रार्थी

वि०

एस० डी० ओ० गुनउर तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० पंचायत राज नियमावली नि० २५ (१) परंतुक (प्रोविज़ो)—चुनाव न्यायाधिकरण के कार्य की प्रवृत्ति—एस० डी० ओ० चुनाव याचिका का निर्णय अपने व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर नहीं कर सकता।

न्यायमूर्ति वी० जी० ओक—

गुनउर जिला बदायूँ के एस० डी० ओ० ने गाँव सभा के प्रधान के चुनाव के संबंध निवेशित की गई चुनाव याचिका को उत्सर्जित कर दिया था। इसी उत्सर्जन के आदेश को अभिखंडित करने के लिये भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह लेख प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया।

गजराम सिंह ने गौरी सहाय के चुनाव पर आपत्ति करने के लिये चुनाव याचिका निवेशित किया था।

उत्सर्जनवाला आदेश संक्षिप्त है। उसमें है कि "मैंने वकील की बात सुनी और प्रार्थी के अभिकथन पर विचार किया। चुनाव स्वयं मेरी उपस्थिति में हुआ और प्रार्थी ने जिस अवैधता की चर्चा की है वैसी कोई बात चुनाव के बीच नहीं हुई थी। तात्पर्य यह कि यह चुनाव बहुत सुंदर ढंग से हुआ और प्रार्थी के आरोप में मुझे कोई बल नहीं दीखता। इसलिए पंचायत राज अधिनियम के नियम २५ (१) के अंतर्गत यह चुनाव याचिका उत्सर्जित करता हूँ।"

गौरी सहाय की ओर से २० अप्रैल १९५६ के आदेश के बारे में कहा गया कि परंतुक १ में है कि एस० डी० ओ० जब इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि चुनाव याचिका सारहीन है तो वह इसे उत्सर्जित कर सकता है। इसमें कहा गया कि न्यायाधिकरण ने इसमें कोई तत्व नहीं देखा इसलिए इसे उत्सर्जित कर दिया।

नियम २५ (१) में है कि निर्वाचन न्यायाधिकरण आभास न्यायिक (क्वासी जुडिशियल) होता है। नि० २५ (१) के अंतर्गत एस० डी० ओ० प्रशासकीय ढंग से काम नहीं करता इसलिए एस० डी० ओ० चुनाव याचिका का निर्वर्तन केवल अपने व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर नहीं कर सकता। जो सिद्धांत आभास न्यायिक कार्यवाहियों के निर्वर्तन के संबंध में लागू होता वही सिद्धांत चुनाव याचिका के इस निर्वर्तन में लागू होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि नि० २५ (१) के परंतुक १ के ये शब्द "प्रार्थनापत्र में तत्व नहीं है" व्य० प्र० संहिता के आ० ७ नि० ११ के शब्द "वाद पत्र से जब वादमूल (काज आफ ऐक्शन) प्रकट नहीं होता" के समान हैं।

इस मामले में चुनाव याचिका इस आधार पर अस्वीकार नहीं की गई कि वादमूल प्रकट नहीं होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरन् इसके अस्वीकार करने का कारण था कि न्यायाधिकरण संतुष्ट हो गया था कि यह सर्वोत्तम चुनाव था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा २०२ के अंतर्गत जैसी कार्यवाही की जाती है उसी ढंग पर कार्यवाही करनी चाहिए थी। इसमें चुनाव याचिका के समर्थन में एक पक्षीय साक्ष्य लेना चाहिए था और इस प्रकार साक्ष्य लेने के बाद जब न्यायाधिकरण संतुष्ट हो जाता कि इसमें कोई तत्व नहीं है तब यह पंचायत राज नियमावली के नि० २५ (१) के परंतुक १ के अंतर्गत उत्सर्जित किया जा सकता था। किंतु इस मामले में ऐसी कोई कार्यवाही नहीं की गई।

इसमें प्रमुख आधार यह लिया गया है कि मतदान के दिन प्रार्थी का नाम पुकारा ही नहीं गया। इसमें संदेह नहीं कि प्रार्थी चुनावर्थियों में से एक था। इसे गौरी सहाय और मुकुंदी ने भी माना है। यदि प्रार्थी का कहना सत्य हो तो चुनाव में यह भारी अनियमितता है और इसलिए अपनी बात को प्रमाणित करने के लिये प्रार्थी को अवसर देना चाहिए था। न्यायाधिकरण को एकमात्र अपने ही ज्ञान के आधार पर इसका निर्णय नहीं करना चाहता था। चुनाव याचिका विधि के अनुसार निर्णय करने के लिये प्रतिप्रेषित (रिमांड) की जानी चाहिए।

विद्वान् एस० डी० ओ० ने अपने आदेश में कहा है कि चुनाव मेरी उपस्थिति में हुआ। इसलिए प्रतीत होता है कि उन्हें इसका दृढ़ निश्चय हो गया था कि चुनाव ठीक से हुआ इसलिए अच्छा यह होगा कि चुनाव याचिका की सुनवाई किसी दूसरे न्यायाधिकरण द्वारा हो।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है। गजराम सिंह द्वारा निवेशित चुनाव याचिका का निर्णय विधि के अनुसार करने के लिये यह प्रतिप्रेषित किया जाता है। बदायूँ के जिलाधीश इसको किसी दूसरे एस० डी० ओ० के यहाँ सुनवाई के लिये भेज दें। गजराम सिंह प्रार्थी इसका परिव्यय (कास्ट्स) विपक्षी सं० ४ से प्राप्त करेंगे।

—प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका वर्ष ३, (१९८०) १९५८-५९
इला० (राजस्व) १४

उच्च न्यायालय

न्यायमूर्ति देसाई

वाद सं० १७२।१९५३, नगीना के प्रतिकर (कंपेंसेशन) अधिकारी के आदेश दिनांक १८ जुलाई १९५४ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ८८६।१९५४

३१ जनवरी १९५७

रानी फूल कुमारी — प्रार्थी

वि०

राज्य तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम, १।१९५१, धा० ३३३, ४८, ४९——व्यवहार प्रक्रिया संहिता, धा० १९०८, धारा ११५—जमींदारी विनाश अधिनियम के अंतर्गत आदेश देनेवाले प्रतिकर अधिकारी व्य० प्र० सं० की धारा ११५ के अभिप्राय के अनुसार उच्च न्यायालय के नीचे का (सबार्डिनेट टू हाईकोर्ट) न्यायालय नहीं है।

न्यायमूर्ति देसाई—

प्रतिकर अधिकारी ने जमींदारी विनाश अधिनियम के अंतर्गत आदेश पारित किया था। उसी आदेश के पुनरीक्षण के लिये व्य० प्र० सं० की धारा ११५ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है। प्रार्थी एक मध्यवर्ती है जिसे अपने स्वामित्व अधिकार के ले लिए जाने के बदले प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकार है। प्रार्थी को जो प्रतिकर देना है उसके लिये प्रतिकर निर्धारण का प्रारूप तैयार किया गया। प्रार्थी ने इसपर दो आधारों पर आपत्ति किया जिनमें से एक यह है कि लगान का मूल्यांकन कम है। उसका एक कृषक विपक्षी सं० २ दि अपर गैंजेज सूगर मिल्स लिमिटेड है। प्रतिकर अधिकारी के समक्ष जो झगड़ा था वह यही था कि विपक्षी को जो भूमि प्रदान की गई थी उसकी लगान किस दर से निर्धारित की जाय। इसने भूमिधरी अधिकार का एक सनद भी प्राप्त कर लिया है। प्रार्थी ने प्रतिकर अधिकारी को सूचित किया कि मैंने सरकार के यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिधरी सनद को अस्वीकार करने के लिये प्रार्थनापत्र दिया है और वह अभी विचाराधीन है। इसके बाद प्रतिकर अधिकारी ने स्वत: उसे इस कार्यवाही में पक्ष बनाया। विपक्षी को एक नोटिस दी गई, उस नोटिस पर वह उपस्थित हुआ और कहा कि हमें पक्ष नहीं बनाना चाहिए कारण कि प्रार्थी को प्रतिकर रूप में दी जानेवाली धनराशि से हमारा कुछ संबंध नहीं है। प्रार्थी ने भी उसे विपक्षी बनाने पर आपत्ति किया किंतु प्रतिकर अधिकारी ने अपने आदेश को निराकृत करने से इनकार कर दिया। प्रार्थिनी चाहती है कि वह आदेश व्य० प्र० संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत उत्सर्जित कर दिया जाय।

व्य० प्र० संहिता की धारा ११५ में है कि नीचे का न्यायालय (सबार्डिनेट कोर्ट) यदि कोई अधिक्षेत्र संबंधी गलती करता है तो उच्च न्यायालय ऐसे निर्णय का अभिलेख मँगा कर जैसा उचित समझे आदेश दे सकता है। इस मामले में प्रतिकर अधिकारी जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ४८ के अंतर्गत इसकी सुनवाई करता है। उसके द्वारा निर्णीत कोई आपत्ति धारा ४९ के अंतर्गत व्यवहार न्यायालय की डिग्री समझी जायगी। इसमें संदेह नहीं कि आपत्तियों का निर्वर्तन करते समय वह न्यायालय का काम करता है। धारा ४८ के अंतर्गत वाद की सुनवाई वह व्यवहार प्रक्रिया संहिता के नियमों के अनुसार करता है। किंतु केवल इसी बात से यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें व्य० प्र० संहिता की धारा ११५ लागू होती है। वह व्यवहार न्यायालय के उन सभी अधिकारों का प्रयोग करता है जो व्य० प्र० संहिता द्वारा प्रदान किए गए हैं किंतु उस पर वे सब दायित्व नहीं होते जो व्यवहार न्यायालय पर होते हैं। केवल वही उपबंध इसमें लागू होते हैं जो वाद की सुनवाई और निर्वर्तन् से संबंध रखते हैं।

यदि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ लागू भी होती हो तो ठीक उसकी शर्तों के अनुसार ही लागू होगी। उच्च न्यायालय इसमें केवल तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब कि उसके नीचे का यह न्यायालय हो। प्रार्थी का न्यायालय एक न्यायालय विशेष है जो जमींदारी विनाश अधिनियम के अंतर्गत बना है। यह व्यवहार न्यायालय (सिविल कोर्ट) से अंतर रखता है। व्यवहार न्यायालय बंगाल और आसाम व्यवहार न्यायालय अधिनियम (सं० १२।१८८७) के अनुसार बने हैं। प्रतिकर अधिकारी का न्यायालय जमींदारी विनाश अधिनियम के अनुसार बना है और इस अधिनियम द्वारा इसे जो अधिकार प्रदान किए गए हैं केवल उन्हीं अधिकारों का यह प्रयोग कर सकता है। धारा ३२५ में दिया हुआ है कि दंड संहिता की कुछ धाराओं के संबंध में इसके अंतर्गत की कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही समझी जायगी। इसका अभिप्राय यह है कि इसे व्यवहार न्यायालय के समान नहीं बनाया गया है। धारा ४९ के अंतर्गत पारित आदेश के बारे में दिया हुआ है कि यह व्यवहार न्यायालय की डिग्री समझी जायगी, इससे भी यह पता चलता है कि यह व्यवहार न्यायालय नहीं है। धारा ४८ में दिया हुआ है कि इसको व्यवहार न्यायालय के समस्त अधिकार प्रदान किए गए हैं और इसे व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबंधों का पालन करना है। इससे भी यही परिणाम निकलता है। व्यवहार न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं हैं, यह सर्वथा स्पष्ट है। अतः इसका अर्थ यह निकलता है कि प्रतिकर अधिकारी व्यवहार न्यायालय के समान कार्य नहीं करते। प्रतिकर आयुक्त और उनके सहायक उसके काम का निरीक्षण करते हैं—इस न्यायालय को उसके निरीक्षण करने का कहीं भी उपबंध नहीं है।

"नीचे का" (सबार्डिनेट) शब्द के दो विशेष अर्थ होते हैं। १—निम्न महत्व या श्रेणी का और २—अधीन या प्राधिकार के अंतर्गतवाला। एक न्यायालय का दूसरे के नीचे (सबार्डिनेट) होने का प्रश्न तब उठता है जब ये शब्द दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जब यह तय करना होता है कि कोई न्यायालय विशेष धारा ११५ व्य० प्र० सं० के उपबंध के अनुसार उच्च न्यायालय के नीचे का न्यायालय है कि नहीं तो केवल इतना ही दिखलाना पर्याप्त नहीं है कि वह नीचे का न्यायालय निम्न श्रेणी या स्तर का है वरन् यह दिखलाना पड़ेगा कि वह उच्च-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायालय के अधीन या प्राधिकरण के अंतर्गत है। एक न्यायालय दूसरे के नीचे का न्यायालय तब होता है जब वह उस पर अपील के अधिकार का प्रयोग करता है या उसके निरीक्षण के अंतर्गत होता है और अपील के अधिकार का प्रयोग या निरीक्षण करने का अधिकार उसे किसी परिनियम के उपबंधों द्वारा प्रदान किया गया हो। कोई परिनियम यह कह सकता है कि अमुक न्यायालय अमुक न्यायालय के नीचे का न्यायालय है यद्यपि कि ऊपरवाला न्यायालय नीचेवाले न्यायालय पर किसी अपील के अधिकार का या निरीक्षण के अधिकार का प्रयोग न करता हो। उसी प्रकार कोई परिनियम यह कह सकता है कि अमुक न्यायालय अमुक न्यायालय के नीचे का न्यायालय नहीं है चाहे ऊपरवाला न्यायालय नीचे के न्यायालय की अपील ही क्यों न सुनता हो। जब तक न्यायालय को किसी न्यायालय पर नियंत्रण रखने का अधिकार नहीं होता तब तक उसे उच्च न्यायालय के अधीन नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार यदि कोई परिनियमित उपबंध न हो तो किसी न्यायालय को उच्च-न्यायालय के नीचे का न्यायालय नहीं कहा जा सकता। उ० प्र० भूधारण अधिनियम के अंतर्गत प्रथम श्रेणी के सहायक कलक्टर के आदेश की अपील जिला न्यायाधीश या आयुक्त के यहाँ होती थी किंतु वह कलक्टर के नीचे का (सबार्डिनेट) था जब कि कलक्टर को मामूली आदेश के सिवा अपील सुनने का अधिकार ही नहीं था। इससे यह प्रकट होता है कि एक न्यायालय दूसरे के नीचे होना उस दूसरे न्यायालय के अपील के अधिक्षेत्र के अंतर्गत होने पर निर्भर नहीं करता।

व्य० प्र० संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत "...उच्च न्यायालय के...नीचे का न्यायालय" शब्द प्रयुक्त हैं। यहाँ नीचे का न्यायालय द्वितीय अर्थ में प्रयुक्त है। चूँकि किस न्यायालय के नीचे का कौन न्यायालय है यह परिनियम का प्रश्न है इसलिए संहिता की धारा ३ में यह दे दिया गया है। "नीचे का न्यायालय" होने की बात इसी उपबंध के अनुसार तय होगी। जब यह स्पष्ट दे दिया गया हो कि नीचे के न्यायालय कौन-कौन से हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि जो न्यायालय नहीं दिए हुए हैं वे इसके बाहर हैं। यदि कोई इस विचार का हो कि जो न्यायालय धारा ३ में नहीं दिए हुए हैं वे भी उच्च न्यायालय के नीचे न्यायालय हो सकते हैं तो इसके लिये बहुत ही दृढ़ प्रमाण चाहिए। व्य० प्र० संहिता की धा० ११५ का संकेत उसी ओर है जिनमें व्यवहार प्रक्रिया संहिता लागू होती है। जिनमें व्यवहार प्रक्रिया संहिता लागू नहीं होती वे धारा ११५ के अनुसार उच्च न्यायालय के नीचे के न्यायालय नहीं हो सकते। व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अनुसार व्यवहार न्यायालय वहीं हैं जो बंगाल और आसाम व्यवहार न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत स्थापित हैं। और न्यायालय या न्यायाधिकरण हैं जो दूसरे अधिनियमों के अंतर्गत स्थापित हैं। वे व्यवहार न्यायालय नहीं है और उनकी कार्यवाही स्वतः व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अनुसार नहीं होती। इसलिए धारा ११५ के अंतर्गत वे नीचे के न्यायालय नहीं हो सकते। उनको स्थापित करने वाले अधिनियमों को यह अधिकार होता है कि उसके लिये प्रक्रिया निर्धारित करें। इस प्रक्रिया के लिये यदि वे चाहे तो संपूर्ण व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू कर सकते हैं और चाहें तो कुछ उपबंध व्यवहार प्रक्रिया संहिता के और कुछ अन्य उपबंध भी लागू कर सकते हैं। केवल इतना ही कह देने से कि इसमें व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू होंगे उसे व्यवहार न्यायालय नहीं कहा जा सकता क्योंकि व्यवहार प्रक्रिया संहिता पर व्यवहार न्यायालय का एकाधिकार नहीं है। ए० आई० आर० १९५१ पटना १४०, ए० आई० आर० १९३२ इलाहाबाद ६५१ और आई० एल० आर० ३७ बंबई ११४ में निर्णय हुआ था कि धारा ११५ के लिये नीचे के जो न्यायालय धारा ३ में गिनाए गए हैं वे स्वतः पूर्ण (एक्जास्टिव) नहीं है। किंतु इसके लिये कोई कारण नहीं दिया गया है कि वे स्वतः पूर्ण क्यों नहीं हैं। ए० आई० आर० १९४४ मद्रास १३९ में निर्णय हुआ था कि धारा ११५ के अंतर्गत राजस्व न्यायालय भी उच्च न्यायालय के नीचे का न्यायालय है। दूसरी ओर सुल्तान अली वि० नूर हुसेन में निर्णय हुआ था कि जो न्यायालय धारा ३ की परिभाषा में नहीं हैं वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा ११५ के अभिप्राय के लिये उच्च न्यायालय के नीचे के न्यायालय नहीं हैं। कुछ व्यवहार (सिविल) अधिकारों का प्रयोग करने के कारण ही उन्हें उच्च न्यायालय के नीचे का न्यायालय नहीं कहा जा सकता। इस निर्णय से मैं सहमत हूँ और अत्यंत सम्मान के साथ इसके प्रतिकूल निर्णय देनेवाले उपर्युक्त निर्णयों को मानने में असमर्थ हूँ। धारा ३ स्वतः पूर्ण है इसमें मुझे कोई संदेह नहीं और उसमें दिए गए न्यायालयों के अतिरिक्त कोई दूसरा न्यायालय धारा ११५ के अंतर्गत उच्च न्यायालय के नीचे का न्यायालय नहीं कहा जा सकता।

किसी अधिनियम के अंतर्गत जब नए अधिकार या नए दायित्व का सृजन होता है तब इसके लिये दो उपाय हैं, एक यह कि वर्तमान व्यवहार न्यायालय ही इन अधिकारों और दायित्वों को लागू करें या इसके लिये विशेष न्यायालय की स्थापना हो। यदि वर्तमान व्यवहार न्यायालय ही इन सबको लागू करते हैं तब तो वे धारा ११५ के प्रयोजन के लिये उच्च न्यायालय के अधीन होंगे और यदि उसके लिये नए न्यायालय बनते हैं तो जैसा ऊपर कहा गया है वे उच्च न्यायालय के नीचे के न्यायालय नहीं होंगे क्योंकि नए न्यायालय का बनना ही यह प्रकट करता है कि व्यवहार न्यायालय और इस नए न्यायालय में अंतर है। जब अधिकारों और दायित्वों को लागू करने का काम व्यवहार न्यायालय को दिया जाता है तब दो बातें देखनी चाहिए। यह कि वे अधिकार आदि वर्तमान न्यायालय को दिए गए हैं या न्यायालय के प्रमुख अधिकारी विशेष के निरूपित व्यक्ति (परसोना डेजिग्नेटा) के पद से, यह उसकी व्याख्या द्वारा समझा जा सकता है। ए० आई० आर० १९३३ इलाहाबाद ७६४ में निर्णय हुआ था कि उ० प्र० जिला बोर्ड अधिनियम के अंतर्गत जिला न्यायाधीश जब चुनाव याचिका की सुनवाई करते हैं तो वे (परसोना डेजिग्नेटा) होते हैं, व्यवहार न्यायालय नहीं। ए० आई० आर० १९४९ लाहौर १३१२ में नीचे के न्यायालय को न्यायालय रूप में अधिकार प्रदान करने और ऐसे न्यायालय के प्रमुख अधिकारी को (परसोना डेजिग्नेटा) रूप में अधिकार प्रदान करने में अंतर बतलाया गया है। ए० आई० आर० १९४१ पटना ६५ में निर्णय हुआ था कि देखना यह चाहिए कि यह अधिकार यदि व्यवहार न्यायालय को न्यायालय के पद से सौंपा गया है तब तो इसके लिये तत्संबंधी अधिक्षेत्र के सारे उपबंध लागू होंगे किंतु यदि न्यायालय के पद से यह काम नहीं दिया गया है वरन् वह जब केवल (परसोना डेजिग्नेटा) होता है तो उस समय न्यायालय के समान अधिक्षेत्र वाले उपबंधों से शासित नहीं होगा।

अत्यंत संमान के साथ इस कथन के बारे में मैं अपना सुझाव यह देता हूँ कि इसमें थोड़ा संशोधन कर देना चाहिए तथा देखना चाहिए कि यह अधिकार वर्तमान न्यायालय को प्रदान किया गया है या नए न्यायालय को प्रदान किया गया है। (परसोना डेजिग्नेटा) भी एक न्यायालय हो सकता है इसलिए यह विभेदकरण कि अधिकार का प्रयोग न्यायालय के पद से करने का विधान है या अन्य ढंग से, ठीक नहीं है। कभी कभी यह संयोगवश ही होता है कि ऐसा नियुक्त अधिकारी व्यवहार न्यायालय का अधिकारी होता है अन्यथा यदि कोई दूसरा व्यक्ति हो तो यह भ्रम नहीं पैदा होगा कि यह व्यवहार न्यायालय है कि नहीं। १९५६ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) १७६ में नगरपालिका अधिनियम के अंतर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा पारित एक आदेश का पुनरीक्षण इसलिए नहीं किया गया था कि यह आदेश पारित करते समय मजिस्ट्रेट केवल (परसोना डेजिग्नेटा) था।

'नीचे के न्यायालय' ये शब्द संविधान में भी पाए जाते हैं। संविधान के प्रयोजन के लिये यह बतला दिया गया है कि उच्च न्यायालय के नीचे के न्यायालय कौन कौन से हैं। इसमें अधिनियम विशेष या स्थानीय अधिनियम के अंतर्गत बने हुए अधिनियम जैसे जिला बोर्ड अधिनियम और जमींदारी विनाश अधिनियम आदि का नाम नहीं है। नीचे का न्यायालय होने के लिये एक शर्त यह है कि इसके प्रमुख अधिकारी की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यपाल उच्च न्यायालय की सलाह से करते हों। जमींदारी विनाश अधिनियम का यह अभिप्राय नहीं है कि इसके द्वारा बनाए गए न्यायालयों के प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय की सलाह पर हो। इसका अर्थ यह होता है कि कम से कम संविधान के प्रयोजन के लिये यह उच्च न्यायालय के नीचे का न्यायालय नहीं है। अनुच्छेद २२८ में उच्च न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह उसके नीचे के न्यायालय में विचाराधीन मामले को यदि चाहे तो हटा सकता है। अनुच्छेद २२७ के अंतर्गत उच्च न्यायालय को सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों को निरीक्षण करने का अधिकार दिया गया है। इस संबंध में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अनुच्छेद २२७ में कहीं 'नीचे के न्यायालय' शब्द नहीं प्रयुक्त हैं। इसलिए उच्च न्यायालय के केवल निरीक्षण के अंतर्गत होने से कोई न्यायालय उच्च न्यायालय के नीचे का न्यायालय नहीं हो सकता।

जैसे इसके लिये व्य० प्र० संहिता की धारा ३ में दिया है कि कौन कौन से न्यायालय उच्च न्यायालय के नीचे के न्यायालय हैं उसी प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धा० १७ और २१ में दिया हुआ है कि कौन कौन से न्यायालय किन किन न्यायालयों के अधीन हैं। प्रक्रिया के संबंध में व्यवहार प्रक्रिया संहिता और दंड प्रक्रिया संहिता दो प्रमुख संहिताएँ हैं। दंड प्रक्रिया संहिता में यह स्पष्ट दिया हुआ है कि 'नीचे के न्यायालय' होने की बात एकमात्र परिनियम (स्टैट्यूट) पर निर्भर करती है, किसी सामान्य नियम पर नहीं। दंड प्रक्रिया संहिता में नीचे के न्यायालय होने और अधीन न्यायालय होने में अंतर बतलाया गया है और यह निश्चित हो चुका है कि एक दूसरे पर निर्भर नहीं करते। यदि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रयोजन के लिये नीचे का न्यायालय होना अपील के अधिक्षेत्र के अधीन होने पर निर्भर नहीं करता तो उसी प्रसंग में व्यवहार प्रक्रिया संहिता में 'नीचे के न्यायालय' शब्दों का कोई दूसरा अर्थ लगाना ठीक नहीं है।

ए० आई० आर० १९३४ इलाहाबाद २६० में निर्णय हुआ था कि नीचे का न्यायालय होने के लिये केवल इतना ही आवश्यक है कि वह किसी प्रकार नीचे हो; चाहे वह प्रशासन में नीचे हो चाहे न्याय में नीचे हो या, चाहे निष्पादन में नीचे हो, यदि नीचे है तो वह नीचे का न्यायालय (सबार्डिनेट कोर्ट) कहा जा सकता हैं। अत्यंत संमान के साथ मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। यदि सामान्य नियम यही होता तो नीचे का न्यायालय होने के लिये नियम विशेष बनाने की आवश्यकता ही क्या थी? यदि धारा ३ का नियम इस सामान्य नियम के अतिरिक्त होता तो धारा ३ में इसकी ओर संकेत अवश्य होता। यह सामान्य नियम सामान्य वाक्यांश अधिनियम (जेनरल क्लाजेज ऐक्ट) में नहीं है।

न्यायालय अवमान अधिनियम (कंटेंप्ट आफ कोर्ट ऐक्ट) में उच्च न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने नीचे के न्यायालयों के अवमान (कंटेंप्ट) में दंड दे। किंतु न्यायालय अवमान अधिनियम की धारा २ में नीचे के न्यायालय का जो अर्थ है उसी अर्थ में धारा ११५ (व्य० प्र० सं०) में उसका प्रयोग नहीं हो सकता। इसके लिये कई प्रमाण दिए गए हैं किंतु वे सब दूसरे प्रसंग में हैं। किसी दूसरे परिनियम में भिन्न प्रसंग में प्रयुक्त इन शब्दों का एक ही प्रकार से अर्थ नहीं किया जा सकता। धारा ११५ के लिये जो पहली शर्त है कि वह न्यायालय व्यवहार (सिविल) न्यायालय होना चाहिए वह शर्त उच्च न्यायालय के नीचे का न्यायालय होने के लिये न्यायालय अवमान अधिनियम के अंतर्गत नहीं है।

उच्च न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश के आदेश की अपील उसी उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों का एक न्यायासन सुनता है किंतु अपील सुनने से ही यह नहीं कहा जा सकता कि वह एकाकी न्यायाधीश का न्यायालय दो न्यायाधीशों के न्यायासन के नीचे का न्यायालय है। एकाकी न्यायाधीश उच्च न्यायालय का काम करता है और न्यायासन भी उच्च न्यायालय का काम करता है। यदि उक्त सिद्धांत को थोड़ा और आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ा दिया जाय तब तो यह भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समुदाय और सरकार भी मुंसिफ तक के अधीन हो सकती है क्योंकि वे उनके कार्यों और उनके आदेशों पर निर्णय देते हैं और विधि के विरुद्ध पाने पर उसे अभिखंडित कर सकते हैं। अपील में और इस अभिखंडन की प्रक्रिया में कोई विशेष अंतर नहीं है। यदि कोई न्यायालय किसी न्यायालय के नीचे का न्यायालय केवल इसलिए हो सकता है कि वह अपील में उसके आदेश का अभिखंडन कर सकता है तब तो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक संस्था को प्रत्येक न्यायालय के नीचे का हो जाना चाहिए।

एक बात यह कही गई है कि जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ३३० के अनुसार उच्च न्यायालय को सुनवाई का अधिकार नहीं है। सुनवाई में व्यवहार न्यायालय (सिविल कोर्ट) का अधिकार समाप्त किया गया है और इसी आधार पर यह कहा जाता है कि उच्च न्यायालय भी व्यवहार न्यायालय है। यह बात मैं नहीं मानता। व्यवहार न्यायालयों की स्थापना बंगाल और आसाम व्यवहार न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत हुई है किंतु उच्च न्यायालय की स्थापना संविधान के अंतर्गत हुई है–उक्त अधिनियम के अंतर्गत उच्च न्यायालय की स्थापना नहीं हुई है। सामान्य वाक्यांश अधिनियम में उच्च न्यायालय की परिभाषा दी गई है कि राज्य में व्यवहार न्यायालय का सबसे ऊँचा अपील का यह न्यायालय है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि यह व्यवहार न्यायालय है। अपील का सबसे ऊँचा व्यवहार न्यायालय का अर्थ है अपील के अधिक्षेत्र का सबसे ऊँचा न्यायालय, यह आवश्यक नहीं है कि यह स्वतः भी व्यवहार न्यायालय हो।

मेरा निर्णय है कि प्रतिकर अधिकारी व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ के अभिप्राय के अंतर्गत उच्च न्यायालय के नीचे का न्यायालय नहीं है।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० १ नि० २ के अंतर्गत उन लोगों को अभिलेख पर लाया जा सकता था जिनको उसमें पक्ष बनाना चाहिए था या पूर्णरूपेण निर्णय देने के लिये जिनका रहना आवश्यक हो। इस मामले में पक्ष बनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। एक बात यह कही गई है कि गलती कितनी ही बड़ी क्यों न हो वह पुनरीक्षण में ठीक नहीं की जा सकती। किंतु यहाँ मजिस्ट्रेट को पक्ष बनाने का अधिक्षेत्र नहीं था विकल्पतः अधिक्षेत्र का सारभूत दुरुपयोग हुआ। प्रार्थी नहीं चाहती थी कि विपक्षी को पक्ष बनाया जाय और स्वतः विपक्षी ने भी अपने को पक्ष बनाए जाने पर आपत्ति किया था।

कुछ भी हो चूँकि यह निर्णय हो चुका है कि प्रतिकर अधिकारी इस न्यायालय के नीचे का न्यायालय नहीं है इसलिए व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। इसलिए प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है परंतु परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

बहस सुनने के बाद और जब कि मैंने करीब आधा निर्णय लिखा दिया था प्रार्थी की ओर से एक प्रार्थनापत्र दिया गया कि इस प्रार्थनापत्र को संविधान के अनुच्छेद २२७ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र माना जाये। वास्तव में इसमें उत्प्रेषण लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) जारी करने का प्रार्थनापत्र दिया जाना चाहिए था। प्रतिकर अधिकारी का आदेश बिना अधिक्षेत्र का था इसलिए उत्प्रेषण लेख में उसे अभिखंडित किया जा सकता था। अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत लेख, आदेश या निर्देश में जो काम किया जा सकता था वह निरीक्षण (सुपरवाइजरी) अधिक्षेत्र के अंतर्गत अब नहीं किया जा सकता कारण कि इसके लिये जिन जिन शर्तों का पालन करना होता है वह अब नहीं किया जा सकता। दूसरे, उत्प्रेषण लेख का जारी करना विवेक पर निर्भर करता है और यहाँ पर प्रार्थी को कम से कम अब तक कोई हानि नहीं पहुँची है। मैं समझता हूँ कि यदि किसी अन्य उपबंध के अंतर्गत उपाय नहीं रह गई है तो अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत उसे पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है। इसलिए मैं इस प्रार्थनापत्र को अनुच्छेद २२७ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र मानना अस्वीकार करता हूँ।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९

इलाहाबाद (राजस्व) २०

मुख्य न्यायाधिपति मूथम और न्यायमूर्ति आर० दयाल

(उच्च न्यायालय)

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं०. ३१८९।१९५७

१३ अगस्त १९५८

चौधरी मुहम्मद मुशीर अहमद खाँ तथा अन्य–प्रार्थीगण

वि०

राजस्व मंडल उ० प्र० इलाहाबाद तथा अन्य विपक्षीगण

उ० प्र० भूधारण अधिनियम (यू० पी० टेनेंसी ऐक्ट) १७।१९३९ धा० ४५ बी०–डिग्री का तात्पर्य उस डिग्री से है जो अंतिम हो चुकी हो और जिसे अब बदला नहीं जा सकता ।

न्यायमूर्ति दयाल—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६, २२७ के अंतर्गत ये लेख प्रार्थनापत्र निवेशित किए गए हैं। इनके द्वारा राजस्व मंडल द्वारा पारित एक आदेश की वैधता पर आपत्ति की गई है। तथ्य इस प्रकार हैं:—

१९४४ में प्रार्थीगण ने उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा १७५ और १७९ के अंतर्गत कुछ खेतों पर से प्रतिवादी उत्तरवादियों के अधिनिष्कासन (एजेक्टमेंट) के लिये वाद निवेशित किया। इसमें प्रार्थीगण को इन खेतों का सीरदार कहा गया और प्रतिवादियों को उनका कृषक। इस वाद का विरोध प्रतिवादियों ने कई आधार पर किया जिनमें से प्रमुख यह था कि हम इन खेतों के वंशानुगत कृषक (हेरीडेटरी टेनेंट्स) हो चुके हैं।

१४ अप्रैल १९४५ को अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने प्रार्थीगण के पक्ष में निर्णय दिया और प्रतिवादी उत्तरवादीगण के अधिनिष्कासन के लिये डिग्री पारित किया। डिग्री का निष्पादन १९४५ में हुआ और प्रार्थीगण ने धारण (पोजेशन) प्राप्त कर लिया। इसके बाद प्रार्थीगण ने इन खेतों को उन्हें लगान पर दे दिया और इन कृषकों का नाम १३५६ फ० में अध्यासी (आकूपैंट) लिख गया।

उस निर्णय के विरुद्ध प्रतिवादियों ने जो अपील निवेशित की थी उसे रुहेलखंड के आयुक्त ने २८ नवंबर १९४५ को उत्सर्जित कर दिया। राजस्व मंडल में अपील १९५७ में सुनवाई के लिये आई और इसमें प्रतिवादी उत्तरवादियों का कथन है कि उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २० (ए०) के अंतर्गत हमें अधिवासी अधिकार प्राप्त हो गया है। राजस्व मंडल ने इस कथन को मान लिया और अपील स्वीकार किया। इसी स्वीकार करनेवाले आदेश की वैधता पर इस लेख प्रार्थनापत्र द्वारा आपत्ति की गई है।

राजस्व मंडल में और इस न्यायालय में इस बात पर जोर दिया गया कि नीचे के न्यायालयों का यह निर्णय था कि प्रार्थीगण की 'सीर' की भूमि के प्रतिवादीगण कृषक (टेनेंट्स) थे और डिग्री के निष्पादन पर उनका अधिनिष्कासन होने पर भी वे निहित होने की तिथि के ठीक पहले की तिथि को 'सीर' के कृषक थे और इसलिए जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २० (ए०) (१) के अंतर्गत उन्हें अधिवासी अधिकार प्राप्त हो गया तथा अब उनका अधिनिष्कासन नहीं हो सकता। इस विधिक स्थिति को तो वादी ने माना पर उनका कहना था कि उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ४५ बी० के अंतर्गत डिग्री का निष्पादन होने के बाद प्रतिवादियों की शिकमी की स्थिति समाप्त हो गई। वादी के इस कथन के उत्तर में प्रतिवादियों का कहना है कि उस डिग्री के विरुद्ध प्रतिवादियों की अपील अभी भी विचाराधीन है इसलिए डिग्री के अंतिम (फाइनल) न होने से प्रतिवादियों का 'सीर' के कृषक होने का अधिकार समाप्त नहीं हुआ। राजस्व मंडल ने इस अभिकथन को मान लिया और तदनुसार नीचे के न्यायालय की डिग्री को निराकृत कर दिया।

यहाँ इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या राजस्व मंडल का यह निष्कर्ष गलत है ?

धारा ४५ (बी०) के देखने से पता चलता है कि उसमें अधिनिष्कासन का संबंध उस डिग्री से है जो कि केवल इसी अर्थ में अंतिम (फाइनल) न हो गई हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि यह प्रभावपूर्ण और मानने योग्य है वरन् इस अर्थ में कि किसी बड़े न्यायालय द्वारा अब निराकृत नहीं की जा सकती। जब तक परिस्थिति ऐसी है कि इस डिग्री का निराकरण हो सकता है तब तक उस डिग्री के आधार पर किसी कृषक का अधिनिष्कासन उसके भूधारण अधिकार का उपशमन (एक्सटिंक्शन) नहीं कर सकता।

यदि इसका अर्थ यह न हो तब तो जब अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय डिग्री पारित करके उसका निष्पादन करता है और उसके फलस्वरूप वह कृषक धारण (पोजेशन) छोड़ देता है तो उसका अधिकार समाप्त हो जाने से वह अपील में बहस ही नहीं कर सकता, ऐसी बात नहीं है।

इस प्रकार राजस्व मंडल का यह निर्णय ठीक था कि जमींदारी विनाश अधिनियम के लागू होने के समय प्रतिवादी का शिकमी का अधिकार समाप्त नहीं हो गया था।

प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किए जाते हैं।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९ इला० (राजस्व) २१

आर० के० सिंह और सी० एच० निगम, न्यायिक-सदस्यगण

बहवरहा, पचोतर, गाजीपुर

एस० ए० सं० ४५१।५४–५५–२३ जनवरी १९५९

नरेश अहीर — अपीलकर्ता

वि०

केवल अहीर — उत्तरवादीगण

उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ४९ के अंतर्गत एक मुकदमे में वाराणसी के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २९–७–१९५५ के विरुद्ध द्वितीय अपील

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम १९५०–उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ४९ के अंतर्गत वाद—उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम के अंतर्गत निहित होने की तिथि के बाद यदि भूस्वामी (लैंड होल्डर) की मृत्यु हुई तो भूस्वामी के उत्तराधिकारी आवश्यक पक्ष नहीं है कि अभिलेख पर लाए जाँय।

सिंह, न्यायिक सदस्य—

वाराणसी के अतिरिक्त आयुक्त ने उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ४९ के अंतर्गत निवेशित वाद को उत्सर्जित कर दिया था। उसी आदेश के विरुद्ध नरेश अहीर आदि ने यह द्वितीय अपील निवेशित की है। अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने वादी के वाद में डिग्री दे दी थी। प्रतिवादियों ने इसके विरुद्ध अपील निवेशित किया। विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने अपील उत्सर्जित कर दिया। प्रतिवादीगण इस द्वितीय अपील में आए हैं।

विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने अपील का निर्णय तत्व पर नहीं दिया वरन् केवल प्रावैधिक (टेक्निकल) आधार पर इसे उत्सर्जित कर दिया। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने अपने निर्णय में जहाँ तहाँ गलतियाँ दिखलाई हैं कि मरने पर मृतक के विधिक उत्तराधिकारी अभिलेख पर नहीं लाए गए किंतु ये सब महत्व की नहीं हैं। रिसाल वि० उ० प्र० सरकार १९५६ ए० एल० जे० ५१९ में निर्णय हुआ था कि निहित (वेस्टिंग) आदेश के बाद भूस्वामी (लैंडहोल्डर) भूस्वामी नहीं रह गए वरन् राज्य अब भूस्वामी है इसलिए उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ४९ के मुकदमे में भूस्वामी जब जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गत निहित होने के आदेश के बाद मरा तो उससे भूस्वामी का अधिकार समाप्त हो गया तथा उसके उत्तराधिकारी को अभिलेख पर लाने की कोई आवश्यकता नहीं रही। ऐसी अवस्था में, उसमें निर्णय हुआ था कि पूर्णरूपेण और प्रभावपूर्ण निर्णय देने के लिये न्यायालय यदि चाहे तो गाँवसभा को पक्ष बना सकती है। गाँवसभा को पक्ष बनाने में कोई रुकावट नहीं बतलाई गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च न्यायालय के इस निर्णय के बाद मृतक जमींदार के उत्तराधिकारियों को पक्ष बनाने और उनके वयस्क या अवयस्क होने पर विचार करने में समय लगाना व्यर्थ था। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त को इसका निर्णय तत्व पर देना चाहिए था प्रावैधिक (टेक्निकल) ढंग पर नहीं।

इस प्रकार विधि की ऐसी स्थिति में मृतक जमींदार के उत्तराधिकारियों को जमींदारी विनाश के बाद अभिलेख पर लाना आवश्यक नहीं है। अतः अपने सहयोगी की सहमति के अधीन मैं अपील स्वीकार करता हूँ और इसे तत्व पर निर्णय देने के लिये अतिरिक्त आयुक्त के यहाँ प्रतिप्रेषित करता हूँ। यदि विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त आवश्यक समझें तो गाँव सभाको पक्ष बना सकते हैं कारण कि गाँवसभा को पक्ष बनाने में कोई रुकावट नहीं डाली गई है।

न्यायिक सदस्य निगम—मैं सहमत हूँ।

-अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९

इलाहाबाद (राजस्व) २२

एस० एन० मित्रा एवं आर० के सिंह, न्यायिक सदस्यगण

कृषि आयकर पुनरीक्षण सं० ४०४।१९५६

८ दिसंबर १९५८

हनुमान प्रसाद वि० राज्य

उ० प्र० कृषि आयकर अधिनियम, १९४८, धा० २५—यदि कुछ धनराशि करनिर्धारण (असेसमेंट) से बच गई हो तो इसके प्रमाण का आरंभिक भार विभाग पर है।

न्यायिक सदस्य, मित्रा—

कृषि आयकर अधिनियम की धारा २२ के अंतर्गत अपील के प्राधिकारी के आदेश दिनांक १४–३–५५ के विरुद्ध यह पुनरीक्षण है। यह हनुमान प्रसाद करदाता की १३६० फ० की आय के बारे में है।

श्री हनुमान प्रसाद पर [illegible]७७ रु० पर कर निर्धारण हुआ था। बाद में यह पता चला कि १३५५ फ० से १३५९ फ० तक बकाया लगान की ४५६६ रु० की आय करनिर्धारण से बच गई है। कर निर्धारण प्राधिकारी ने कृषि आयकर अधिनियम की धारा २५ के अंतर्गत आगे की कार्यवाही आरंभ किया और इस धनराशि पर ७५३ रु० १५ आना और कर लगाया। करदाता ने अपील निवेशित किया और झाँसी मंडल के विद्वान् कलक्टर ने अपने आदेश दिनांक १४–३–५५ द्वारा इस छूटी हुई आय के बारे में कार्यवाही बंद कर दिया।

विभाग की ओर से विशेष कार्याधिकारी की बहस सुना। उनका कहना है कि ४५६६ रु० १३६१ फ० में बकाया लगान का वसूल किया गया। उनका कहना है कि यह बकाया लगान १३५५ से १३५९ फ० तक की है। उनका यह भी कहना है कि यदि करदाता के शपथ-पत्र को छोड़ दिया जाय तो कोई और ऐसा साक्ष्य नहीं है जिससे पता चले कि करदाता ने बकाया लगान की वसूली नहीं किया। उनका यह भी कहना है कि करदाता ने रक्षित-प्रति (काउंटर फायल) न तो कर निर्धारण अधिकारी के समक्ष उपस्थित किया और न अपील के अधिकारी के समक्ष और करदाता ने स्वयं सारभूत साक्ष्य को छिपाया है। तात्पर्य यह कि उनका कहना है कि यह बात प्रमाणित करने के लिये कि इस छुटी हुई आय के बारे में करदाता ने वसूली नहीं की, भार करदाता पर है और अपील के प्राधिकारी ने उस धनराशि को छोड़ देने में गलती की है।

करदाता के विद्वान् वकील का कहना है कि आरंभिक करनिर्धारण के बारे में यों तो भार करदाता पर था कि इस बात का प्रमाण दे कि उसने कितनी धनराशि वसूल की है पर 'छुटी हुई आय' (इस्केप्ट इनकम) के बारे में प्रमाण देने का भार करदाता पर से हट कर विभाग पर चला गया। इस संबंध में विद्वान् वकील ने आयकर आयुक्त बंबई वि० गोपाल बैजनाथ मनोहर ए० आई० आर० १९२५ बंबई ४१० का निर्देश किया जिसमें निर्णय हुआ था कि यह दिखलाने का भार कि कोई आय करनिर्धारण से बच गई है या कर निर्धारण बहुत कम दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर हुआ है आयकर आयुक्त पर है। विद्वान् वकील ने चिमनराम वि० आयकर आयुक्त, बंबई ए० आई० आर० (३०) १९४३ बंबई १३२ का भी निर्देश किया जिसमें निर्णय हुआ था कि केवल यह कहने से ही काम नहीं चलेगा कि कोई आय करनिर्धारण से छूट गई है वरन् आयकर आयुक्त को यह स्थापित करना पड़ेगा कि उक्त आय कर निर्धारण से छूट गई है, कर दाता को प्रमाणित नहीं करना है कि आरंभिक कर निर्धारण ठीक था और कोई आय कर निर्धारण से छूटी नहीं है। विद्वान् वकील का कहना है कि छूटी हुई आय को प्रमाणित करने का भार कृषि आयकर विभाग पर है, न कि करदाता पर। विभाग ने यह प्रमाणित नहीं किया है कि १३५५ फ० से १३५९ फ० तक की बकाया धनराशि १३६० फ० में वसूल की गई। अपील के अधिकारी ने छूटी हुई आय के बारे में जो कार्यवाही समाप्त कर दी वह ठीक किया। विद्वान् वकील का यह भी कहना है कि करदाता ने रक्षित प्रति (काउंटर फायल) दी है और विभाग की ओर से विशेष कार्याधिकारी का यह कहना ठीक नहीं है कि रक्षित प्रतियाँ नहीं दी गईं।

इसमें प्रमुख प्रश्न यह है कि जो ४५६९ रु० की धन राशि १३५५ फ० से १३५९ फ० तक की बकाया थी उसे करदाता ने वसूल किया है कि नहीं। यह सर्वथा स्पष्ट है कि १३५५ फ० से १३५७ फ० तक का बकाया धन १३६० फ० में कालबाधित हो गया और वसूल नहीं किया जा सकता। जो बकाया धन वसूल किया जा सकता है वह १३५८ से १३६० फ० तक का है। कर दाता की ओर से एक शपथपत्र निवेशित किया गया है कि हमने १७७६८ रु० के अतिरिक्त और रुपया वसूल नहीं किया है और उक्त धनराशि पर कर पहले ही लग चुका है। अपील के अधिकारी का निर्णय था कि इस मामले से यह पता चलता है कि रसीद की रक्षित प्रतियाँ प्रेषित की गई हैं। विशेष कार्याधिकारी का कहना है कि रसीद की रक्षित प्रतियाँ प्रेषित नहीं की गई हैं। कुछ भी हो विभाग ने यह प्रमाणित नहीं किया कि ४५६९ रु० की धनराशि करदाता ने वसूल किया है और जब तक कि इस प्रकार का साक्ष्य नहीं आता करदाता पर यह प्रमाणित करने का भार नहीं है कि आरंभिक कर निर्धारण ठीक था। अपील के अधिकारी ने जो छूटी हुई आय के बारे में कार्यवाही समाप्त कर दी, वह ठीक किया। कौन धनराशि कर निर्धारण से बच गई है इसको प्रमाणित करने का आरंभिक भार विभाग पर है।

अतः हमारा विचार है कि यह पुनरीक्षण उत्सर्जित कर दिया जाय।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका वर्ष ३, १९५९
इलाहाबाद (राजस्व) २३
पूर्ण न्यायासन

आर० दयाल, गोपाल जी मेहरोत्रा और ए० पी० श्रीवास्तव न्यायमूर्तिगण

उच्च न्यायालय

बाँसी के अतिरिक्ति मुंसिफ श्री रमेशचंद्र सक्सेना के निर्णय दिनांक २८ अक्टूबर १९५७ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ४६१।१९५२

२८ अक्टूबर, १९५७

यार मुहम्मद तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

लक्ष्मीदास तथा अन्य — विपक्षीगण

विशिष्ट साहाय अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) १८७७, धा० ९-उ० प्र० भूधारण अधिनियम (यू० पी० टेनेंसी ऐक्ट) १९३९, धा० २४२-खेती की जानेवाली भूमि के धारण (पोजेशन) के लिये विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ९ के अंतर्गत वाद निवेशित किया गया तो यह उ० प्र० भू धारण अधिनियम की धा० २४२द्वारा बाधित (बार्ड)नहीं है।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

इस पूर्ण न्यायासन का निर्माण इस बात पर विचार करने के लिये हुआ है कि यदि वादी ने खेती की जाने वाली भूमि पर से अपना धारण वाद निवेशित करने की तिथि से ६ महीने के भीतर हटने के संबंध में धारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापस पाने के लिये वाद विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ९ के अंतर्गत निवेशित किया है तो क्या व्यवहार न्यायालय (सिविल कोर्ट) का अधिक्षेत्र उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा २४२ के अंतर्गत बाधित है ?

इसका निर्देश (रेफरेंस) न्यायमूर्ति मुकर्जी ने इसलिए किया है कि इसी न्यायालय के दो विभागीय न्यायासन के इसी विषय पर के निर्णयों में विरोध है (ये निर्णय गंगादीन वि० गोकुल प्रसाद १९५१ ए० एल० जे २९० और जगनारायण मल्लाह वि० भगवती प्रसाद पांडेय १९५७ ए० एल० जे० ७८३ हैं) और उस विरोध को ठीक करने की आवश्यकता है।

विद्वान् वकील ने भूराजस्व अधिनियम (लैंड रेवेन्यू ऐक्ट) की धारा ४० (२) पर भी बहस करना चाहा किंतु हमने उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी कारण कि केवल उपर्युक्त प्रश्न ही हमको निर्देश किया गया है।

वादी ने ३० नवंबर १९४८ को विशिष्ट साहाय अधिनियम की धारा ९ के अंतर्गत धारण के लिये एक वाद निवेशित किया और उसमें उसका कहना था कि हम विवादग्रस्त खेतों के (यह मान्य है कि इन खेतों में खेती की जाती है) धारण में थे और प्रतिवादीगण ने बिना किसी विधिक आधार पर गलत ढंग से हमारा धारण नवंबर १९४८ में हटा दिया। प्रतिवादियों ने इसका विरोध किया और उनका कहना है कि वादीगण का उपर्युक्त कथन सही नहीं है। उनका कहना है कि हम लोग वादी के कृषक हैं और १२ वर्ष से अधिक लगातार धारण में हैं, इसलिए उनका कहना है कि वादीगण हमारा अधिनिष्कासन नहीं कर सकते। उनका यह भी कहना है कि वादीगण ने राजस्व न्यायालय (रेवेन्यू कोर्ट) के अधिक्षेत्र से छुटकारा पाने के लिये ही विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ९ के अंतर्गत यह वाद निवेशित किया है क्योंकि यदि वे राजस्व न्यायालय में यह वाद निवेशित करते तो कभी सफल नहीं होते।

गंगादीन के उपर्युक्त निर्णय पर निर्भर करके विद्वान् मुंसिफ ने अधिक्षेत्र न रहने की बात अस्वीकार कर दिया। तथ्य के आधार पर उन्होंने वादी की बात को स्वीकार किया और प्रतिवादियों के कथन को अस्वीकार कर दिया। इस पर प्रतिवादियों ने पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया। इसी से यह निर्देश (रेफरेंस) आया है। पुनरीक्षण में उनका कहना है कि विद्वान् मुंसिफ ने उ० प्र० भूधारण, अधिनियम की धारा २४२ के लागू होने के संबंध में जो अपना विचार व्यक्त किया है उसमें औचित्य नहीं है और इस प्रश्न का निर्णय उन्होंने ठीक नहीं किया है। विद्वान् वकील ने अपने कथन के समर्थन में जगनारायण मल्लाह के उपर्युक्त निर्णय पर निर्भर किया।

प्रार्थी के विद्वान् वकील ने पाँच आधारों पर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि वादी के इस वाद की सुनवाई राजस्व न्यायालय में ही हो सकती है। इनमें से कई आधार एक समान ही हैं। वे इस प्रकार हैं:-

(१) उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा २४२ के उपबंधों का क्षेत्र विस्तृत है और उनकी प्रकृति आदेशात्मक (इंपरेटिव) है। अधिनियम के इतिहास से यह पता चलता है कि अब तक विधान मंडल का विचार यही रहा है कि खेती किए जानेवाले खेतों के झगड़ों का निबटारा राजस्व न्यायालय को ही करना चाहिए। जब कभी न्यायालय ने विधि का अर्थ इस प्रकार लगाने का प्रयत्न किया कि उससे व्यवहार न्यायालय को ऐसे मामलों की सुनवाई का सहवर्ती या विकल्पतः (आल्टरनेटिव) अधिकार प्राप्त है तब विधान मंडल ने हस्तक्षेप करके व्यवहार न्यायालय के अधिक्षेत्र को हटाने के संबंध में प्रतिबंध को स्पष्ट किया। झगड़े की प्रकृति जो भी हो इसका संबंध यदि खेती किए जानेवाले खेतों से है और उ० प्र० भूधारण अधिनियम की चतुर्थ सूची में किसी प्रकार से भी वे आ सकते हैं तो एकमात्र राजस्व न्यायालय को ही इसकी सुनवाई का अधिकार होगा। जब उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा २४२का अधिनियमन हो रहा था उस समय विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ९ के अंतर्गत निवेशित वाद के विषय में कोई अपवाद नहीं बनाया गया। इसलिए यदि वादी ने अपने वाद का निर्माण विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ९ के अंतर्गत किया तो धारा २४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Incoherent	असंबद्ध
Income	आय
,, accruing and arising	प्रोद्भूत और उत्पन्न आय
,, expenditure	आय व्यय
,, per capita	प्रतिव्यक्ति आय
,, Tax Officer	आयकर अधिकारी
,, tax refund	आयकर प्रत्यर्पण
,, tax return	आयकर प्रविवरण
,, Tax Service	आयकर सेवा
,, tax statements	आयकर विवरण
,, ,, verification certificate	आयकर सत्यापन प्रमाणपत्र
Incoming	आगामी, आनेवाला
,,	आय
Incomings	आय
Incompatible	असंगत
,, with justice	न्यायासंगत
Incompetence	अक्षमता
Incompetency	अक्षमता
Incompetent	निर्बल, अक्षम
,, evidence	अप्रतिग्राह्य साक्ष्य
,, remand order	अक्षम प्रतिप्रेषण आदेश
Incomplete	अपूर्ण, अधूरा
In conformity with	के अनुसार
,, connection with	से संबद्ध, के संबंध में, के बारे में
,, consequence	परिणाम स्वरूप, फलतः
,, consideration of	के प्रतिफल स्वरूप
Incosistency	विरोध, असंगति
Inconsistent clauses	असंगत खंड
In consonance with	के अनुसार, के अनुकूल
,, consultation with	से परामर्श करके
,, contempletion of	को ध्यान में रखते हुए, के विचार से
Incontestable	अविवाद्य
In continuation of	की अनुवृत्ति में, के आगे
,, contradiction to	के विपरीत
,, contra-distinction to	के व्यतिरेक में, के प्रतिविपरीत
,, contravention of	के प्रतिकूल, का उल्लंघन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Inconvenience	असुविधा
Inconvertible	अपरिवर्त्य
Incorporated	समाविष्ट, निगमित
Incorporation	समामेलन, निगमन
Incorporeal	अमूर्त
,, chattels	अमूर्त स्वापतेय
,, hereditament	अमूर्त दायाप्ति
,, property	अमूर्त संपत्ति
,, thing	अमूर्त वस्तु
Incorrect	अशुद्ध
,, entry	,, प्रविष्टि
Increase	वृद्धि
Increased power	वर्धित शक्ति
Increment	वृद्धि, संवृद्धि
,, to island	द्वीप में ,,
Incriminate	अपराधारोपण
Incriminating	अपराधारोपक
,, circumstances	अपराधारोपक परिस्थितियाँ
,, evidence	अपराधारोपक साक्ष्य
Incrimination	अपराधारोपण
Inculpable	अदोष
Inculpate	दोषारोपण करना, दोष लगाना
Inculpatory	दोषारोपक
Incumbent	अनिवार्य
Incurable infirmity	असाध्य नैर्बल्य
Incur debts	ऋण लेना
,, liability	दायित्व लेना
,, loss	हानि उठाना
Indebted	ऋण ग्रस्त, ऋणी
Indebtedness	ऋण ग्रस्तता
Indecency	अशिष्टता
Indecent	अशिष्ट, अश्लील
,, assault	बलात्कार
,, exposure	अश्लील अनावरण
,, liberties	,, स्वच्छंदता
Indecently	अशिष्टतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Indecent publication	अश्लील प्रकाशन
Indecisive	अनिर्णीत
In default of	के अभाव में
" " " payment	न देने पर
Indefeasible	अशून्यी कार्य
" estate	" " संपदा
Indefeasible interest	" " हित
Indefinite	अनिश्चित, अनियत
" imprisonment	" कारावास
" punishment	" दंड
" trust	" न्यास
Indelible	अमिट
Indemnification	क्षतिपूर्ति
Indemnify	" करना
Indemnifying	क्षतिपूरण
Indemnity	क्षतिपूर्ति
Indent	व्यादेश, वस्तु आदेश, वीजक
Indents and supplies	" और प्रदाय
Indenture	अनुबंध
Independence	स्वतंत्रता
Independent	स्वतंत्र, स्वाधीन
" contract	" संविदा, अनाश्रित संविदा
" contractor	स्वतंत्र संविदाकार, स्वतंत्र ठेकेदार
" covenant	अनाश्रित संश्राव
In detail	विस्तार में, सविस्तर
Indeterminate	अनियमित, अनिश्चित
" sentence	अनियत दंडादेश
Index	देशना
India Act	भारत अधिनियम
" Government Mint	भारत-शासन-टंक शाला
" Meteorological Office	भारतीय ऋतु विज्ञान कार्यालय
Indian Administrative Service	भारत-प्रशासन-सेवा
" Aircraft Act	भारतीय विमान अधिनियम
" Air Force Act	" वायुसेना अधिनियम
" Arms Act	" आयुध "
" Army Act	" सेना "

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Indian Army Circular	भारतीय सेना परिपत्र
,, Army Orders	,, ,, आदेश
,, Bar Councils Act	,, विधि परिषद् अधिनियम
,, Citizen	,, नागरिक
,, Citizenship Law	,, नागरिकता विधि
,, Companies Act	,, समवाय अधिनियम
,, Contract Act	,, संविदा ,,
,, ,, (Amendment) Act	,, ,,(संशोधन) ,,
,, Copyright Act	,, प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम
,, Councils Act	,, परिषद् अधिनियम
,, Electricity Act	,, विद्युद् अधिनियम
,, Electricity Rules	,, ,, नियम
,, Emigration Act	,, उत्प्रवास अधिनियम
,, Evidence Act	,, साक्ष्य ,,
,, Explosives Act	,, उत्स्फोट ,,
,, Extradition Act	,, प्रत्यर्पण ,,
,, Factories Act	,, निर्माणी ,,
,, (Foreign Jurisdiction) Order in Council	,, (विदेश-क्षेत्राधिकार) परिषद् आदेश
,, Forest Act	,, वन अधिनियम
,, Limitation Act	,, अवधि ,,
,, Lunacy Act	,, उन्माद ,,
,, Majority Act	,, वयस्कता ,,
,, Medical Council Act	,, भैषजिक परिषद् अधिनियम
,, Medical Degrees Act	,, ,, उपाधि ,,
,, Medical Service (Reserved Posts) Rules	,, ,, सेवा (आरक्षित पद) नियम
,, Merchandise Marks Act	,, पण्य चिह्न अधिनियम
,, Mines Act	,, खानि अधिनियम
,, national	,, नागरिक
,, ,, of Indian domicile	,, राष्ट्रिक जो भारत का नागरिक हो
,, Naturalization Act	,, देशीयकरण अधिनियम
,, Navy (Discipline) Act	,, नौ सेना (अनुशासन) अधिनियम
,, Passport Act	,, पारपत्र अधिनियम
,, Penal Code	भारतीय दंड संहिता
,, Piligrim Ship Rules	,, तीर्थयात्रा जलयान नियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Indian Police Act	भारतीय आरक्षि अधिनियम
,, Post Office Act	,, डाकघर अधिनियम
,, Railways Act	,, संयान ,,
,, Registration Act	,, पंजीयन ,,
,, ,, of Ships Act	,, जलयान पंजीयन अधिनियम
,, Stamp Act	,, मुद्रांक अधिनियम
,, ,, Amendment (Extending and Amending) Act	,, मुद्रांक अधिनियम
	,, मुद्रांक-संशोधन-(विस्तारी तथा संशोधी) अधि०
Indian Succession Act	,, उत्तराधिकार अधिनियम
Indictment	अभ्यारोप
Indictor	अभ्यारोपक
Indigent	निर्धन
,, prisoner	,, बंदी
Indignity	अपमान
Indirect	परोक्ष, व्यवहित, अप्रत्यक्ष
,, confession	अप्रत्यक्ष दोष स्वीकृति
Indirectly	परोक्षतः, परोक्ष रूप में
Indiscriminately	बिना विभेद के अविवेकतया
Indiscriminate slaughter	अविवेक वध
Indispensable	अनिवार्य, अपरिहार्य
,, evidence	,, साक्ष्य
,, party	,, पक्ष
Indisputable	अविवाद्य, निर्विवाद्य
,, titte	निर्विवाद्य स्वत्व
Indistinct	अस्पष्ट
Indistinguishable	भेद रहित
Individual	व्यक्ति
Indivisible	अविभाज्य
,, property	,, संपत्ति
Indoor	आभ्यंतर, अंतर्वासी
,, patient	अंतर्वासी रोगी
Inducement	प्रेरणा, प्ररोचन
Induct	पदासीन करना, प्रतिष्ठित करना
In due course	यथाक्रम, यथा समय
,, ,, ,, of law	यथोचित विधि क्रम में
In due process of law	,, ,, प्रक्रिया में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Indulgue	निरत होना
Indulgence	निरति
Industrial Disputes Settlement Act	औद्योगिक-विवाद-समाधान-अधिनियम
Industrial Finance Corporation Act	„ वित्त निगम अधिनियम
Industry	उद्योग
„ department	„ विभाग
In effect	प्रवर्तन में, प्रवृत्त, लागू
Ineffective	निष्प्रभावी, अप्रभावी
Inefficiency	अदक्षता, कार्याक्षमता
Ineligibility	अपात्रता
Ineligible	अपात्र
Inequality	असमता
Inequitable	असाम्यपूर्ण, अन्याय्य
In equity	साम्य में, साम्यतः
Inevitable	अपरिहार्य अवश्यंभावी
„ accident	अपरिहार्य दुर्घटना
„ casualty	„ उपघात
Inevitable march of events	अनिवार्य घटना क्रम
Inexact	अयथार्थ
Inexercise of	का प्रयोग करते हुए, के प्रयोग में
In exercise of powers	अधिकारों का प्रयोग करते हुए
Inexpedient	अनुपयुक्त, अवांछनीय
Inextenso	सविस्तर, विस्तार से, पूरा पूरा
In extreme cases	चरम स्थितियों में
In extremis	मरणासन्न, अंतिमावस्था में
In fact	वस्तुतः
„ facto	„
Infamous	जघन्य, दुष्कीर्तिकर
„ conduct	„ आचरण
„ crime	„ अपराध
Infamy	दुष्कीर्ति, कलंक
Infancy	शैशव, शैशव काल
Infant	शिशु
Infantry	पदाति सेना
Inference	अनुमान, अध्याहार
Inferential fact	आनुभाविक तथ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Inferior	अवर, अधर, निचला
" court	नीचे का न्यायालय
" criminal court	नीचे का दंड "
" holder	अवरधारी
Inferred	अनुमित
Inferior proprietor	अवर अधिस्वामी
Infinite	अनंत, असंख्य
Infirmity	नैर्बल्य
Infirm person	निर्बल व्यक्ति
Inflation	स्फीति
Inflict punishment	दंड देना
Influence	प्रभाव, प्रभावित करना, प्रभाव डालना
Influcntial	प्रभावशाली
Inforce for the time being	तत्समय प्रवृत्त
Inform	सूचित करना, बताना
Informal	अनौपचारिक
Informant	ज्ञापक, सूचक
Informa pauperis	अकिंचन के रूप में, अकिंचनवत्
In formation	सूचना, जानकारी
" and belief	सूचना और विश्वास
In former	भेदी, सूचक
Infringe	अतिलंघन करना
Infringement	अतिलंघन
" of copyright	प्रतिलिप्यधिकार का अतिलंघन
" " rules	नियमों का अतिलंधन
Infront	सामने
Infructuous	निष्फल
In full	पूर्णतः
" satisfaction	के पूर्णतया चुकाने के लिये
In future	भविष्य में, आगे
In futuro	भावी
In good faith	सद्भाव से, सद्भावना से
" " order	सुव्यवस्थित
" " time	समय रहते, समय पर
Ingress	प्रवेश, प्रवेशाधिकार, प्रवेश मार्ग
Ingress and egress	प्रवेश और निर्गम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Ingression	प्रवेश
In gross	व्यक्तिबद्ध, अभूमिबद्ध
Inhabitant	निवासी
In hand	हस्तगत
Inherent	अंतर्निहित, अंतर्भूत
" right	अंतर्निहित अधिकार
Inherit	दाय पाना
Inheritable blood	दायाद्यता
Inheritance	दाय
" certificate	दाय प्रमाणपत्र
Inheritance tax	दायकर
Inherited	दायागत
Inhibit	निरोध करना
Inhibition	निरोध, निरोधन, निरोध लेख
In his discretion	स्वविवेक से, स्वविवेक में
" " own handwriting	अपने हाथ से
" " " person	स्वयं
" " " right	अपने वैयक्तिक अधिकार में
" " view	उसकी दृष्टि में
Inhuman	अमानुषिक, अमानवीय
Inimical	वैरपूर्ण, शत्रुतापूर्ण
In infinitum	अनंत तक
In initio	प्रारंभ में
Iniquitous	असाम्यपूर्ण, अन्यायपूर्ण
Iniquity	असाम्य, अन्याय
In italics	तिरछे अक्षरों में
Initial	प्रारंभिक, प्रथमाक्षर प्रथमाक्षर करना
Initiate	सूत्रपात करना उपक्रमण करना
Injunction	आज्ञा, निषेधाज्ञा
Interim injunction	अंतःकालीन आज्ञा, अंतःकालीन निषेधाज्ञा
mandatory injunction	अधिदेशक आज्ञा
perpetual injunction	शाश्वत निषेधाज्ञा
preliminary injunction	प्रारंभिक आज्ञा
interlocutory "	अंतर्वादीय निषेधाज्ञा
preventive "	निवारक आज्ञा
restraining injunction	अवरोधक आज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क क्रमशः १०), ५॥) और ३॥) है; एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी–१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक अँगरेजी मास के अंतिम सप्ताह में प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि 'संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

सोल एजेंट :—

श्री भगवानदास गोवर्धनदास शाह,
के० २७।११, कूचा माधोदास सामिया,
भैरो बाजार,
वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक श्रौर मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की श्रोर से तथा उसके लिये श्री सिद्धनाथ सिंह,
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

विधि पत्रिका

वर्ष ३] अप्रैल १९५९ : चैत्र से वैशाख (सौर) सं० २०१५-'१६ : शक १८८१ [अंक ४

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

व.द तालिका	१	इलाहाबाद उच्च न्यायालय	३३-४०
लेख खंड	१-३	,, (राजस्व) और संक्षिप्त विवरण	२५-३२
अधिनियम खंड	१२-१६	विधिक अंग्रेजी-हिंदी-शब्दसंग्रह	१६३-१७०
सर्वोच्च न्यायालय	२५-३२		

वार्षिक शुल्क १०) एक प्रति का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद ।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद ।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय ।

संपादक मंडल

(१) श्री ब्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी ।
(२) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी ।
(३) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी ।
(४) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी ।
(५) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी ।
(६) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी ।
(७) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी ।
(८) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी ।
(९) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी ।
(१०) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी ।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवोकेट }
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका अप्रैल १९५९

(शक १८८१)

वाद तालिका

अश्विनी कुमार वि० श्रीमती मोती	इला० उ० न्या०	३७
इंदर गोपाल वि० भीमराज हरललका	,, ,, ,,	२८
एस० आर० तिवारी वि० जिला बोर्ड आगरा	,, ,, ,,	३३
दुर्गा प्रसाद वि० अधिकारीय अवसायक	,, ,, ,,	३६
नरायन तथा अन्य वि० पंजाब राज्य	सर्वो० न्या०	३०
सी० के० अच्युतन वि० केरल राज्य	,, ,,	२८
सी० पी० मेंहरा वि० श्रीमती के० के० मेहरा	इला० उ० न्या०	३४

संक्षिप्त विवरण (पृ० २९ से ३२ तक)

आर० सी० गुप्त वि० राज्य	ए०	आई०	आर०	१९५९	इलाहाबाद	२१९
आर० शंकर वि० राज्य	,,	,,	,,	,,	केरल	१००
एम० एस० एम० शर्मा वि० श्रीकृष्ण सिनहा	,,	,,	,,	,,	सर्वो० न्या०	३९५
एदापल्ली वासिया राजा वि० चको	,,	,,	,,	,,	केरल	८३
किशनलाल वि० कोठारी जेठमल	,,	,,	,,	,,	मध्य प्र०	११५
गौरीशंकर सराफ वि० सेंट्रल हिंदुस्तान बैंक लिमिटेड	,,	,,	,,	,,	कलकत्ता	२९२
हसनाम बरुंटन सिंह वि० भानू देवी	,,	,,	,,	,,	मनीपुर	२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष ३] १९५९ अप्रैल : चैत्र से वैशाख (सौर) सं० २०१५-'१६ : शक १८८१ [अंक ४

संपादकीय

हिंदी राज्यभाषा तो हो चुकी पर व्यावहारिक ढंग पर इसका सर्वत्र कैसे प्रयोग हो इस दिशा में सरकार द्वारा किया हुआ कार्य सर्वथा असंतोषजनक है। इतनी लंबी अवधि के व्यतीत होने पर भी हम देखते हैं कि सर्वत्र अंग्रेजी छाई हुई है, हिंदी की उपेक्षा है। न्यायालय जीवन के केंद्र हैं जहाँ प्रत्येक प्राणी को जाना पड़ता है। तहसीलदार से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक कहीं भी हिंदी का स्थान नहीं है। जहाँ कहीं हिंदी को स्थान मिला और उसका व्यवहार हो रहा है उसके स्वरूप को देखकर आश्चर्य और हँसी आती है। एक प्रकार से उच्च न्यायालयों द्वारा हिंदी प्रयोग करने में बाधा पहुँचाई जाती है, प्रश्रय देना तो दूर रहा। उदाहरण के लिये सेसंस ट्रायल यानी प्राण हत्याओं के मामले में दोहरी लिखावट की आवश्यकता है। एक पेशकार लिखता है दूसरा न्यायकर्ता द्वारा साक्षी का कथन लिखा जाता है। यहाँ से अपील होने पर वहाँ हिंदी के सभी कागजों को अंग्रेजी में अनुवादित कराया जाता है जिसमें निर्धन न्यायार्थी का सैकड़ों रुपया बिगड़ जाता है। बिना अंग्रेजी के अनुवाद के कोई कार्य आगे नहीं बढ़ सकता। इस ढंग पर हिंदी के व्यवहार पर एक अंकुश है। सर्वप्रथम तो हिंदी में जब साक्षी बयान देता है तो उसकी स्वाभाविक भाषा में ही जज क्यों नहीं उसका कथन भाषित करता है? अंग्रेजी में क्यों उसके कथन का अनुवाद जज द्वारा लिखा जाता है? क्या अनुवाद में मौलिकता नहीं नष्ट होती? कभी कभी तो उसके कथन में ऐसे क्षेत्रीय भाषा और ग्राम में प्रयोग की जानेवाली भाषा के शब्द आ जाते हैं जिनका अनुवाद में अर्थ का अनर्थ हो जाता है और उसपर वकीलों को माथापच्ची करनी पड़ती है। लेकिन प्रारंभ में यदि अंग्रेजी को हिंदी के सहेली के रूप में साथ साथ रहना ही आवश्यक हो तो क्यों नहीं उच्च न्यायालयों में हिंदी में ही सारे कागज अनुवादित किए जाते। वहाँ हिंदी को ही प्राथमिकता दी जाती तो अपने आप हिंदी के लिये पृष्ठभूमि तैयार होती रहती। आज एक अपील में निर्धन किसानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इस अनुवाद के लिये जो पैसा व्यय करना पड़ता है उनके ऊपर ऐसी अर्थ की मार है जिसमें वे कराह उठते हैं और इस विषैले सूई से भाषा की भी मृत्यु हो जाती है। सर्वप्रथम इस अनुवाद की प्रथा का अंत होना आवश्यक है और उच्च न्यायालयों में हिंदी के मिसिल के आधार पर ही सब कार्य होना चाहिए। अब तो भारत में प्रायः सभी जज ऐसे हैं जिन्हें हिंदी आती है और आनी चाहिए। हिंदी में निर्णय देने या उसका व्यवहार करने में उन्हें लज्जा का अनुभव नहीं होना चाहिए। हिंदी और अंग्रेजी की दोहरी लिखावट के कारण कभी कभी उलझन पैदा हो जाती है। कभी कभी पेशकार हिंदी में कुछ लिख देते हैं और जज महोदय कुछ। किसी किसी शब्द पर भ्रम भी होने लगता है कि हिंदी का कथन ठीक है या अंग्रेजी का—यह एक समस्या बन जाती है। इसलिए यदि दोनों व्यक्तियों द्वारा हिंदी में ही उनका साक्ष्य भाषित होता तो अनुवाद की गलतियों से छुटकारा मिल जाता।

न्यायालयों में प्रयोग की जानेवाली भाषा को देखकर किसी भी व्यक्ति को दुःख होना स्वाभाविक होगा। कैदक की भाषा को ही देख लीजिए। क्या यह किसी संमानित भाषा का उपहास नहीं है? समन की भाषा पर दृष्टिपात कीजिए—'जो कायदा १२ आर्डर १६ मजमूआ जाब्ता दीवानी में मरकूम है' 'इसी से मुसब्वर होगी' 'बरवक्त मरकूम आला पेश कर दें'। क्या 'मरकूम आला' के स्थान पर पहली तारीख नहीं लिखा जा सकता था? उसी प्रकार मुचलका, जमानत तथा दूसरे छपे फार्मों की भाषा को हिंदी की संज्ञा देना सर्वथा अनुचित ही होगा। नागरी लिपि का जामा पहनाकर उसमें बैठाई जाती है कुछ और वस्तु। व्याकरण को देखकर उससे भी बढ़कर आश्चर्य होता है वाक्य पर। 'हिंदी भाषा क्या व्याकरण से अनुशासित नहीं होती? 'जरूरत रफा करने के लिये' न लिखकर लिखा जाता है 'वास्ते रफा करने जरूरियात।' 'साबित करने के लिये' लिखा जाता है 'वास्ते करने साबित।' इस प्रकार सभी वाक्यों को तोड़ मड़ोड़ करके उनका स्वरूप ही बदल दिया जाता है। सर्वप्रथम व्याकरण की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि वास्तव में हिंदी प्रयोग करने की दिशा में हम गंभीर हों तो यह कार्य सुगमता से हो सकता है पर सरकार प्रचार की भूखी होती है, ठोस कार्य करने का उसे अभी अभ्यास नहीं हुआ है। इतने लंबे वेतनभोगी उच्च न्यायालयों के जजों को पर्याप्त अवकाश रहता है। हिंदी इतना जानते हैं कि वे उसमें निर्णय दे सकते हैं और यदि नहीं जानते हैं तो अच्छी तरह सीख सकते हैं। वर्ष भर में ६ माह छुट्टी का उपभोग करते हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रारंभ में हिंदी शब्दावली न होने के कारण उन्हें कुछ कठिनाई पड़ेगी पर फारसी के कड़े से कड़े शब्द आरंभ में कैसे चल पड़े? आज प्रत्येक की जिह्वा पर 'कंट्रोल' कैसे है? लाटरी, टिकट, फाइन, मसराइज, सुपरफाइन इत्यादि शब्दों का साधारणतया सर्वत्र व्यवहार होता है। बहुत से अंग्रेजी शब्द हैं जिन्हें ग्रामीण जनता तक जानती है। व्यवहार करते रहने पर अभ्यास से सब कुछ सुगम हो जाता है। आज 'राज्यपाल' सभी कहते हैं। 'गवर्नर' शब्द फीका पड़ गया। हाँ यह आवश्यक है कि सब प्रांतों में, सभी न्यायालयों में प्रयोग की जानेवाले शब्दों में एकरूपता हो। किसी स्थान पर 'वकील' किसी पर 'अभिभाषक' किसी स्थान पर कोई तीसरा शब्द कहा जाय तो अड़चन का अंत नहीं होगा। साथ ही यह भी आवश्यक है कि कुछ शब्द जिनका हमारे घर में बहुत दिनों तक निवास हो गया है वे अब अतिथि न होकर अपने घर के हो गए हैं, उन्हें निकालना ठीक नहीं। ये शब्द भांडार की वृद्धि करने के साथ ही साथ बहुत से अर्थों को संबोधित करने के लिये इनके प्रयोग से उपयुक्त शब्द भी प्राप्त हो जायँगे। जैसे 'डिगरी', 'वकील', 'तमादी', इत्यादि ऐसे शब्द हैं जिन्हें हम अपना बनाकर उनसे काम ले सकते हैं। उच्च न्यायालयों में जजों के लिये यह अनिवार्य होना चाहिए कि वे अपना निर्णय हिंदी भाषा में दें। इसके लिये एक अवधि निर्धारित हो जानी चाहिए। एक वर्ष की अवधि देकर उन्हें आदेश प्राप्त होना चाहिए कि अमुक तिथि से कोई निर्णय अंग्रेजी में न दिए जाँय। यदि यह कार्य प्रारंभ हो तो चारो ओर हिंदी वेग के साथ चल पड़ेगी। सरकार को अपनी ओर से इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णयों को प्रकाशित करना चाहिए या दूसरी संस्थाएँ जो भी इन्हें प्रकाशित करें उन्हें अनुदान और दूसरी सहायता प्रदान करनी चाहिए। पुराने निर्णयों को जो अब भी चलू हैं हिंदी में अनुवादित कर देना चाहिए। समझ में नहीं आता कि इसे करने में इतना बिलंब क्यों किया जा रहा है। केवल उपदेश या कथोपकथन से तो यह कार्य नहीं होनेवाला है। भाषा विभाग जो स्थापित किया गया है वह सर्वथा निष्प्रयोजन है। यदि न्यायालयों में जांच की जाय तो ज्ञात होगा कि एक पग भी कार्य आगे नहीं बढ़ पाया है, बढ़े भी तो कैसे! जितनी नजीरें हैं सब अंग्रेजी में है। आश्चर्य है कि अदालत पंचायत के पंच जो प्रायः अंग्रेजी भाषा नहीं जानते उनके लिये पंचायत के संबंध में निर्णय हिंदी भाषा में नहीं प्राप्त हो सकते। वे बहुधा कानून की जानकारी से शून्य रहते हैं। कानूनी पुस्तकें अंग्रेजी में होने के कारण वे अध्ययन नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में उनका निर्णय एकांगी, कानून की धाराओं के विपरीत होता है वे पंच सर्वथा काठ के पुतले से न्याय की कुर्सी पर बैठकर न्याय का उपहास करते हैं। उनके पास कानून का अस्त्र ही नहीं जिसके सहारे न्याय की उपलब्धि हो। आगे चलकर उनके निर्णय प्रायः गैरकानूनी ठहरा दिए जाते हैं। एक ओर पंचायत राज बने, न्याय का विकेंद्रीकरण हो, देहात में लोगों की अभिरुचि कानून में उत्पन्न कराने का प्रयास किया जाय पर, उनके मस्तिष्क से कानून से भेंट न हो, अंग्रेजी के माध्यम से कानून जाने या तो न्याय की कुर्सी पर बैठकर कानून से अपरिचित रहे, कभी जीवन में उच्चन्यायालयों में निर्णय पढ़ने का अवसर ही प्राप्त न हो तो वे कहाँ तक न्याय कर सकेंगे? जिस न्याय की आधार शिला कानून है उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। कम से कम पंचायत संबंधी जो भी उच्चन्यायालयों के निर्णय हों उन्हें तत्काल हिंदी में दिया जाना चाहिए और पंचायत संबंधी निर्णयों की ऐसी पुस्तिका प्रत्येक पंच के हाथ में होनी चाहिए।

सिद्धनाथ सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वानुबद्ध

(२) लेखा तथा रोकड़-पत्र बोर्ड द्वारा राज्य सरकार को प्रस्तुत किये जायेंगे जो परीक्षक, स्थानीय निधि लेखा उत्तर प्रदेश, द्वारा उनकी लेखा-परीक्षा करायेगा।

(३) लेखा-परीक्षा होने के पश्चात् लेखे को मुद्रित किया जायगा और उसकी प्रतिलिपियाँ, लेखा-परीक्षा के प्रतिवेदन की प्रतिलिपियों सहित, उपकुलपति द्वारा बोर्ड को प्रस्तुत की जायँगी जिन्हें वह राज्य सरकार को ऐसी टिप्पणी के साथ भेजेगा जो वह आवश्यक समझे।

कुछ अन्य उपबंध

३५—इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् किसी भी समय तथा उस समय तक जब तक विश्वविद्यालय के प्राधिकारी यथाविधि संघटित न हो जायँ, विश्वविद्यालय के किसी भी पदाधिकारी की नियुक्ति उपकुलपति कर सकता है। ऐसी नियुक्ति तथा उसकी शर्तों के लिये कुलपति का पूर्वानुमोदन आवश्यक होगा।

कठिनाइयों का निवारण

३६—(१) राज्य सरकार इस अधिनियम को कार्यान्वित करने के संबंध में होने वाली किन्हीं कठिनाइयों के निवारणार्थ सरकारी गजट में प्रकाशित आज्ञा द्वारा—

(क) निदेश दे सकती है कि यह अधिनियम तथा तदन्तर्गत निर्मित कोई परिनियम ऐसी अवधि में जो उक्त आज्ञा में निर्दिष्ट की जाय, ऐसे अनुकूलनों के अधीन, चाहे वे परिष्कार, परिवर्धन या लोप के रूप में हों, जिन्हें वह आवश्यक और इष्टकर समझे, प्रभावी होंगे, अथवा

(ख) निदेश दे सकती है कि इस अधिनियम के अधीन विश्वविद्यालय के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी द्वारा प्रयोक्तव्य या संपादनीय अधिकार, कर्तव्य तथा कृत्य उस समय तक जब तक कि पदाधिकारी या प्राधिकारी यथोचित रूप से नियुक्त या संघटित न हो जाय, किसके द्वारा और किस रीति से प्रयुक्त या संपादित किये जायेंगे; अथवा

(ग) ऐसे अन्य अस्थायी उपबंध बना सकती है जिन्हें वह आवश्यक या इष्टकर समझे।

(२) उपधारा (१) के अधीन दी गई किसी भी आज्ञा पर किसी भी विधि न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति न की जा सकेगी कि ऐसी कोई कठिनाई, जिसका उक्त उपधारा में उल्लेख है, विद्यमान नहीं थी या उसके निवारण की आवश्यकता नहीं थी।

———

विज्ञप्ति

उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम, १९५९ की धारा ४१ द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करके राज्यपाल महोदय उक्त धारा में निदिष्ट विषयों की व्यवस्था के लिये निम्नलिखित आज्ञा देते हैं:—

उत्तर प्रदेश नगर महापालिका (निर्वाचन नामावली का बनाना एवं पुनरीक्षण) आज्ञा, १९५९

प्रारंभिक

१—संक्षिप्त शीर्ष नाम—(१) इस आज्ञा का नाम उत्तर प्रदेश नगर महापालिका (निर्वाचक नामावली का बनाना एवं पुनरीक्षण) आज्ञा, १९५९ होगा।

(२) इसका प्रचलन तुरंत होगा।

२—परिभाषायें—इस आज्ञा में, जब तक विषय या प्रसंग में कोई अन्य अर्थ अपेक्षित न हो :—

(क) 'अधिनियम' का तात्पर्य तत्समय प्रवृत्त उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम १९५९ से है।

(ख) 'अनुसूची' का तात्पर्य इस आज्ञा से अनुलग्न अनुसूची से है।

(ग) 'सभा' का तात्पर्य राज्य विधान सभा से है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) 'संचालक' का तात्पर्य 'निर्वाचन संचालक (स्थानीय निकाय)' से है।

(ङ) 'महापालिका कार्यालय' का अर्थ है नगर की नगर महापालिका का कार्यालय, और जब तक ऐसा कार्यालय अस्तित्व में नहीं आता तब तक उस नगर पालिका का कार्यालय जो नगर क्षेत्र अथवा उसके भाग पर अधिकार का प्रयोग करता हो।

३—निर्वाचक नामावली पर हुये व्यय का अभिलेख—नगर की निर्वाचक नामावली के बनाने एवं पुनरीक्षण के संबंध में हुये समस्त व्यय का अभिलेख ऐसे अधिकारी द्वारा और इस प्रकार से रखा जायगा जो राज्य सरकार निर्दिष्ट करें।

नामावलियों का बनाना तथा उनका प्रकाशन

४—निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारियों को सहायता—निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी संचालक द्वारा इस संबंध में नियत प्रतिबंधों के अधीन अपने कक्ष की निर्वाचक नामावलियों के बनाने तथा उनके पुनरीक्षण में सहायता के लिये ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त कर सकता है जिन्हें वह उपयुक्त समझे।

५—नामावलियों का प्रपत्र तथा उनकी भाषा—कक्ष की निर्वाचक नामावली उस प्रपत्र में बनायी जायगी जिसमें समय समय पर रिप्रेजेंटेशन आफ दि पिपुल ऐक्ट, १९५० के अधीन सभा के लिये निर्वाचक नामावली बनायी जाती है और यह हिंदी में होगी।

६—नामावलियों का बनाया जाना—(१) अधिनियम के अधीन प्रत्येक कक्ष के लिये प्रथम निर्वाचक नामावली उस कक्ष के क्षेत्र में तत्समय प्रवृत्त सभा निर्वाचक नामावलियों की सहायता से, उसी प्रकार बनायी जायगी, जैसा संचालक निदेश देगा, और वह कक्षों के सीमांकन हो जाने के बाद तुरंत ही प्रकाशित कर दी जायगी।

(२) तत्पश्चात् किसी भी समय संचालक ऐसा निदेश दे सकता है कि अमुक कक्ष के लिये एक नयी निर्वाचक नामावली बनायी जाय और ऐसी नामावली उस कक्ष के क्षेत्र तत्कालीन सभा निर्वाचक नामावलियों की सहायता से उसी प्रकार से बनायी जायगी जैसा संचालक निदेश दें।

(३) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी निर्वाचक नामावली पर अपने हस्ताक्षर करेगा और उस पर अपनी मुहर लगायेगा।

७—नामावलियों के प्रकाशन का ढंग—(१) अधिनियम तथा इस आज्ञा के अधीन निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी द्वारा किसी कक्ष के लिये तैयार की गयी निर्वाचक नामावली का प्रकाशन, संचालक द्वारा नियत दिनांक अथवा दिनांकों में से किसी दिनांक को इसकी एक प्रति महापालिका के कार्यालय में चिपका कर किया जायगा।

(२) कक्ष में ढिंढोरा पिटवाकर अथवा ध्वनि विस्तारक यंत्र द्वारा निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी इस तथ्य की सार्वजनिक सूचना देगा कि निर्वाचक नामावली प्रकाशित हो गयी है और महापालिका के कार्यालय में काम के घंटों में उसकी प्रति का निरीक्षण निःशुल्क किया जा सकता है।

(३) अनुच्छेद (१) में उल्लिखित प्रति प्रकाशन के दिनांक से ७ दिन तक की अवधि में कार्यालय के काम के घंटों में निःशुल्क निरीक्षण के लिये उपलब्ध रहेगी।

नामावलियों का पुनरीक्षण

८—कक्ष की नामावली में नाम सम्मिलित कराने के अभ्यर्थन (दावे)—कोई भी व्यक्तिः—

(क) जिसका नाम कक्ष से संबद्ध क्षेत्र की सभा निर्वाचक नामावलियों में लिखा हो परंतु उस कक्ष की निर्वाचक नामावली में न सम्मिलित किया गया हो, या

(ख) जिसका नाम गलती से किसी अन्य कक्ष की निर्वाचक नामावली में लिख गया हो, या

(ग) जिसका नाम किसी भी निर्वाचक नामावली में न लिखा गया हो या कक्ष से संबद्ध क्षेत्र की नामावलियों में न लिखा गया हो किंतु वह अन्य प्रकार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस कक्ष की निर्वाचक सूची में अपना नाम लिखाने का अधिकारी हो, या

(घ) जिसका नाम किसी अयोग्यता के कारण उस कक्ष की निर्वाचक नामावली से काट दिया गया हो किंतु जो अब यह अध्यर्थन करता है कि उसकी अयोग्यता दूर हो गयी है ।

निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी के पास कक्ष की निर्वाचक सूची में अपना नाम सम्मिलित कराने के लिये प्रार्थनापत्र दे सकता है :

किंतु प्रतिबंध यह है कि जब तक संचालक द्वारा विपरीत निदेश न दिया जाय, उपर्युक्त खंड (ग) के अंतर्गत कोई प्रार्थनापत्र उस समय तक न लिया जायगा जब तक उसके साथ प्रत्येक निविष्टि (इंदराज) के लिये १ रु० शुल्क न भेजा जायगा, और वह धनराशि किसी भी स्थिति में वापस न की जायगी ।

और प्रतिबंध यह भी है कि महापालिका के स्थान के अथवा स्थानों की पूर्ति के लिये कक्ष में निर्वाचनार्थ मतदान के लिये नियत दिनांक के ठीक पूर्व के ६ दिनों में किसी भी दावे अथवा आपत्ति को ग्रहण नहीं किया जावेगा ।

९—निर्वाचक नामावली की निविष्टियों पर आपत्तियाँ—कोई भी व्यक्ति :

(क) जो कक्ष की सूची में अपने संबंध में किसी निविष्टि के विवरण पर आपत्ति करना चाहता हो, या

(ख) जो कक्ष की सूची में किसी अन्य व्यक्ति का नाम लिखे जाने पर इस आधार पर आपत्ति करता हो कि उस व्यक्ति का नाम उस कक्ष के क्षेत्र से संबद्ध सभा निर्वाचक सूचियों में सम्मिलित नहीं है, या

(ग) जो कक्ष की नामावली में किसी नाम के रहने पर इस आधार पर आपत्ति करता हो कि व्यक्ति अधिनियम की धारा ३७ के अनुसार कक्ष की नामावली में निबंधित किये जाने के लिये अयोग्य हो गया है,

निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी को, नाम कटवाने या विवरण ठीक कराने के लिये, जैसी भी स्थिति हो, प्रार्थना पत्र दे सकता है ।

१०—अध्यर्थन (दावे) तथा आपत्ति संबंधी विवरण—(१) अनुच्छेद ८ के अंतर्गत अध्यर्थन लिखित रूप में किया जायगा और उस पर या तो वह व्यक्ति स्वयं हस्ताक्षर करेगा जो कक्ष की निर्वाचक नामावली में अपना नाम सम्मिलित करना चाहता है या उस पर उस व्यक्ति द्वारा लिखित रूप में अधिकृत उसका कोई अभिकर्ता हस्ताक्षर करेगा और उसे डाक द्वारा न भेजे जाने की स्थिति में या तो वह व्यक्ति उसे स्वयं प्रस्तुत करेगा या उसका अभिकर्ता प्रस्तुत करेगा ।

(२) अध्यर्थन में वे कारण भी लिखे जायँगे जिनके आधार पर नाम संमिलित कराने का प्रयास किया गया है और उसमें जहां आवश्यकता हो उसकी योग्यताओं का भी समावेश किया जायगा ।

(३) अनुच्छेद ९ के अधीन आपत्ति लिखित होगी और उपानुच्छेद (१) के अनुसार वह दो प्रतियों में हस्ताक्षर करके प्रस्तुत की जायगी, जिसमें से प्रति उस व्यक्ति पर तामील की जायगी, जिसका नाम संमिलित करने के विरुद्ध आपत्ति प्रस्तुत की गयी हो ।

(४) उस व्यक्ति के विषय में, जिसका नाम संमिलित करने के संबंध में आपत्ति की गयी हो, अथवा उस विवरण के संबंध में, जिसे वह ठीक कराना चाहता हो, आपत्ति में वे सब विवरण होंगे, जो नामावली में दर्ज हों और उस आपत्ति में वे कारण भी दिये होंगे जिनके आधार पर आपत्ति की गयी हो ।

११—नोटिस और उसका तामील किया जाना—(१) ऐसी दशाओं के अतिरिक्त, जिनमें निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी अध्यर्थन अथवा आपत्ति की वैधता से प्रत्यक्ष रूप से संतुष्ट हो, प्रत्येक व्यक्ति पर, जिसका अध्यर्थन अथवा जिसकी आपत्ति के संबंध में प्रार्थनापत्र प्राप्त होता है अथवा अध्यर्थन या आपत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत करनेवाले उस व्यक्ति के अभिकर्ता और प्रत्येक ऐसे व्यक्ति पर, जिसका नाम संमिलित करने के संबंध में आपत्ति हो, अनुसूची के प्रपत्र १ में एक नोटिस तामील की जायगी, जिसमें वह स्थान और समय निर्दिष्ट रहेगा, जहाँ और जब उसके अध्यर्थन अथवा उसकी आपत्ति पर विचार किया जायगा, और उसमें यह भी निर्देश किया जायगा कि वह अथवा उसका अभिकर्ता इस प्रकार के साक्ष्य के साथ उपस्थित रहे, जिसे वह प्रस्तुत करना चाहता हो।

(२) उस व्यक्ति को, जिसका नाम संमिलित करने के संबंध में आपत्ति की गयी हो, नोटिस देने के साथ आपत्ति की भी एक प्रति दी जायगी।

(३) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी द्वारा उपानुच्छेद (१) के अधीन जारी की गयी नोटिस, यदि संभव हो, वैयक्तिक रूप से तामील की जायगी और वैयक्तिक रूप से तामील न हो सकने पर उसे रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा या संबद्ध व्यक्ति के कक्ष में उसके निवास स्थान अथवा पूर्व निवास स्थान पर उसकी एक प्रति लगाकर, तामील की जायगी। वैयक्तिक अथवा अन्य रूप से तामील करने का प्रमाणपत्र इस प्रकार तामील करने का निश्चायक प्रमाण समझा जायगा।

१२—अध्यर्थन (दावों) तथा आपत्तियों की सुनवाई और उस पर निर्णय—(१) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी योजित अध्यर्थन अथवा आपत्ति की संक्षिप्त जाँच करेगा और उन पर अपना निर्णय देगा और अपने निर्णय के अनुसार निर्वाचक नामावली में परिवर्द्धन, निष्कासन अथवा परिवर्तन का आदेश देगा।

जाँच के प्रयोजनों के लिये अनुच्छेद ७ के अधीन प्रकाशित निर्वाचक नामावली ठीक परिकल्पित की जायगी।

(२) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी का निर्णय अंतिम होगा।

(३) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी अनुसूची के प्रपत्र २ में अध्यर्थनों तथा आपत्तियों की एक सूची रखे रहेगा।

१३—निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी द्वारा संशोधन—(१) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी समय समय पर अधिनियम की धारा ३७ की उपधारा (२) और धारा ३९ की उपधारा (२) के आदेशों का पालन करेगा और इस प्रयोजन के लिये यदि आवश्यकता हो, रिप्रेज़ेंटेशन आफ दि पीपुल ऐक्ट, १९५० की धारा २२ के अधीन नियुक्त निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी से इस प्रकार की जाँच कर सकता है जैसा कि वह उचित समझे।

(२) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी किसी भी समय (१) लिपिक अथवा मुद्रण संबंधी किसी अशुद्धि को ठीक करने, (२) निर्वाचक नामावली में दोहरी निविष्टियों को हटाने, या (३) अधिनियम की धारा ४१ के खंड (ङ) के अंतर्गत नाम के संमिलित किये जाने के औचित्य पर संतुष्ट होकर नामावली में किसी व्यक्ति के नाम के संमिलित करने के लिये आदेश दे सकता है और इस प्रकार की अशुद्धि तदनुसार ठीक कर दी जायगी और दोहरी निविष्टि भी हटा दी जायगी।

(३) यदि सभा निर्वाचक नामावलियों में लिखे जाने योग्य किसी क्षेत्र के व्यक्तियों के नाम इस प्रकार की नामावलियों में संमिलित होने से बड़े पैमाने पर छूट गये हों तो संचालक ऐसे प्रत्येक कक्ष के, जिसमें इस प्रकार के क्षेत्र का कोई भाग संमिलित हो, निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी को निदेश कर सकता है कि वह उसके निदेशानुसार कक्ष की निर्वाचक नामावली में ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का नाम संमिलित करके उसे संशोधित करे, जिसके संबंध में निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि यदि बड़े पैमाने पर नाम न छूट गये होते तो वह व्यक्ति सभा निर्वाचक सूची या कक्ष में संमिलित क्षेत्र की नामावली में दर्ज होता, और निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी तदनुसार संशोधन करेगा।

किंतु प्रतिबंध यह है कि प्रथम अथवा किन्हीं अनुवर्ती अथवा वार्षिक पुनरीक्षण कृत नामावलियों के प्रकाशन के समय के अतिरिक्त, इस प्रकार किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधन के हो जाने पर संशोधित निर्वाचक नामावली अनुच्छेद ७ में नियत ढंग से प्रकाशित की जायगी।

१४—संशोधन, इत्यादि कैसे किये जायँ—(१) अधिनियम की धारा ३९ की उपधारा (२) के अधीन किसी भी कक्ष की नामावली में उसी प्रकार परिवर्धन, निष्कासन, परिवर्तन तथा अन्य संशोधन किये जायेंगे, जिस प्रकार कि रिप्रेजेंटेशन आफ दि पीपुल ऐक्ट, १९५० के अधीन निर्वाचक वामावलियों में परिवर्धन, निष्कासन, इत्यादि किये गये हों।

(२) अधिनियम की धारा ३७ के अधीन मतदान के अयोग्य ठहराये गये व्यक्तियों के नाम यथासंभव उसी प्रकार काट दिये जायेंगे और इस प्रकार की अयोग्यता दूर हो जाने के उपरांत वे नाम उसी प्रकार पुनस्संस्थापित कर लिये जायेंगे, जिस प्रकार कि रिप्रेजेंटेशन आफ दि पीपुल ऐक्ट की धारा १६ की उपधारा (२) के अधीन नाम काटने और उनको पुनस्संस्थापित करने के लिये नियत किया जाय।

(३) रिप्रेजेंटेशन आफ दि पीपुल्स ऐक्ट की धारा २३ के अधीन वार्षिक निर्वाचक नामावलियाँ बनाने के प्रयोजनों के लिये अनुच्छेद १२ तथा अनुच्छेद १३ के उपानुच्छेद (२) और (३) के अधीन जिन संशोधनों के निमित्त आदेश दिये जायेंगे वे, इस संबंध में संचालक के किसी भी सामान्य निदेशों के अनुसार, या तो निर्वाचक नामावली तथा तद्भागी संशोधनों की सूची में, यदि कोई हो, किये जायेंगे या यदि अधिक सुविधाजनक हो तो रिप्रेजेंटेशन आफ दि पीपुल ऐक्ट के अधीन संशोधनों की सूची तैयार करने के हेतु नियत प्रपत्र में संशोधनों की एक सूची तैयार करके, किये जायँगे।

(४) अनुच्छेद ८ के खंड (ख) के अधीन किसी व्यक्ति का अध्यर्थन स्वीकृत हो जाने पर, अध्यर्थन स्वीकृत करने वाला निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी उसकी सूचना उस कक्ष के निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी के पास भेज देगा जिसकी निर्वाचक सूची में उस व्यक्ति का नाम गलती से संम्मिलित कर लिया गया था और इस प्रकार सूचित किया गया निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी तुरंत ही उस व्यक्ति का नाम उस दूसरे कक्ष की निर्वाचन सूची में से निकाल देगा या निकलवा देगा।

१५—नामावली का वार्षिक पुनरीक्षण—(१) कक्ष की किसी भी प्रचलित निर्वाचक नामावली का वार्षिक पुनरीक्षण कक्ष के क्षेत्र की संबद्ध वर्ष की सभा निर्वाचक नामावलियों के अंतिम प्रकाशन के एक मास के भीतर किया जायगा।

(२) निर्वाचक नामावली का वार्षिक पुनरीक्षण करने के प्रयोजन से निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी संशोधन की एक सूची इसलिये तैयार करायेगा जिससे कि उसमें दिये हुए संशोधनों द्वारा परिष्कृत, उस समय प्रचलित निर्वाचक नामावली, कक्ष के उस क्षेत्र के लिये प्रचलित सभा निर्वाचक नामावली के समान बनायी जा सके।

(३) संशोधनों की सूची उसी रूप में तैयार की जायगी जैसी कि रिप्रेजेंटेशन आफ दि पीपुल ऐक्ट, १९५० की धारा २३ के अधीन प्रति वर्ष निर्वाचक नामावली तैयार करने के हेतु उक्त ऐक्ट के अधीन संशोधनों की सूची तैयार की जाती है।

(४) कक्ष के लिये उपानुच्छेद (१) के अंतर्गत तैयार की गयी निर्वाचक नामावली, संशोधनों सहित उसी प्रकार प्रकाशित की जायगी; जैसा कि अनुच्छेद ७ में दिया हुआ है, और वह उस कक्ष के लिए पुनरीक्षण निर्वाचक नामावली समझी जायगी।

(५) अनुच्छेद ७ से १४ तक के उपबंध, जहाँ तक कि उनका व्यवहार हो सकता है, प्रत्येक ऐसी पुनरीक्षण सूची के संबंध में उसी प्रकार लागू होंगे जैसे कि वे अधिनियम के अधीन मौलिक रूप से तैयार किये गये निर्वाचक सूचियों के संबंध में लागू होते हैं।

(६ उस दशा में जब कि इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधों के अधीन किसी भी कक्ष के लिये संशोधनों की सूची तैयार की जाती है तो संपूर्ण निर्वाचक सूची को फिर से प्रकाशित करना आवश्यक न होगा, परंतु केवल संशोधनों को सूची को ही प्रकाशित करना आवश्यक होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। इसका परिणाम यह हुआ कि नीलामी विक्रय में पुत्रों का हिस्सा नीलामी क्रेता को नहीं मिला।

३—बंबई भू राजस्व संहिता की धारा १५५ के अंतर्गत केवल बाकीदार अर्थात् पिता का ही अधिकार स्वत्व और हित बेचा जा सकता था और इसमें संयुक्त परिवार के अन्य सदस्यों का हिस्सा नहीं आ सकता।

यहाँ निर्णय के लिये प्रश्न है कि क्या पिता का उक्त ऋण 'अव्यावहारिक' था? इस शब्द का अनुवाद अनेक प्रकार से किया गया है कि जो विधि सम्मत न हो या जो न्याय सम्मत न हो या जो विधि के अंतर्गत या सामान्य परिस्थिति में माना नहीं जाता हो। कोलब्रुक ने इसका अनुवाद किया है कि "वह ऋण जो उस प्रयोजन के लिये हो जो नैतिकता के प्रतिकूल पड़ता हो।" कुछ और निर्णय हैं जिनमें इस शब्द का इस अर्थ में अनुवाद किया गया है—"वह ऋण जो विधिक तर्क के अनुसार वैध नहीं है।" ए० आई० आर० १९४३ प्रिवी कौंसिल में कहा गया था कि कोलोब्रुक का अर्थ सबसे अच्छा है और स्मृतियों में जिस अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है उससे मेल खाता है तथा इसकी और ठीक परिभाषा नहीं दी जा सकती।

ए० आई० आर० १९३४ प्रिवी कौंसिल २३८ में निर्णय हुआ था कि अनधिकारिक प्रयोजनों के लिये रुपया निकालना जो भारतीय दंड संहिता की धारा ४०५ के अंतर्गत सापराध न्यास दुरुपयोग (क्रिमिनल ब्रीच आफ ट्रस्ट) होता है उसका बंधन पुत्रों पर नहीं है किंतु व्यवहार ऋण (सिविल डेट) जो लेखा के संबंध में पिता के रुपया प्राप्त करने का होता है उसे 'अव्यवहारिक' नहीं कहा जा सकता।

हमारे समक्ष अपीलकर्ता ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि यह ऋण अव्यवहारिक था और इसके लिये उप प्रस्तोता के आदेश का सहारा लिया है जिसमें अन्य वस्तुओं के साथ न्यास दुरुपयोग के कारण इसे देनदार ठहराया गया था। किंतु उप प्रस्तोता ने इसे देनदार बनाने का जो भी कारण दिया हो वह यहाँ पर इसे 'अव्यवहारिक' प्रमाणित करने के लिये साक्ष्य में प्रयुक्त नहीं हो सकता। वह आदेश तद्अंतर्गत सत्य के तथ्य प्रमाणित करने के लिये प्रतिग्राह्य नहीं हो सकता। यह केवल यही दिखला सकता है कि एक निर्णय हुआ था; यह साक्ष्य में प्रतिग्राह्य नहीं हो सकता।

२

कहा गया कि चूँकि पिता ने अपने काम में असावधानी बरती इसलिए वह ऋण अव्यावहारिक हुआ। किंतु आज के व्यापारिक युग में पिता का यह काम 'अव्यावहारिक' नहीं कहा जा सकता।

दूसरे विषय पर तर्क किया गया कि जो बँटवारे का मुकदमा निवेशित किया गया है उससे संयुक्त सामाजिक स्थिति का पृथक्करण हो गया इसलिए केवल पिता के हिस्से के ही विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही की जा सकती है। ऐसी बात नहीं है। मिताक्षरा संदायदता (कोपार्सनरी) परिवार में पुत्र का अधिकार एक विशेष ढंग का होता है।

हिंदू विधि में दो परस्पर विरोधी सिद्धांत प्रचलित हैं। एक यह है कि पुत्र जन्म से ही पूर्वजों की संपत्ति में निहित अधिकार प्राप्त करता है, दूसरा यह कि पुत्र पर पिता के उस ऋण के चुकाने का धार्मिक बंधन रहता है जो ऋण अनैतिकता से लांछित न हो। हिंदू विधि के विद्वानों का यह कहना था कि पुत्र अपने पूर्वजों से संपत्ति प्राप्त किया हो या नहीं ऐसे विधिक ऋण के चुकाने का दायित्व उस पर है किंतु न्यायालयों ने संपत्ति निरपेक्ष इस बंधन या दायित्व को नहीं माना और इस धार्मिक कर्तव्य को विधिक प्रकृति का बना दिया। अपने ऋण को चुकाने के लिये पिता को यह अधिकार है कि समस्त संदायदता (कोपार्सनरी) संपत्ति का हस्तांतरण कर दे और इसमें पुत्रों का हिस्सा भी आ सकता है और पिता के ऋण दाताओं का भी यह अधिकार है कि संपूर्ण संपत्ति के विरुद्ध वे कार्यवाही कर सकते हैं। ऋणदाताओं का यह अधिकार पुत्रों के इस अधिकार के अधीन होता है कि वे प्रमाणित करें कि यह ऋण अव्यावहारिक था तथा अवैध तथा अनैतिक प्रयोजनों के लिये लिया गया था। यह सिद्धांत अब निश्चित हो चुका है तथा इसमें किसी प्रकार का मतभेद नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः जब तक पुत्र यह नहीं प्रमाणित कर देता है कि जिस ऋण के बारे में डिग्री पारित हुई है वह अवैध या अनैतिक प्रयोजन के लिये लिया गया था तब तक ऋणदाताओं को यह अधिकार है कि केवल पिता के विरुद्ध पारित डिग्री के निष्पादन में संपूर्ण संपदा को बेच दें। ए० आई० आर० १९५२ सर्वोच्च न्यायालय १७० इसके समर्थन में है।

इस प्रकार पुत्र का ऋण चुकाने का दायित्व बँटवारे के बाद भी रहता है। पुत्र पर इसका धार्मिक बंधन है और यह नहीं कहा सकता की हमारी संपदा पर इसका कोई बंधन नहीं है। इसलिए बँटवारे के बाद यद्यपि अपने ऋण को चुकने के लिये पिता को यह अधिकार नहीं रहता कि पुत्र के हिस्से की संपत्ति बेच दे किंतु धार्मिक बंधन के सिद्धांत के आधार पर निर्णीत ऋणदाता का पहलेवाली संदायदता की संपत्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार ज्यों का त्यों रहता है उस अधिकार पर बँटवारे का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस पर भी मतभेद नहीं है। पिता, पुत्र के बीच बँटवारा होने पर पुत्र इस बंधन से मुक्ति नहीं पा सकता।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि किस प्रकार इस अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। हिंदू विधि का यह सिद्धांत है कि संदायदता परिवार में पिता के विरुद्ध जो डिग्री होती है उसका बंधन पुत्रों पर भी होता है कारण कि ऐसा समझा जाता है कि उनका प्रतिनिधित्व पिता ने किया (ए० आई० आर० १९२९ इलाहाबाद ७२६। ए० आई० आर० १९५३ सर्वो० न्या० ४८७) में कहा गया था कि पिता के विरुद्ध रुपए के बाद में पुत्र आवश्यक पक्ष नहीं होते किंतु प्रतिवादियों में वे रखे जा सकते हैं। बँटवारे का प्रभाव केवल इतना ही होता है कि उपभोग करने के ढंग में परिवर्तन हो जाता है और पहले जो एक में था अब वह अलग अलग हो जाता है इसलिए संपूर्ण संदायदता की संपत्ति का कुर्क कर लिया जाना उपभोग के ढंग में परिवर्तन मात्र से प्रभावित नहीं हो सकता।

इस प्रश्न के लिये कि संयुक्त परिवार की संपत्ति में पुत्रों का हिस्सा कहाँ तक कुर्क किया जा सकता है या बेचा जा सकता है ए० आई० आर० १९५३ सर्वो० न्या० ४८७ में सिद्धांत निश्चित किया गया है कि यदि ऋण अनैतिकता से लांछित नहीं है तो ऋणदाता उसकी वसूली के लिये परिवार की संयुक्त संपत्ति में पुत्रों के संदायादता के हिस्से की कुर्की और उसके बेचने की कार्यवाही कर सकता है। यह ऋणदाता की इच्छा पर निर्भर करता है। वह चाहे तो केवल पिता के हिस्सा के ही विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है तथा यदि उसकी इच्छा हो तो संयुक्त परिवार की संपत्ति के विरुद्ध जिसमें पुत्रों का भी हिस्सा है, कार्यवाही कर सकता है। अतः डिग्री के निष्पादन में यह देखना पड़ता है कि वास्तव में कौन सा हिस्सा बेचा गया।

इस विषय के बारे में तर्क किया गया है कि डिग्री के बाद का बँटवारा जो नीलामी विक्रय के पहले हुआ वह यद्यपि संपूर्ण संपत्ति के बारे में था किंतु वास्तव में यह पिता के हिस्से तक ही सीमित रह गया कारण कि अपने ऋण को चुकाने के लिये अब पिता संयुक्त संपत्ति को बेच नहीं सकता। किंतु यह बात पुत्र के धार्मिक बंधनवाली शर्त की अवहेलना कर देती है। पिता के उस ऋण को चुकाने का धार्मिक बंधन पुत्र पर होता है जिस ऋण को पिता ने किसी अनैतिक प्रयोजन के लिये नहीं लिया है। यह ठीक है कि पिता अपने ऋण को चुकाने के लिये पुत्र का हिस्सा नहीं बेच सकता किंतु पिता के ऐसे ऋणदाताओं को यह अधिकार रहता है कि पिता के उस वैध ऋण की वसूली की कार्यवाही पुत्र के हिस्से की संपत्ति के विरुद्ध करें। धार्मिक बंधन (पायस आब्लिगेशन) के सिद्धांत के कारण पुत्र के हिस्से के विरुद्ध कार्यवाही की जाती है। ऋण की वसूली के संबंध में ऋणदाताओं का यह अधिकार केवल उसी संपत्ति तक ही सीमित नहीं रहता जिसे पिता बेच सकता है, बँटवारे के बाद पुत्र के हिस्से के भी विरुद्ध यह होता है जिसे पिता स्वयं नहीं बेच सकता। इस संबंध में अनेक रूलिंग्स हुई हैं जैसे ए० आई० आर० १९१७ प्रिवी कौंसिल ६१ ए० आई० आर० १९५२ सर्वोच्च न्यायालय १७०, ए० आई० आर० १९५३ सर्वो० न्या० ४८७। पुत्र को केवल एक ही उपाय उपलब्ध है कि उपयुक्त कार्यवाही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यह प्रमाणित करे कि यह ऋण पिता ने अनैतिक प्रयोजन के लिये लिया था।

ए० आई० आर० १६५० बंबई २७८ और ए० आई० आर १६१४ मद्रास ३२८ दो रुलिंग दिखलाई गईं। बंबई के निर्णय में कहा गया था कि बँटवारा के बाद पुत्रों के हिस्से को पाबंद बनाने के लिये उनका अभिलेख पर लाना आवश्यक है। मद्रास के निर्णय में कहा गया था कि बँटवारा के बाद पुत्रों के विरुद्ध मुकदमा अलग से दाखिल करना चाहिए और केवल उनके हिस्से तक डिग्री पारित होने पर कुर्क और उनके विक्रय की कार्यवाही करनी चाहिए। उस अवस्था में जब कि बँटवारा सद्भावना से नहीं रहता तब संयुक्त संपत्ति के विरुद्ध डिग्री के निष्पादन की कार्यवाही की जा सकती है। किंतु जैसा ऊपर कहा गया है उचित नोटिस देकर यदि पुत्रों का हिस्सा भी बेच दिया गया है और खरीदने वाला इसे संपूर्ण संदायदता संपति समझकर खरीद रहा है तो नाम बनाम पुत्रों का अभिलेख पर रहना अनिवार्य नहीं है कारण कि अब भी उन्हें उस पर आपत्ति करने का अधिकार और अवसर है कि वह ऋण अवैध प्रयोजन के लिये लिया गया था। सिवा इसके कि वह ऋण अवैध प्रयोजन के लिये था धार्मिक बंधन के कारण पुत्र किसी अन्य आधार पर आपत्ति नहीं कर सकते और ऋणदाताओं का अधिकार किसी प्रकार कम नहीं हो सकता।

३२ इंडियन अपील्स २३ (प्रिवी कौंसिल) में निर्णय हुआ था कि जो व्यक्ति कार्यवाही में पक्ष नहीं बनाए गए हैं या उचित रूप से अभिलेख पर नहीं आए हैं उनके हिस्से को बेचने का अधिक्षेत्र न्यायालय को नहीं है। यह मामला संयुक्त हिंदू परिवार के उन पुत्रों में लागू नहीं होता जिनका प्रतिनिधित्व पिता करता है और डिग्री का निष्पादन बँटवारा के बाद भी पुत्रों के हिस्से के विरुद्ध हो सकता है। ए० आई० आर० १६३६ प्रिवी कौंसिल २७७ भी इस मुकदमें लागू नहीं हो सकता क्योंकि वहाँ यह प्रश्न विचाराधीन नहीं था कि निष्पादन न्यायालय का पुत्रों के हिस्सों के विरुद्ध अधिकार कितना है वरन् उसमें पिता के अपने विधिक ऋण के लिये संपत्ति के हस्तांतरण का मामला था।

उन अवस्थाओं में जब कि अंत तक पुत्रगण आपत्ति नहीं करते और पिता के विरुद्ध पारित डिग्री के निष्पादन के संबंध में उचित नोटिस देकर संपूर्ण संपदा बेच दी जाती है तो नीलामी क्रेता के अधिकार को समाप्त करने के लिये केवल इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है कि अभिलेख पर पुत्रगण नाम बनाम नहीं थे।

इस संबंध में इस प्रश्न का महत्व बहुत बढ़ जाता है कि न्यायालय ने कितनी संपत्ति को बेचने का विचार किया था और वास्तव में कितना बेचा तथा नीलामी क्रेता ने कितनी संपत्ति खरीदने का विचार किया था और वास्तव में कितना खरीदा और इसके लिये कितनी कीमत दी। १४ इंडियन अपील्स ७७ प्रिवी कौंसिल एक ऐसा उदाहरण है जिसमें निर्णय हुआ था कि केवल पिता का ही हिस्सा हस्तांतरित हुआ क्योंकि उसके अभिलेख से यह प्रकट होता था सब कुछ कार्यवाही केवल पिता के विरुद्ध थी जैसे पिता ही केवल पक्ष बनाया गया था और विक्रय प्रमाणपत्र आदि सब केवल पिता के ही हिस्से के विरुद्ध बनाया गया था। इसी प्रकार १६ इंडियन अपील्स १ (प्रिवी कौंसिल) दूसरे प्रकार का उदाहरण है जिसमें निर्णय हुआ था कि न्यायालय का विचार संपूर्ण संदायदता की संपत्ति बेचने का था और वास्तव में उसने वही बेचा अतः संपूर्ण अधिकार का हस्तांतरण हुआ न कि अधिकारों के किसी अंश का।

इस मामले में सभी कार्यवाही वैध रूप से हुई है। बंगला के विरुद्ध कुर्की और विक्रय की कार्यवाही पूरे बँगले के लिये हुई है उसके किसी भाग पर नहीं, नीलामी क्रेता ने पूरा बँगला खरीदा है। पिता द्वारा विधिक ऋण का लिया जाना और मिताक्षरा हिंदू परिवार के पुत्र का उस ऋण के भुगतान का धार्मिक बंधन होना विक्रय के पर्याप्त आधार हैं।

दूसरी बहस यह की गई है कि बंबई भूराजस्व संहिता की धारा १५५ के अंतर्गत निर्णीत ऋणी का ही केवल अधिकार स्वत्व और हित' (राइट टाइटिल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंटरेस्ट) हस्तांतरित होता है इसलिए यहाँ एकमात्र पिता का ही अधिकार, स्वत्व और हित हस्तांतरित हुआ, पुत्रों का नहीं। इस संबंध में यह बतला देना अवश्यक है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में भी पद "अधिकार स्वत्व और हित" प्रयुक्त है। १७ इंडियन अपील्स ११ (प्रिवी कौंसिल) में कहा गया था कि यह तथ्य का प्रश्न होता है और प्रत्येक मामले की परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। उसमें निर्णय हुआ था कि संपूर्ण संपति हस्तांतरित हुई। इसी तथ्य के प्रश्न के आधार पर १६ इंडियन अपील्स १ (प्रिवी कौंसिल) में निर्णय हुआ था कि केवल पिता का ही अधिकार स्वत्व और हित हस्तांतरित हुआ। ए० आई० आर० १९१६ प्रिवी कौंसिल २२० में कहा गया था कि संपूर्ण संदायदता की संपत्ति हस्तांतरित हुई और कहा गया था कि इस विषय में लेनदेन की प्राविधिकता (टेक्निकेलिटी) पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए वरन् उसके तत्व पर विचार करना चाहिए कि क्या बेचा गया, न्यायालय का विचार कितना बेचने का था और खरीददार कितना खरीदने का विचार कर रहा था और उसने कितना खरीदा।

विद्वान वकील ने १४ इंडियन अपील्स ७७ (प्रिवी कौंसिल) के निर्णय का अर्थ लगाया कि उसमें पिता के व्यक्तिगत अधिकार, स्वत्व और हित की बात कही गई थी किंतु बात ऐसी नहीं है। लेखों से पता चलता है कि उसमें केवल पिता के ही अधिकार आदि के हस्तांतरण का विचार था।

इसलिए हमारा निर्णय है कि:—(१) पिता के उस ऋण का देनदार पुत्र धार्मिक बंधन के सिद्धांत के अनुसार होता है जो ऋण किसी अनैतिक प्रयोजन के लिये नहीं लिया गया है और ऋण देने का यह दायित्व पिता के जीवनकाल तक तो रहता ही है उसके मरने के बाद भी रहता है और संयुक्त परिवार की संपत्ति के बँटवारे से यह दायित्व समाप्त नहीं हो जाता। बँटवारे का परिणाम इतना ही होता है कि हस्तांतरण करनेवाला पिता का अधिकार समाप्त हो जाता है। (२) जब निर्णीत ऋणी के अधिकर, स्वत्व और हित का विक्रय होता है तो नीलामीक्रेता को क्या मिलता है यह तथ्य का प्रश्न है और इस बात पर निर्भर करता है कि कौन सी संपदा बेची जानेवाली थी, न्यायालय का विचार किसे बेचने का था और खरीददार का विचार क्या खरीदने का था और क्या खरीदा और इसके लिये उसने कितना रुपया दिया। (३) बंबई भूराजस्व संहिता की धारा १५५ के "अधिकार, स्वत्व और हित" शब्दों का अर्थ व्यवहार प्रक्रिया संहिता के इन्हीं शब्दों के समान है। (४) निष्पादन की कार्यवाही में पुत्रों को पक्ष बनाने की आवश्यकता नहीं है या निष्पादन की कार्यवाही के चलते रहने के बीच यदि बंटवारा हो गया है तो अलग मुदकमा दाखिल करने की भी आवश्यकता नहीं है कारण कि पुत्र का धार्मिक कर्तव्य वर्तमान रहता है और बँटवारे का परिणाम इतना ही होता है कि संपत्ति उपभोग के ढंग में परिवर्तन हो गया रहता है। (५) वह पिता जो प्रबंधकारी संचालक था और जिसे इस काम के लिये वार्षिक भत्ता मिलता था उसने काम में यदि लापरवाही की तो तत्संबंधी ऋण अव्यावहारिक नहीं कहा जा सकता कारण कि यह "नैतिकता के विरुद्ध" नहीं है।

परिणामतः अपील असफल होती है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

न्यायमूर्ति बी० पी० सिंह—

प्रस्तावित आदेश से मैं सहमत हूँ।

—अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका १९५९ सर्वोच्च न्यायालय २८

११ दिसंबर १९५८

मुख्य न्यायाधिपति एस० आर० दास और पी० बी० गजेंद्रगादकर, के० एन० वाँचू और एम० हिदायतुल्ला न्यायमूर्तिगण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सी० के० अचुतन — प्रार्थी

वि०

केरल राज्य तथा अन्य — उत्तरवादीगण

प्रार्थनापत्र सं० १०३।१९५८

भारतीय संविधान अनुच्छेद १४,१६ (१) १९ (१) जी०) ३१ और ३२ सरकारी अस्पताल में दूध भेजने की संविदा (कंट्रैक्ट) प्रार्थी और सरकार के बीच हुई थी—कुछ वर्षों के लिये प्रार्थी का प्रतिदान (टेंडर) स्वीकार किया गया किंतु बाद में निरसित (कैंसल) कर दिया गया—ऐसी स्थिति में अनुच्छेदों का लागू होना।

न्यायमूर्ति एम० हिदायतुल्ला

भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है। प्रार्थी का कहना है कि सरकारी अस्पताल में दूध देने की हमारी संविदा (कंट्रैक्ट) अस्वीकार करके उत्तरवादी को दे दी गई है।

प्रार्थनापत्र से पता चलता है कि प्रार्थी केरल राज्य के कुनूर सरकारी अस्पताल में १९४६ से ही दूध देता रहा। उसके पहले एक संविदा के अंतर्गत उसका भाई १९३६ से ही दूध देता था।

दूध देने की इस संविदा के संबंध में १९५७ में नियम में कुछ परिवर्तन कर दिया गया और नियम बनाया गया कि प्रतिदान (टेंडर) देनेवालों को एक प्रमाणपत्र देना पड़ेगा कि हमारे ऊपर कोई ऋण नहीं है तथा प्रतिदान के साथ रुपया जमा कर देना था। इसके अतिरिक्त और भी नियम बनाए गए।

प्रतिदान दिए जाने पर उनकी गणना हुई। पहले प्रार्थी को ही दिया गया पर बाद में नोटिस आदि की कार्यवाही करने के बाद प्रार्थी की संविदा (कंट्रेक्ट) निरसित कर दी गई। इस बीच इस संबंध में अधिकारियों द्वारा कतिपय आदेश भी पारित हुए थे।

इसके पहले प्रार्थी ने संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत केरल उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र निवेशित किया था किंतु असफल रहा और अपील करने पर उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि इस मामले में अधिक से अधिक इतना ही है कि राज्य सरकार ने संविदा भंग किया और इसके लिये व्यवहार वाद (सिविल सूट) दाखिल करना चाहिए था न कि अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत कार्यवाही।

ऐसा प्रतीत होता है कि केरल उच्च न्यायालय के उक्त आदेश के विरुद्ध अपील निवेशित करने के लिये इस न्यायालय से अनुमति नहीं माँगी गई वरन् उन प्रश्नगत आदेशों के संबंध में संविधान के अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया कि प्रार्थी के मौलिक अधिकारों का हनन हुआ है तथा विधि का लाभ उठाने का प्रार्थी को समान अधिकार था। उसका कहना है हमारे और तृतीय उत्तरवादी के बीच विभेदकरण किया गया है। उसने भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४, १६ (१) १९ (१) (जी०) और ३१ के संरक्षण के लिये प्रार्थना किया है। मेरे विचार से इस मामले के तथ्यों में उपर्युक्त अनुच्छेदों में से कोई भी अनुच्छेद लागू नहीं हो सकता।

इसमें संदेह नहीं कि पहले प्रार्थी के पक्ष में संविदा हुई किंतु संबद्ध उपबंध के अंतर्गत सरकार का यह अधिकार अक्षुण्ण था कि एक महीने की नोटिस देकर संविदा समाप्त कर दे। सरकार ने अपने उस अधिकार का प्रयोग ठीक से किया या गलती से इस प्रश्न पर हमें विचार नहीं करना है क्योंकि सामान्य व्यवहार न्यायालय में ही साक्ष्य लेकर और विस्तार से उस पर विचार करके इस पर निर्णय दिया जा सकता था।

यहाँ विचाराधीन बात केवल 'संविदा भंग' (ब्रीच आफ कंट्रैक्ट) है, चाहे संविदा उचित रूप से निरसित की गई हो चाहे अनुचित रूप से। यहाँ विभेदकरण नहीं है क्योंकि सरकार को यह अधिकार है कि अपना काम करवाने के लिये अपनी इच्छानुसार व्यक्ति का चुनाव करे। जब एक व्यक्ति चुना जाता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा नहीं चुना जाता तो ऐसा व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद १४ के संरक्षण का दावा नहीं कर सकता क्योंकि इसके लिये उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव सरकार पर छोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार सरकार द्वारा संविदा करना व्यक्तिगत संविदा से अंतर नहीं रखता। संविदा भंग होने पर उस व्यक्ति को अधिकार होता है कि उपयुक्त न्यायालय में क्षतिपूर्ति (डैमैजेज) के लिये वाद निवेशित करे या परिस्थिति विशेष के अनुसार निर्दिष्ट संपादन (स्पेसिफिक परफार्मेंस) भी माँग सकता है किंतु वह यह नहीं कह सकता कि किसी व्यापार करने से या व्यवसाय के अधिकार से वह वंचित किया गया है। संविदा के एक अनुबंध के अनुसार जब संविदा निरसित की गई है तो इसे रोकने के लिये संविधान के अनुच्छेद ३१ का सहारा नहीं लिया जा सकता।

प्रार्थी का प्रमुख तर्क संविधान के अनुच्छेद १६ (१) के अंतर्गत है कि सरकार के अंतर्गत हमें नियुक्ति का समान अवसर मिलना चाहिए। अनुच्छेद के अंतर्गत जिस अभिप्राय से नियुक्ति (इंप्लायमेंट) शब्द का प्रयोग किया गया है उस अर्थ में अस्पताल में दूध देनेके लिये यह नहीं कही जा सकती। प्रार्थी की नियुक्ति संस्था की ओर से दूध देने के लिए नौकर के तौर पर नहीं हुई थी वरन् वह एक स्वतंत्र ठेकेदार था जो कीमत पर सामान भेजा करता था। उसका कहना था कि हमें दूध देने का ठीका मिला था और उसने यह नहीं कहा कि हम सरकार के नौकर हैं। अनुच्छेद १६ (१) से पता चलता है कि वह सरकार के अंतर्गत सेवा में नियुक्ति से संबंध रखता है न कि ठेकेदारी से। कुछ मामले ऐसे अवश्य हो सकते हैं जिनमें संविदा के अंतर्गत सेवा का तत्व आ सकता है किंतु इस मामले में इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यह स्पष्ट है कि सामान भेजने की संविदा यदि अस्वीकार कर दी जाती है या सामान भेजने की इस प्रकार की संविदा भंग कर दी जाती है तो यह नहीं कहा जा सकता कि सरकार के अंतर्गत नियुक्ति का समान अवसर प्रदान नहीं किया गया है और केवल इसी बात तक यह प्रार्थनापत्र सीमित है।

इस मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट है कि प्रार्थी अस्पताल में दूध भेज रहा था या दूसरे शब्दों में दूध बेच रहा था। किसी भी अर्थ में उसे नौकर नहीं कहा जा सकता और नौकर के पद से सरकार की नौकरी करने का प्रश्न नहीं पैदा होता। ऐसी स्थिति में संविधान का अनुच्छेद १६ (१) इसमें लागू नहीं होता।

मेरे विचार से संविधान के अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित करना सर्वथा गलत था। इसमें मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट) का कोई प्रश्न नहीं है। अधिक से अधिक यह व्यवहार न्यायालय में संविदा भंग के लिये क्षतिपूर्ति (डैमजेज) यदि हो, का दावा कर सकता है।

तद्नुसार यह प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका १९५९ सर्वोच्च न्यायालय ३०

(पंजाब से)

४ दिसंबर १९५८

पी० बी० गजेंद्रगादकर और ए० के० सरकार न्यायमूर्तिगण

नरायन तथा अन्य — अपीलकर्तागण

वि०

पंजाब राज्य — उत्तरवादी

आपराधिक अपील सं० १८६।१९५६

अ—साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धा० १६७-अस्वीकृत साक्ष्य के संबंध में सारभूत तथ्य

ब—साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धा० १६७-साक्षी साक्ष्य देने के लिये जब प्रस्तुत नहीं किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया तो ऐसी परिस्थिति में साक्ष्य का अस्वीकार किया जाना।

स-दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८), धा० २०८-सारभूत साक्षी कौन होते हैं—अभियोजन का ऐसे साक्षियों को उपस्थित न करने का परिणाम

न्यायमूर्ति ए० के० सरकार—

फिरोजपुर के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के समक्ष ८ व्यक्तियों का अभियोजन दंड संहिता की धारा १४८, ३०७ और ३६४ (धारा १४७ और ३४ के साथ) हुआ। कुछ अभियुक्त छोड़ दिए गए और कुछ अभियुक्तों को विभिन्न प्रकार का दंड दिया गया। अपील करने पर उच्च न्यायालय ने दोष सिद्धि को ज्यों का त्यों रखा पर कुछ लोगों को दिए हुए दंड में कुछ कमी कर दिया। इस निर्णय के विरुद्ध कुछ अभियुक्तों ने इस न्यायालय में अपील निवेशित किया है।

अभियोजन का कहना है कि कोई सुल्तान नामक व्यक्ति एक खेत का स्वामी था और साही राम उसका कृषक। जब की यह घटना है उसके पहलेवाले वर्ष में यह खेत जोता नहीं गया था। उसके बाद उसके स्वामी ने धारण (पोजेशन) फिर आरंभ किया। १४.६-१९५३ को उस खेत के स्वामी का पुत्र मनीराम अपना ट्रैक्टर लेकर और एक मजदूर मुलाराम को लेकर वह खेत जोतने गया और पहुँचने पर उसने देखा कि साहीराम वास्तव में उसे जोत रहा है। मनीराम ने साहीराम को खेत के बाहर निकाल दिया। साहीराम ने पहले विरोध किया किंतु बाद में वह खेत से निकल गया और अपना हल खेत ही में छोड़ दिया। मनीराम ने तब अपने ट्रैक्टर से खेत जोतना आरंभ किया। थोड़ी देर के बाद ट्रैक्टर में कुछ गड़बड़ी आ गई और मनीराम खेत जोतना छोड़ कर ट्रैक्टर को देखने लगा। इस प्रकार मनीराम जब ट्रैक्टर का निरीक्षण कर रहा था कि साही राम ७ व्यक्तियों को लेकर पहुँचा और वे सब मनीराम पर टूट पड़े तथा प्रहार करना आरंभ किया। जालू घोड़े पर आया था। मुलाराम जब उसको बचाने आया तो उस पर भी प्रहार हुआ और जब उसने भागने की कोशिश की तो साही राम और उसके दलवालों ने उसका पीछा किया। इस बीच मनीराम को थोड़ा मौका मिला और उसने ट्रैक्टर में बैठकर भग जाने की कोशिश की। मनीराम ट्रैक्टर में बैठकर उसको चलाने लगा कि नरायन घोड़े पर चढ़कर और बंदूक हाथ में लिए हुए आ पहुँचा। पीछा करनेवालों को पुकार कर उसने कहा कि नौकर का पीछा क्या करते हो वास्तविक अभियुक्त तो भग जाना चाहता है। वह दल लौट पड़ा और मनीराम का पीछा करना आरंभ किया। नरायन ने घोड़े पर चढ़कर शीघ्र ही उसे पकड़ लिया और ड्राइवर की सीट पर ही वह बैठा था कि नरायन ने उसे गोली मारी। मनीराम ट्रैक्टर पर से गिर पड़ा और ट्रैक्टर अपने से चलता रहा तथा एक पेड़ से टकराकर रुक गया। चलते हुए ट्रैक्टर से नरायन के घोड़े को चोट पहुँची। मनीराम गिरते पड़ते उठा और पास के मुखराम नामक व्यक्ति की झोपड़ी में शरण लेना चाहा। पीछा करने वाले पहुँच गए और जोतराम तथा चेरू ने झोपड़ी के भीतर मनीराम को गोली मारी। मुखराम मनीराम की रक्षा करने के लिये उसके शरीर पर लोट गया। इसपर चेरु और नरायन ने कहा कि मनीराम के साथ यह झोपड़ी जला दी जायगी। इसपर साहीराम ने सुझाव दिया कि अच्छा यह होगा कि मनीराम को अपने घर ले चला जाय और वहाँ पर इसे मारकर इसकी लाश जला दी जाय। मुखराम को तब खींचकर हटा दिया गया तथा मनीराम को घोड़े पर रखा गया तथा जालू इस पर सवार होकर चला। मनीराम उस समय बेहोश था। मनीराम को लेकर यह दल गाँव की ओर एक पगडंडी से चला। जब वे थोड़ी दूर गए तब मनीराम का छोटा भाई रघुवीर मिला जो इस घटना का समाचार सुनकर आ रहा था। उस समय जालू घोड़े पर इसे ले जा रहा था और साहीराम उसके साथ साथ पैदल चल रहा था, दल के और लोग थोड़ी दूर थे। रघुवीर ने जालू से कहा कि मनीराम को उतार दो तो इस पर उसने जान से मार डालने की धमकी दी, साहीराम ने उसे अपना सेला दिखलाया। रघुवीर साहीराम को पिस्तौल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारा जिसे वह लिए हुए था, साहीराम गिर पड़ा और थोड़ी देर के बाद उसकी मृत्यु हो गई। जालू घोड़े से उतरा और भागा। दूसरों के आने के पहले ही वह मनीराम को वीरवल के घर ले गया और वहाँ से अस्पताल।

बचत में कहा गया है कि अभियोजन की कहानी बिलकुल झूठी है और वास्तव में तथ्य इस प्रकार हैं घटना के दिन जब साहीराम खेत जोत रहा था तो मनीराम और रघुवीर पहुँचे और उसे रोकने की कोशिश किया और इस पर झगड़ा हुआ। जोतराम और घेरु जो नजदीक के खेत में थे वहाँ पहुँचे और साहीराम से कहा कि झगड़ा न करें वरन इसका निबटारा पंचायत से कर लें। साहीराम जोतराम और घेरू तब खेत पर से गाँव की ओर बढ़े। जाते समय जोतराम ने देखा कि साहीराम के पास एक पिस्तौल है और इस डर से कि जोश में आकर कहीं साहीराम इसका प्रयोग न कर दे, उसने उसकी पिस्तौल ले ली। मनीराम और रघुवीर भी गाँव की ओर आए किंतु दूसरे रास्ते से। ये दोनों दल एक गाँव के पास फिर मिले और रघुवीर ने साहीराम को गाली दी तथा पिस्तौल चलाई और साहीराम की वहीं मृत्यु हो गई। जोत राम ने यह समझकर कि कहीं हमारे ऊपर भी आक्रमण न हो जाय उसने वह पिस्तौल चलाई जिसे उसने साहीराम से लिया था और इसी से शायद मनीराम घायल हुआ। रघुवीर के साथ दो अपरचित व्यक्ति और थे जिनके पास बंदूक थी और उन्होंने भी गोली चलाई; हो सकता है कि मनीराम को और चोटें इसी गोली से लगी हों। अभियुक्तों का कहना था कि जोतराम और घेरू को छोड़कर घटनास्थल पर कोई उपस्थित नहीं था। इस प्रकार इस घटना की दो परस्पर विराधी कहानियाँ हैं और इस पर आधारित दो प्रतिवाद (क्रास सूट्स) निवेशित किए गए हैं। यहाँ पर हमारा संबंध केवल मनीराम. के मुकदमे से है जो उसकी चोटों से संबंध रखता है।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने दोनों मुकदमों की सुनवाई किया और मनीराम आदि को छोड़ दिया तथा घटना के बारे में अभियोजन कहानी पर विश्वास करके इस मामले में जालू और अपीलकर्ता की दोषसिद्धि की और उनकी दोषसिद्धि को उच्चन्यायालय ने भी मान लिया। चूँकि तथ्य पर नीचे के दोनों न्यायालयों के निर्णय समान थे इसलिए विद्वान् वकील ने अपने तर्क को केवल विधि के प्रश्न तक ही सीमित रखा। यहाँ हमारा संबंध केवल उसी मामले से है जिसमें मनीराम को चोट पहुँचाने के कारण अपीलकर्ता आदि का अभियोजन हुआ था, दूसरे से नहीं।

अन्वीक्षा न्यायालय में अभियोजन ने रघुवीर को साक्षी रखा था किंतु रघुवीर ने साक्ष्य देने से इनकार इसलिए कर दिया कि उसे संविधन के अनुच्छेद २० का संरक्षण प्राप्त है। विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने इस तर्क को मान लिया। अंत में अभियोजन ने रघुवीर को साक्षी बनाने का विचार छोड़ दिया।

जब वह मामला अपील में उच्च न्यायालय में आया तो अभियुक्तों की ओर से यह कहा गया कि सत्र न्यायाधीश का यह निर्णय गलत था कि उसे संविधान के अनुच्छेद २० का संरक्षण प्राप्त है और इस प्रकार अभियुक्तों को एक महत्व पूर्ण साक्ष्य से वंचित करने से निर्णय ठीक नहीं हुआ।

उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि यदि रघुवीर का परीक्षण नहीं हुआ तो इससे अन्वीक्षा में कोई गड़बड़ी नहीं हुई। उच्च न्यायालय के इसी निर्णय पर यहाँ आपत्ति की गई है। उनका कहना है कि प्रतीत होता है कि यह धारा १६७ के अंतर्गत है।

कुछ भी हो ऐसा प्रतीत होता है कि धारा १६७ अपीलकर्तागण को कोई सहायता नहीं प्रदान कर सकती। यह स्पष्ट है कि अभियोजन ने यों तो रघुवीर को साक्षी में रखा था किंतु उसके परीक्षण में वह सतर्क नहीं रहा। रघुवीर ने जब साक्ष्य देने से इनकार किया तो अभियोजन ने यह विचार ही छोड़ दिया। इसलिए इस मामले की परिस्थिति ऐसी नहीं है जिसमें कहा जा सके कि साक्ष्य अधिनियम की धारा १६७ के अंतर्गत साक्ष्य अस्वीकार किया गया है। वास्तव में रघुवीर को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थिनी के कहने के अनुसार वह जन्म से ही भारत में निवास करती है और यहीं पर उसके माता पिता भी रहते थे और इस प्रकार वह संविधान के लागू होने के दिन २६ जनवरी १६५० को भारत की स्थायी निवासिनी (डोमिसाइल्ड) थी। मार्च १६५० में वह अपनी बहन को देखने पीलीभीत गई और वहाँ पर बलवा हो गया। उसकी बहन और उसका बहनोई जान बचाने के विचार से पाकिस्तान जाने लगे और प्रार्थिनी का कहना है कि उसके साथ रहने से मैं भी पाकिस्तान चली गई। उसका यह भी कहना है कि उस समय मेरी आयु १२ वर्ष की थी और मैं अवयस्क थी तथा बरेली में रहनेवाले अपने माता पिता की अनुमति के बिना ही चली गई थी। इसके बाद में जब मैं इस देश को लौटना चाहा तो बिना पारपत्र (पासपोर्ट) के लौट नहीं सकती थी इसलिए नवंबर में मैंने पाकिस्तान सरकार से पारपत्र प्राप्त किया और यहाँ पर बस जाने के विचार से वहाँ से लौट आई। चूँकि पाकिस्तान जाते समय उसका कहना था कि मैं अवयस्क थी इसलिए मैं अपनी राष्ट्रीयता (नेशनेलटी) को बदल नहीं सकती थी इसलिए थोड़े समय तक पाकिस्तान में रहने पर भी मैं भारतीय नागरिक हूँ और भारतीय नागरिक पहले भी थी। उसका यह भी कहना है कि हमने कभी भी पाकिस्तान की नागरिकता को स्वीकार नहीं किया है।

राज्य की ओर से प्रतिशपथपत्र निवेशित किया गया है। इससे पता चलता है कि प्रार्थी पाकिस्तानी पारपत्र (पासपोर्ट) और भारतीय दृष्टांक (विसा) पर पहली बार १६५२ में आई और इस संबंध में उसने अपने को पाकिस्तानी राष्ट्रिक (पाकिस्तानी नेशनल) कहा था। वह फिर पाकिस्तान लौट गई। पाकिस्तानी पारपत्र पर वह १६५४ में फिर भारत आई और अपने को पाकिस्तानी राष्ट्रिक कहा था। इन दोनों बार के भारत आगमन में प्रार्थी का भाई उसके साथ था। उसका भाई पाकिस्तान चला गया और प्रार्थिनी भारत में ही रह गई। उसके यहाँ रहने की अवधि एक बार बढ़ा दी गई थी। उसने जब पुनः लंबी अवधि के दृष्टांक (विसा) के लिये प्रार्थनापत्र दिया तो वह इसलिए अस्वीकार कर दिया गया कि वह अपना चित्र देने के लिये तैयार नहीं हुई। यहाँ रहने का प्रार्थिनी का दूसरा प्रयत्न भी निष्फल चला गया। इसने राज्य सरकार पर व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ८० के अंतर्गत एक नोटिस तामील किया कि सरकार को निषेधाज्ञा द्वारा मना करने के संबंध में एक वाद निवेशित किया जायगा कि उसे भारत से निकाला न जाय।

उत्तरवादी का कहना है कि प्रार्थिनी पाकिस्तानी राष्ट्रिक है और उसका निष्कासन करना ठीक है। उसके विरुद्ध निष्कासन का जो आदेश पारित हुआ है उसके लिये उसे वैकल्पिक (आल्टरनेटिव) उपाय उपलब्ध है।

प्रार्थिनी ने यहाँ ठीक बात नहीं बतलाई है। उसका कहना है कि जब मैं पीलीभीत में रह रही थी उस समय १६५० में वहाँ बलवा होने के कारण मैं पाकिस्तान चली गई किंतु लेखों के देखने से पता चलता है कि वह १६४८ में ही पाकिस्तान चली गई थी। इस बात के निर्णय के लिये कि वह भारत का नागरिक है कि नहीं जो तथ्य आवश्यक थे उसने उन तथ्यों को जानबूझकर छिपाया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत उस प्रार्थी को सहायता नहीं प्रदान की जा सकती जो गलत बयान के साथ प्रार्थनापत्र देता है। अपने पाकिस्तान जाने के संबंध में उसका बयान निश्चय ही झूठा है। केवल इसी आधार पर यह प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर देने योग्य है। तदनुसार प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है। स्थगन आदेश हटा लिया जाता है।

विधि पत्रिका १६५६ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ३३

मुख्य न्यायाधिपति मूथम और आर० दयाल न्यायमूर्ति

व्यवहार प्रकीर्णक लेख (सिविल मेसलेनियस रिट) सं० २७०।१६५६—१ दिसंबर १६५८

श्री एस० आर० तिवारी (प्रार्थी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि०

जिला बोर्ड आगरा तथा अन्य (विपक्षी)

उ० प्र० जिलाबोर्ड अधिनियम, १९२२ धा० ८२, चतुर्थ परंतुक (प्राविजो)—पदच्युति (डिसमिस) शब्द का अर्थ केवल यही नहीं होता कि नियुक्ति को दंडस्वरूप समाप्त कर दिया जाय वरन् उन्मुक्त (डिस्चार्ज) करना भी पदच्युति ही है ।

मुख्य न्यायाधिपति मूथम—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है ।

प्रार्थी की नियुक्ति १९४२ में उत्तरवादी बोर्ड के अंतर्गत अभियंता (इंजीनियर) के पद पर हुई थी और उसी वर्ष उसकी नियुक्ति स्थायी कर दी गई । १८ अक्टूबर १९५४ तक वह सेवा में रहा जब कि बोर्ड ने एक प्रस्ताव पास किया कि उसकी सेवाएँ समाप्त कर दी जाती है और नोटिस के स्थान पर उसे तीन महीने का वेतन दिया जाय । प्रार्थी ने अपील करना चाहा परंतु राज्य सरकार ने हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया । प्रार्थी ने तब यह लेख प्रार्थनापत्र निवेशित किया और यह न्यायमूर्ति मेहरोत्रा के समक्ष सुनवाई के लिये आया । उन्होंने समझा कि इसमें विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न है इसलिए उन्होंने इसे न्यायासन को अभिदिष्ट कर दिया ।

थोड़े में प्रार्थी का कहना है कि यों तो प्रार्थी को दंडित करने या उसे पदच्युत करने का अधिकार बोर्ड को है किंतु किसी अन्य प्रकार से उसकी सेवा समाप्त करने का अधिकार बोर्ड को नहीं है बशर्ते तत्संबंधी कोई संविदा न हुई हो और प्रार्थी का कहना है कि यहाँ कोई ऐसी संविदा (कंट्रेक्ट) नहीं हुई थी ।

धारा ८२ में है कि बोर्ड को अभियंता (इंजीनियर) की नियुक्ति और उसकी पदच्युति का अधिकार है । प्रश्न यह है कि परंतुक में पदच्युति (डिसमिस) शब्द का क्या अर्थ होना चाहिए । प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि पदच्युति के आदेश के विरुद्ध अपील का अधिकार दिया गया है इसलिए इसका अर्थ यही होना चाहिए कि पदच्युति दंडस्वरूप हो और ध्वनितार्थ से किसी अन्य प्रकार से सेवा की समाप्ति नहीं की जा सकती ।

हम यह तर्क मानने के लिये तैयार नहीं है । पदच्युति का प्रयोग प्रायः दंडस्वरूप पदच्युत करने के अर्थ में होता है किंतु वास्तव में सेवा से अलग कर देने से अधिक अर्थ इसका नहीं होता । हमारे विचार से पदच्युति शब्द का जो प्रयोग हुआ है उसका अर्थ केवल नियुक्ति को समाप्त कर देना होता है, चाहे यह समाप्ति दंडस्वरूप हो चाहे उन्मुक्ति (डिस्चार्ज) के अर्थ में । पदच्युति के आदेश के विरुद्ध अपील का अधिकार दिया गया है किंतु केवल इसी से ही इसका उत्तर नहीं मिल जाता । यदि इसका यह अर्थ लगाया जायगा तब तो इस प्रकार का अधिकारी यदि अच्छी चाल चलन का है तो अधिवार्षिकी (सुपरअनुएशन) की आयु तक पहुँचने पर भी हटाया नहीं जा सकेगा । विधान मंडल का ऐसा अभिप्राय नहीं रहा होगा । इन कारणों से हमारा निष्कर्ष है कि यह प्रार्थनापत्र असफल होना चाहिए । तद्नुसार यह परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है ।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका १९५९ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ३४

लखनऊ न्यायासन

न्यायमूर्ति जे० के० टंडन

(१६-६-१९५८)

सी० पी० मेहरा प्रतिवादी अपीलकर्ता

वि०

श्रीमती के० के० मेहरा वादी-उत्तरवादी

लखनऊ के व्यवहार न्यायाधीश की डिग्री दिनांक १८-३-५२ के विरुद्ध प्रथम अपील सं० २४।१९५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (सिविल प्रोसीजर कोड) (१९०८), आ० ४१ नि० २२ (४)—क्षेत्र—चूक में उत्सर्जन (डिसमिसल फार डिफाल्ट) न्यायालय शुल्क न देने पर वादपत्र की अस्वीकृति इसमें संम्मिलित नहीं है ।

निर्णय—

इसमें कार्यालय ने प्रतिवेदन दिया कि अपील के स्मृतिपत्र पर न्यायालय शुल्क कम दिया गया है। अपीलकर्ता को दो महीने का समय दिया गया कि इस बीच वह न्यायालय शुल्क की कमी को पूरा कर दे। अपीलकर्ता इस कमी को पूरा नहीं कर सका और एक बार उसने अपना विचार व्यक्त किया था कि इस अपील को निर्धन रूप (फार्मा पापरिस) में चालू रखा जाय।

अंतिम सुनवाई के दिन उसने इस कमी को पूरा नहीं किया और न तो उसने इसे निर्धन रूप में चालू रखने के बारे में ही कार्यवाही की। इस पर मैंने अपील के स्मृतिपत्र को अस्वीकार (रिजेक्ट) कर दिया।

यह अपील जब निवेशित की गई उसके बाद उत्तरवादी ने डिग्री पर प्रतिआपत्ति (क्रास आब्जेक्शन) निवेशित किया है। अब यहाँ प्रश्न यह पैदा होता है कि अपील अस्वीकृत (रिजेक्ट) हो जाने पर भी प्रति आपत्ति की सुनवाई होनी चाहिए या प्रतिआपत्ति को अस्वीकार कर देना चाहिए। धा० ४१ नि० २२ (४) में है कि यदि इस प्रकार अपील का स्मृतिपत्र निवेशित किया जाता है और अपील हटा ली जाती है (विदड्रान) या चूक में उत्सर्जित (डिसमिस्ड इन डिफाल्ट) हो जाती है तो भी यदि न्यायालय उचित समझे तो दूसरे पक्ष को नोटिस देने के बाद आपत्ति की सुनवाई कर सकता है।

इस उपबंध के आधार पर उत्तरवादी का कहना है कि वादपत्र यदि न्यायालय शुल्क न देने के कारण अस्वीकार कर दिया गया तो इसे चूक में उत्सर्जित हुआ (डिसमिस्ड इन डिफाल्ट) कहा जायगा और इसलिए प्रति आपत्ति की सुनवाई होनी चाहिए।

इसके समर्थन में उत्तरवादी ने ए० आई० आर० १९३१ मद्रास १३३ पर निर्भर किया। इस रूलिंग में यह निर्णय हुआ था कि उचित न्यायालय शुल्क न देने पर वाद को जो अस्वीकार किया गया वह वास्तव में चूक में उत्सर्जित होना है।

यह रूलिंग उत्तरवादी के कथन का समर्थन करती अवश्य है किंतु ठीक प्रतीत नहीं होती। आ० ४१ नि० २२ (४) के अनुसार न्यायालय शुल्क न देने पर वादपत्र का उत्सर्जित होना चूक में उत्सर्जन नहीं है। संहिता के अंतर्गत धा० ४१ नि० ३ और १० तथा धा० ४१ वि० १७ और १८ में दिया है कि यदि अपीलकर्ता को कुछ करने का आदेश दिया जाय और उसे वह पूरा न करे तो उस परिस्थिति विशेष में न्यायालय अपील को या तो अस्वीकार (रिजेक्ट) कर सकता है या चूक में उत्सर्जित (डिसमिस्ड इन डिफाल्ट)। इसमें यह स्पष्ट है कि अस्वीकार करना और चूक में उत्सर्जित करना दो भिन्न अर्थों के लिये प्रयुक्त हैं। यदि किसी परिस्थिति में दो भिन्न भिन्न शब्द प्रयुक्त हैं तो जब तक कोई विरुद्ध बात स्पष्ट या आभासित न हो दोनों का अभिप्राय भिन्न समझना चाहिए। नि० २२ (४) के चूक में उत्सर्जन का वही अर्थ होता है जिसके बारे में संहिता में दिया हुआ है। अतः मद्रास उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय से मैं सहमत नहीं हूँ।

अपीलकर्ता ने ए० आई० आर० १९४४ अवध ५७ पर ध्यान दिलाया। जिसमें मद्रास के उक्त निर्णय का अनुसरण नहीं किया गया था। इसके न मानने का कारण यह दिया गया था कि नि० २२ (४) सामान्य नियम के अपवाद की प्रकृति का है इसलिए इसका अर्थ कड़ाई से करना चाहिए और इसके स्पष्ट अर्थ से अधिक अर्थ नहीं लगाना चाहिए। ए० आई० आर० १९४१ बंबई २४२ पर अवध के निर्णय पर निर्भर किया गया था। इसमें भी यही कहा गया था कि जब अपील अस्वीकार कर दी गई हो तो उस अवस्था में प्रतिआपत्ति (क्रास आब्जेक्शन) चालू नहीं रह सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उप नियम (४) केवल उसी समय लागू हो सकता है जब कि अपील हटा ली जाती है या चूक में उत्सर्जित कर जाती है। न्यायालय शुल्क न देने पर जब अपील अस्वीकार की जाती है तो इसे चूक में उत्सर्जित होना नहीं कह सकते। इसलिए उत्तरवादी अब यह नहीं कह सकता कि अपील के अस्वीकार हो जाने पर आपत्ति की सुनवाई तत्व पर होनी चाहिए। यह भी अस्वीकार किया जाता है।

प्रति-आपत्ति (क्रास आब्जेक्शन) अस्वीकृत

———

विधि पत्रिका १९५९ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ३९

ओ० एच० मूथम मुख्य न्यायाधिपति और

न्यायमूर्ति रघुवर दयाल

दुर्गाप्रसाद तथा अन्य — अपीलकर्तागण

वि०

अधिकारीय अवसायक (आफिशल लिक्युडेटर) बनारस बैंक लिमिटेड—उत्तरवादी

विशेष अपील सं० २१४।१९५६ दिनांक ९-९-१९५८

कंपनी अधिनियम (१९१३), धा० १७८-९०—निरीक्षण समिति के सदस्य की स्थिति—सदस्य ने यदि बिना प्रकट हुए संपत्ति का क्रय किया है तो उसे लौटाना पड़ेगा।

मुख्य न्यायाधिपति ओ० एच० मूथम—

विद्वान् कंपनी न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है। इसके तथ्य थोड़े में इस प्रकार हैं कि बनारस बैंक लिमिटेड के अवसायन (लिक्युडेशन) के लिये आदेश पारित हुआ और उसके बाद कंपनी अधिनियम की धारा १७८ के अंतर्गत निरीक्षण समिति नियुक्त की गई। कंपनी की परिसंपत (ऐसेट्स) में दो मकान थे जिन्हें बैंक ने १९३४ में ६२०० रुपए में और १६००० रुपए में खरीदा था।

किसी रोशनलाल ने इन दोनों मकानों का १८००० रु० दाम लगाया। यह निरीक्षण समिति के समक्ष रखा गया और उसमें तय हुआ कि अधिकारी अवसायक (लिक्युडेटर) प्रयत्न करें कि मूल्य बढ़कर २०००० रुपए तक पहुँच जाय किंतु यदि न बढ़ पाए तो वही १८००० रुपया स्वीकार कर लिया जाय। प्रतिवेदन दिया गया कि १८००० रु० का मूल्य पर्याप्त है और उसे स्वीकार कर लिया जाय। इसे स्वीकार कर लिया गया और इसके संबंध में हस्तांतरण विलेख का निष्पादन हो गया।

इसके बाद अवसायक को पता चला कि रोशनलाल ने इन मकानों के संबंध में अपना समस्त अधिकार, स्वत्व और हित दुर्गादास को दे दिया। दुर्गादास उस समय निरीक्षण समिति के सदस्य थे। इस विलेख में लिखा गया था कि इसके वास्तविक स्वामी दुर्गादास हैं किंतु रोशनलाल ने कुछ कारणों से इसे वेनामी खरीदा था।

इसके बाद अवसायक ने इस घोषणा के लिये एक प्रार्थनापत्र दिया कि अवसायक ने रोशनलाल के पक्ष में जो हस्तांतरण विलेख लिखा है उसे प्रभावशून्य कर दिया जाय और दुर्गादास को आदेश दिया जाय कि दोनों मकानों को छोड़ दें और उसका हस्तांतरण अवसायक को कर दें तथा उन्हें आदेश दिया जाय कि स्वत्व संबंधी सभी कागजपत्र अवसायक को दे दें। विकल्पतः यह भी प्रार्थना थी कि दुर्गादास को आदेश दिया जाय कि अवसायक को ७२००) या न्यायालय जो निश्चित करे, दें। विद्वान् कंपनी न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि आरंभिक कीमत १८०००- रु० वापस करने पर दुर्गादास इन मकानों का हस्तांतरण कर दें।

दुर्गादास और रोशनलाल ने अपील किया। इसमें उन्होंने दो बातों पर जोर दिया। पहली बात यह थी कि रोशनलाल का मकान का खरीदना 'बेनामी' नहीं था किंतु इसका प्रमाण निश्चित है कि बेनामी था। दूसरी बात यह कही गई है कि यों तो दुर्गादास समिति के सदस्य थे पर कंपनी की परिसंपत से उनका कोई न्यासई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधी संबंध नहीं था इसलिए वे अपना नाम प्रकट किए बिना भी उक्त संपत्ति को दूसरे के नाम से खरीद सकते थे।

यह तय है कि भारतीय तत्संबंधी अधिनियम और नियमों से यदि असंगति न हो तो इंगलैंड का इस संबंध में बनाया हुआ नियम भारत में भी लागू होता है।

अतः निरीक्षण समिति के सदस्यों की स्थिति विश्वास करने योग्य होनी चाहिए और यह न्यास संबंधी प्रकृति का होता है। मेरे विचार से भारतीय कानूनी अधिनियम के अंतर्गत निरीक्षण समिति के किसी सदस्य की स्थिति 'इंगलिश बैंकरप्सी ऐक्ट' के अंतर्गत नियुक्त सदस्य से किसी प्रकार अंतर नहीं रखती।

कहा गया है कि दुर्गादास ने उचित मूल्य दिया है किंतु इस संबंध में यह सर्वमान्य सिद्धांत है कि लेन देन कितना ही स्पष्ट क्यों न हो जो इसका लाभ उठानेवाला है वह विक्रय को निराकृत करने और संपत्ति को वापस पाने का अधिकार रखता है। अतः उपर्युक्त कथन भी सारहीन है।

यह निश्चित है कि दुर्गादास जानते थे कि हम इसे खरीद नहीं सकते इसलिए उन्होंने रोशनलाल के नाम से खरीदा और पूरी स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं किया।

विद्वान् न्यायाधीश का यह निर्णय ठीक था कि अधिकारीय अवसायक को संपत्ति वापस पाने का अधिकार है।

एक बात यह कही गई है कि न्यायाधीश के समक्ष दुर्गादास ने बयान में कहा था कि इस संपत्ति में हमने बहुत रुपया खर्च कर दिया है इसलिए इसका प्रतिकर (कंपंसेशन) मिलना चाहिए। यह बात लिखित प्रतिवाद में नहीं कही गई है और इस पर वादपद (ईशू) नहीं बना है और इसलिए इसके लिये अवसायक ने कोई साक्ष्य नहीं दिया है कि वास्तव में रुपया खर्च किया गया कि नहीं। इसलिए इसके विषय में यहाँ कोई आदेश नहीं दिया जा सकता किंतु दुर्गादास को यदि सलाह दी जाती है तो दूसरी कार्यवाही में इस प्रश्न को उठा सकते हैं। यहाँ इसके बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

इसलिए अपील असफल होती है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका १९५९ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ३७

आर० एन० गुर्टू और डी० एन० राय न्यायमूर्तिगण

एफ० ए० सं० १०६।१९५३—४ नवंबर, १९५८

अश्विनी कुमार तथा अन्य — वादी अपीलकर्तागण

वि०

श्रीमती मोती कुमारी तथा अन्य प्रतिवादी उत्तरवादीगण

बनारस के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश की डिग्री दिनांक १९-१०-१९५२ के विरुद्ध प्रथम अपील

व्यवहार प्रक्रिया संहिता, (सिविल प्रोसीजर कोड) १९०८—निर्धन (पापर)—वादी मुकदमें की पैरवी यदि नहीं करता है और स्थगित करने के लिये परिव्यय (कास्ट्स) लगा दिया जाता है कि बिना परिव्यय दिए इसकी सुनवाई नहीं हो सकती तो यह शर्त वैध है और इसके लिये वाद उत्सर्जित किया जा सकता है।

न्यायमूर्ति राय—

वादी का वाद परिव्यय के साथ उत्सर्जित कर दिया गया था उसी के विरुद्ध यह वादियों की अपील है। यह वाद निर्धनवाद (पापर सूट) था और विचित्र ढंग का था किंतु यहाँ हमसे उसके गुण और दोष से मतलब नहीं है। इसका मूल्यांकन ९०,२०१ रु० ८ आना पर हुआ था। वादपद बनने के बाद अंतिम सुनवाई की तिथि निर्धारित की गई। थोड़ा पहले वादी ने दस्ती समन के लिये प्रार्थनापत्र दिया और वह स्वीकार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया गया कि अपने उत्तरदायित्व पर वादी दस्ती समन ले सकता है। उस दिन मुकदमा लिया नहीं गया। इसके बाद दूसरी तिथि निश्चित हुई।

उस दिन स्थगित करने के लिये प्रार्थनापत्र दिया गया कि मुख्यवादी जो इसकी पैरवी करता है वह कांगड़ा में नौकरी करता है तथा इस समय वह बीमार है। अभिलेख के देखने से यह पता नहीं लगता कि पहले वाली तिथि को समन की तामीली साक्षियों पर हुई कि नहीं और निर्धारित तिथि को साक्षीगण उपस्थित थे कि नही। वादियों का कहना है कि उक्त वादी का साक्ष्य और साथियों का साक्ष्य अत्यंत आवश्यक है इसलिए इसे स्थगित कर देना चाहिए। स्थगित करनेवाले इस प्रार्थनापत्र का विरोध विपक्षियों ने किया।

न्यायालय ने आदेश दिया कि यदि एक वादी बीमार था तो और लोग तो थे ही। इस मामले में मौखिक साक्ष्य नहीं दिया गया फिर भी न्याय के लिये परिव्यय देने पर यह स्थगित किया जाता है और यह इस परिव्यय एक महीने के भीतर दे दिया जाय। यदि परिव्यय नहीं दिया जाता तो वाद उत्सर्जित कर दिया जायगा और परिव्यय देने के लिये समय बढ़ाने का प्रार्थनापत्र स्वीकार नहीं किया जायगा।

परिव्यय नहीं दिया गया। ६ सितंबर १९५२ को व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा १५१ के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र दिया गया कि परिव्यय देने का आदेश इसलिए हटा दिया जाय कि हमलोग निर्धन (पापर) हैं। यह बात महत्वपूर्ण है कि परिव्यय के रुपए को कम करने के लिये प्रार्थना नहीं की गई थी वरन् इसे पूर्ण रूपेण माफ कर देने की प्रार्थना थी। वादी ने एक प्रार्थनापत्र फिर दिया कि परिव्यय देने की तिथि मुकदमे की अंतिम सुनवाई की तिथि तक स्थगित कर दी जाय। यह प्रार्थनापत्र स्वीकार किया गया और १६ अक्टूबर १९५२ मुकदमे की अंतिम सुनवाई की तिथि निश्चित हुई। १४ अक्टूबर को वादी ने दस्ती समन लेने के लिये प्रार्थना किया। आदेश हुआ कि वादियों को दस्ती समन उनके उत्तरदायित्व पर दिया जाय। १६ अक्टूबर को प्रतिवादियों की ओर से एक प्रार्थनापत्र दिया गया कि चूँकि पहले वाले स्थगित करनेवाले आदेश के परिव्यय का रुपया अभी तक नहीं दिया गया है इसलिए वाद उत्सर्जित कर दिया जाय। वादियों ने इस पार्थनापत्र का विरोध किया कि वास्तव में हम अत्यंत निर्धन हैं और कठिन प्रयत्न के बाद भी रुपया नहीं जुटा सके इसलिए परिव्यय का यह रुपया मुकदमे के परिव्यय में(कास्ट्स आफ दि सूट)में लिया जाय। यह प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिया गया और आदेश हुआ कि वादीगण ४ बजे शाम तक रुपया दे दें। शाम तक भी जब रुपया नहीं दिया जा सका तब वाद उत्सर्जित कर दिया गया और डिग्री हुई कि बनारस के कलक्टर यह न्यायालय शुल्क वादियों से वसूल करें।

वादियों के काम को देखने से पता चलता है कि मुकदमें की पैरवी में वे लापरवाह रहे हैं।

एक तर्क यह रखा गया है कि वादीगण निर्धन हैं इसलिए परिव्यय देने को क्षमा कर देना चाहिए और यह परिव्यय जब वाद में अंतिम निर्णय हो जाय तो डिग्री में जोड़ देना चाहिए। यह भी कहा गया है कि इसमें २५० रु० का परिव्यय लगाना मुकदमे के मूल्य से अधिक है। व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत निर्धन (पापर) को इस प्रकार खर्च माफ नहीं है न तो उनके शब्दों से ऐसा आभास मिलता है। न्यायालय जब समझ लेता है कि वादी पैरवी ठीक से नहीं कर रहा है तो सुनवाई के पहले परिव्यय देने की शर्त वह लगा सकता है। इस प्रकार आदेश वैध होता है और उसे लागू किया जा सकता है। परिव्यय का अर्थ यह होता है कि उस दिन का खर्च क्या है, इसमें वकील की उस दिन की फीस आती है। परिव्यय लगाते समय कितने मूल्य का मुकदमा है इस पर ध्यान रखना चाहिए तथा उस समय की परिस्थिति पर विचार करके परिव्यय लगाना चाहिए। इन आधारों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि इसमें परिव्यय बहुत अधिक नहीं है। परिव्यय देने की शर्त उचित थी और इसके पालन न करने पर वाद उत्सर्जित किया जा सकता था। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंध में वादी को उचित अवसर प्रदान भी कर दिया गया है।

बहस के अंत में वादी ने कहा कि परिव्यय देने के लिये कुछ समय और दिया जाय किंतु उसकी बात मानने योग्य नहीं है कारण कि वादियों को ६ वर्ष तक का समय मिला किंतु अब भी वे सुनवाई की तिथि को रुपया नहीं देना चाहते हैं जिससे पता चले कि वे पैरवी करने के लिये तैयार हैं। अतः ऐसी अवस्था में समय नहीं बढ़ाया जा सकता।

उपर्युक्त कारणों से अपील असफल होती है और वह परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है। अपील के स्मृतिपत्र पर जितनी फीस लगती है कार्यालय इसकी गणना कर लेगा और इसकी डिग्री में जोड़ देगा तथा डिग्री की एक प्रतिलिपि बनारस के कलक्टर के यहाँ विधि के अनुसार वसूली के लिये भेज देगा।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका १९५९ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ३९

एच० पी० अस्थाना और ए० पी० श्रीवास्तव न्यायमूर्तिगण

एस० ए० एफ० ओ० सं० ६२।१९५३–१५ अक्टूबर १९५८

इंदर गोपाल तथा अन्य — आपत्तिकर्ता अपीलकर्तागण

वि०

भीमराज हरललका तथा अन्य निर्णीत ऋणी उत्तरवादीगण

हिंदू विधि—पिता द्वारा लिया हुआ ऋण–पिता और पुत्र दोनों के विरुद्ध यदि वाद निवेशित किया गया है किंतु उसकी डिग्री केवल पिता के विरुद्ध हुई है तथा पुत्र के विरुद्ध वाद उत्सर्जित हो गया है तो समस्त संयुक्त परिवार की संपत्ति के विरुद्ध जिसमें पुत्र का भी हिस्सा संमिलित है ऋणदाता का निष्पादन (इक्जीक्यूशन) करने का अधिकार

न्यायमूर्ति अस्थाना—

अपीलकर्तागण के पिता के विरुद्ध एक डिग्री पारित हुई थी और उस डिग्री के निष्पादन के संबंध में अपीलकर्तागण ने व्य० प्र० सं० की आ० २१ और धा० ४७ के अंतर्गत आपत्ति निवेशित किया था। यह आपत्ति अस्वीकार कर दी गई। अस्वीकार करनेवाले इसी निर्णय और आदेश के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है।

इसके तथ्य इस प्रकार हैं कि किसी भीमराज हरललका नामक एक व्यक्ति ने अपीलकर्तागण और उनके पिता के विरुद्ध बंबई उच्च न्यायालय में एक वाद निवेशित किया था। इसके बाद वादी ने बयान दिया कि हमारी डिग्री केवल प्रतिवादी सं० १ और ५ के विरुद्ध ही दी जाय तथा और प्रतिवादियों के विरुद्ध डिग्री पारित न की जाय। इस बयान के आधार पर उच्च न्यायालय ने केवल प्रतिवादी सं० १ और ५ के ही विरुद्ध डिग्री पारित किया और शेष प्रतिवादियों के विरुद्ध वाद उत्सर्जित कर दिया। निष्पादन (इक्जीक्यूशन) के लिये प्रार्थनापत्र व्यवहार न्यायाधीश आगरा के यहाँ दिया गया और इसमें केवल वर्तमान अपीलकर्तागण के पिता के ही हिस्से की कुर्की और विक्रय की कार्यवाही नहीं की गई वरन् समस्त संयुक्त परिवार की संपत्ति के विरुद्ध कार्यवाही की गई जिसमें निर्णीत ऋणी के लड़कों का भी हिस्सा था। इस पर व्य० प्र० संहिता की धारा ४७ के अंतर्गत विजय गोपाल, इंदरगोपाल और अमरनाथ ने आपत्ति किया। आ० २१ नि० ५८ के अंतर्गत राजगोपाल ने आपत्ति किया। इसमें कहा गया था कि जिस ऋण के बारे में डिग्री है वह वास्तव में था नहीं और था भी तो जुए की प्रकृति का था और उस पर अनैतिकता की छाप थी। इन्होंने इस ऋण की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया। इन लोगों का यह भी कहना था कि आपत्तिकर्ताओं के विरुद्ध भी मुकदमा था किंतु वह उत्सर्जित कर दिया गया इसलिए उस मुकदमें में पिता के विरुद्ध जो डिग्री पारित हुई उसके निष्पादन में संयुक्त परिवार की संपत्ति का हम लोगों का हिस्सा न कुर्क हो सकता और वे बेचा जा सकता है। विद्वान व्यवहार न्यायाधीश ने आपत्तिकर्ताओं की यह बात न मानी कि उन लोगों के हिस्से के विरुद्ध रुपए की वसूली की कार्यवाही नहीं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकती। उन्होंने आपत्तियाँ उत्सर्जित कर दीं और उसी के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है।

अपीलकर्ताओं का कहना है कि हम लोगों के विरुद्ध वाद उत्सर्जित हो गया है इसलिए केवल रुपए की उस डिग्री के देनदार हम लोग नहीं हैं। उनका यह भी कहना है कि व्य० प्र० सं० के आ० २३ नि० १ (३) के अनुसार डिग्रीदार उस विषय के बारे में अब दूसरा मुकदमा नहीं निवेशित कर सकता जिसको उन्होंने हटा लिया है और जब नया मुकदमा निवेशित नहीं किया जा सकता तो जिस अभ्यर्थना (क्लेम) के बारे में वह हटाया गया है उसी अभ्यर्थना के बारे में निष्पादन कार्यवाही नहीं की जा सकती।

यहाँ हमें इस बात पर विचार करना है कि यदि लड़कों के विरुद्ध वाद उत्सर्जित हो गया है तो भी उनके विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही उस संयुक्त संपत्ति में की जा सकती है कि नहीं।

ए० आई० आर० १९४० पटना ११७ पर निर्भर किया गया। इस मुकदमें में पिता और पुत्र दोनों पक्ष बनाए गए थे। इसमें निर्णय हुआ था कि जब लड़के भी पक्ष बना दिए गए हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि पिता लड़कों का प्रतिनिधित्व कर रहा है और गलती से चाहे ठीक तौर पर ही यदि वाद लड़कों के विरुद्ध उत्सर्जित हो गया है तो उनके विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही नहीं की जा सकती कारण कि पिता के विरुद्ध डिग्री स्वयं और उसके प्रतिनिधित्व दोनों की क्षमता से नहीं पारित हो सकती। पिता के विरुद्धवाली इस डिग्री का निष्पादन लड़कों के विरुद्ध नहीं हो सकता। यह इसलिए नहीं है कि पिता के विधिक ऋण के चुकाने का बंधन पुत्र पर नहीं है वरन् पुत्र इसलिए देनदार नहीं है कि उसको देनदार बनाने के लिये जो कार्यवाही अपनाई गई न्यायालय ने उसे अस्वीकार कर दिया।

दूसरी रूलिंग केशवराम वि० मु० रामदुलारी ए० आई० आर० ४२ अवध ६ दिखलाई गई। इसमें एक बंधक के संबंध में पिता और पुत्र दोनों के विरुद्ध वाद निवेशित किया गया था। पुत्र के विरुद्ध वाद उत्सर्जित हो गया किंतु पिता के विरुद्ध इसकी डिग्री हुई। इस डिग्री का जब निष्पादन हुआ तो उसमें पुत्र ने आपत्ति किया कि चूँकि हमारे विरुद्ध वाद उत्सर्जित हो गया है इसलिए संयुक्त परिवार की संपत्ति के मेरे हिस्से के विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही नहीं की जा सकती। निर्णय हुआ था कि परिलक्षित प्राङ्न्याय (कांस्ट्रक्टिव रेस जुडिकेटा) और व्य० प्र० संहिता के आ० २ नि० २ के अनुसार डिग्रीदार पुत्रों के विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकता। ए० आई० आर० १९५२ इलाहाबाद ३३७ में भी इसी प्रकार वाद पुत्रों के विरुद्ध उत्सर्जित हो गया था किंतु पिता के विरुद्ध व्यक्तिगत डिग्री पारित हुई थी। उक्त डिग्री के निष्पादन में संयुक्त परिवार की संपत्ति में पुत्रों के हिस्सों के विरुद्ध भी कार्यवाही की जाने लगी और इसे पुत्रों के धार्मिक बंधन के आधार पर वैध कहा गया किंतु निर्णय हुआ कि पुत्रों के हिस्से के विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही नहीं की जा सकती।

इन निर्णयों के विरुद्ध एक निर्णय ए० आई० आर० १९३७ मद्रास ७१८ है। इसमें पिता और अवयस्क पुत्रों के विरुद्ध वाद निवेशित किया गया था और संयुक्त परिवार में उनका जो हित है उसके विरुद्ध डिग्री माँगी गई थी। बाद में चलकर लड़कों के विरुद्ध वाद हटा लिया गया। इसमें निर्णय करना था कि वाद हटा लेने पर क्या इसमें व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११ लागू होती है और क्या पिता विधिक ऋण के चुकानेवाले पुत्र के धार्मिक बंधन के आधार पर पुत्र के विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही की जा सकती है? इसमें निर्णय हुआ कि वाद हटा लेने के कारण पुत्रों के विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही करने में कोई रुकावट नहीं पड़ेगी। व्य० प्र० सां० के आ० २३ नि० १ का बंधन अवश्य है पर इसका परिणाम केवल इतना ही होगा कि उसी वादमूल पर वादी कोई नया वाद निवेशित नहीं कर सकता।

ए० आई० आर० १९४१ मद्रास ४४० में मद्रास के दोनों निर्णयों का निर्देश किया गया और ऐसी परिस्थिति में वाद की दो श्रेणियाँ बतलाई गईं—एक वह जब कि वाद के तत्व या विचार करने के बाद यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बंधन से बच कर निकलने की अनुमति उसे नहीं दी जानी चाहिए।

(२) धारा २४२ से यह प्रकट होता है कि किसी वादमूल पर आधारित दावा के विषय में सहायता यदि वाद या प्रार्थनापत्र द्वारा राजस्व न्यायालय से मिल सकती है तो इसे राजस्व न्यायालय में ही निवेशित करना चाहिए। "वाद मूल" (काज आफ ऐक्शन) का अर्थ बहुत विस्तृत और स्पष्ट होता है। इसमें वे समस्त तथ्य आ जाते हैं जो वाद की तिथि के पहले हुए थे और जिनके आधार पर वादी को सहायता प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ है। इस विस्तृत अर्थ को ध्यान में रखने पर यही आता है कि वाद निवेशित करने के पहले जो कुछ भी हुआ और जिनके कारण वादी को सहायता (रिलीफ) प्राप्त हो सकती है वह उसका वाद मूल (काज आफ ऐक्शन) होता है और यदि इसके लिये वह राजस्व न्यायालय में वाद निवेशित करके या प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करके सहायता पा सकता है तो यह उसका वादमूल होता है। हो सकता है कि इसके बारे में जो सहायता (रिलीफ) राजस्व न्यायालय देता है वह पर्याप्त न हो या जो सहायता वादी चाहता है उसके समान न हो। यदि राजस्व न्यायालय को कोई भी सहायता प्रदान करने का अधिकार है तो यही एकमात्र वह न्यायालय है जिसकी शरण में जाना चाहिए। व्यवहार न्यायालय में जाने का प्रश्न नहीं उठता।

(३) वादी को अपने वादपत्र में वास्तविक वादमूल को ही रखना पड़ता है। चूँकि 'वादमूल' में वे समस्त तथ्य आ जाते हैं जो कि वाद निवेशित करने की तिथि के पहले घटित हो चुके हैं इसलिए वादी को उन समस्त तथ्यों को दिखलाना पड़ेगा। वादी को यह अधिकार नहीं है कि वह अवास्तविक और अपूर्ण वादमूल को दिखलावे या तथ्यों को निचोड़कर केवल एक अंश को इसलिए दिखलावे कि इससे राजस्व न्यायालय के अधिक्षेत्र से बचकर व्यवहार न्यायालय के अधिक्षेत्र में चला जाय। यदि वह ऐसा करता है तो पहले तो व्यवहार न्यायालय उसे स्वीकार कर ही लेगा क्योंकि वादपत्र के कथन से ही अधिक्षेत्र का प्रश्न तय होता है परंतु बाद में जब उसे (व्यवहार न्यायालय को) पता चले कि संपूर्ण तथ्य नहीं दिए गए या तथ्यों को निचोड़ दिया गया है या कुछ तथ्य छिपा लिए गए हैं तो व्यवहार न्यायालय को इसकी सुनवाई से इनकार कर देना चाहिए। इसलिए वादी को यह अधिकार नहीं है कि धारण या धारणच्युति की ही बात कह कर इसे व्यवहार न्यायालय में निवेशत करे। उनको पूरे तथ्यों को दिखलाना चाहिए था और यदि वे दिखलाते तो यह पता चलता कि वास्तव में इसे भूधारण अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत निवेशित करना चाहिए था। विद्वान् मुंसिफ को ज्यों ही इसका पता चला उन्हें इसे उत्सर्जित कर देना चाहिए था।

(४) यदि यह वाद अपूर्ण तथ्यों के साथ निवेशित किया गया तो आरंभ में तो इसे ले ही लेना था परंतु जब पूरी बातें मालूम हुई तो न्यायालय को आदेश देना चाहिए था कि वादी उचित राजस्व न्यायालय में अपनी सहायता प्राप्त करे।

(५) यों तो वादी के अपने वादपत्र में संपूर्ण तथ्यों को नहीं दिया है किंतु वास्तव में यह वाद अनधिप्रवेशी के अधिनिष्कासन के लिये ही था और स्पष्टरूपेण यह उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत था। विद्वान् मुंसिफ की दृष्टि से यह बात ओझल हो गई और इसी से उन्होंने निर्णय दिया कि इसकी सुनवाई का अधिकार हमें है।

इस न्यायालय ने धारा २४२ का अर्थ कुछ दूसरे ढंग पर लगाया इसलिए इसमें कुछ संशोधन की आवश्यकता पड़ी। उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश भूधारण अधिनियम १६०१ के अंतर्गत अनधिप्रवेशी के विरुद्ध वाद राजस्व न्यायालय में निवेशित नहीं किया जा सकता था। जब वह अधिनियम लागू था तो खेती किए जानेवाले खेतों पर से अनधिप्रवेशी के अधिनिष्कासन का वाद केवल व्यवहार न्यायालय में ही लिया जा सकता था।

कुछ भी हो संबद्ध उपबंधों के देखने से पता चलता है कि ऐसी बात नहीं थी कि विधान मंडल ने सोचा था कि खेती की जाने वाली भूमि के संबंध में, इसकी प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसकी व्याप्ति का बिना विचार किए हुए, प्रत्येक मुकदमे की सुनवाई केवल राजस्व न्यायालय करे और व्यवहार न्यायालय में वे मुकदमे निवेशित नहीं किए जा सकते। धारा २४२ राजस्व न्यायालय को अधिकार प्रदान करती है और केवल दो ही प्रकार के मुकदमे में व्यवहार न्यायालय का अधिकार हटा देती है। वे निम्नलिखित हैं:—

(१) अधिनियम की चतुर्थ अनुसूची में मुकदमों या प्रार्थनापत्रों की दी गई प्रकृति के बारे में और

(२) वे मुकदमे या प्रार्थनापत्र जो ऐसे वादमूल (काज आफ ऐक्शन) पर आधारित हों जिनके बारे में उक्त अनुसूची में दिए हुए मुकदमों या प्रार्थनापत्रों द्वारा किसी प्रकार की भी सहायता प्राप्त की जा सकती है।

धारा २४२ केवल उसी समय लागू हो सकती है जब मुकदमा उपर्युक्त दो श्रेणियों में से किसी एक में आता हो। यदि वह कार्यवाही उपर्युक्त दोनों श्रेणियों में से किसी एक में भी नहीं आती तो राजस्व न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार नहीं होगा। विद्वान् वकील का कहना है कि या तो धारा १८० में या धा० १८३ के अंतर्गत वाद निवेशित करके वादी सहायता प्राप्त कर सकता था।

इस बात को समझने के लिये दो प्रकार के उन मुकदमों का अंतर समझना आवश्यक होगा जो धारा १८० या १८३ के अंतर्गत निवेशित किए जाते हैं और दूसरे वे मुकदमे जो विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ९ के अंतर्गत निवेशित किए जाते हैं। धारण (पोजेशन) स्वत्व (टाइटिल) का स्पष्ट साक्ष्य देना होता है। साधारण मुकदमों में वादी यदि अपना धारण और अपना स्वत्व दोनों प्रमाणित कर देता है तो वह अवश्य सफल हो जाता है। ऐसे मुकदमों में वादी यदि स्वत्व को प्रमाणित नहीं भी कर पाता है तो अपना पहले से चला आता हुआ धारण दिखलाने पर वह सफल हो जायगा किंतु उसका विपक्षी यदि अपना उससे अधिक अच्छा स्वत्व दिखलाता है तो वादी हार जायगा। वादी के पक्ष में अभिधारणा ऐसी अवस्था में हट जाती है। विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ९ एक विशेष प्रकार की सहायता प्रदान करती है। धारण छोड़ देने पर धारण तुरंत वापस पाने के लिये धारा ९ विशेष अधिकार प्रदान करती है। यदि वादी ने धारण छोड़ दिया है तो सफल होने के लिये उसे निम्नलिखित बातें प्रमाणित करनी चाहिए:—

१—यह कि वे धारण में थे,

२—यह कि वे प्रतिवादी द्वारा धारणच्युत कर दिए गए,

३—यह कि धारणच्युति विधि के अनुसार नहीं है, और

४—यह कि धारणच्युति मुकदमे के ६ महीने के भीतर हुई है।

इसमें वादी या प्रतिवादी किसी के भी स्वत्व (टाइटिल) पर विचार नहीं किया जाता है। प्रतिवादी का स्वत्व यदि सबसे अच्छा हो और इसको वह प्रमाणित भी कर दे तो भी वह जीत नहीं सकता। किंतु इसकी डिग्री सामान्य क्रम में निवेशित स्वत्व के वाद के अधीन होती है इसलिए अच्छे स्वत्ववाला व्यक्ति हानि में नहीं रहता क्योंकि सामान्य क्रम में निवेशित वाद में अपने स्वत्व के आधार पर सफलता प्राप्त करने पर वह धारण वापस प्राप्त कर सकता है।

इस धारा का निर्माण निम्नलिखित कारण से हुआ:-

१—धारण की प्रतिष्ठा विधि के अंतर्गत है और कोई व्यक्ति विधि को अपने हाथ में लेकर अवैध धारण करने वाले का भी धारण नहीं छुड़ा सकता। यदि उसका अधिकार है तो न्यालालय की सहायता से उसका धारण छुड़ा सकता है। आई० एल० आर० १३ इलाहाबाद ५३७।

२—सार्वजनिक सुव्यवस्था के विचार से अचल संपत्ति के बारे में किसी को अपनी सहायता अपने से ही कर लेने की अनुमति नहीं प्रदान की जाती। यदि ऐसा नियम न हो तो शांति व्यवस्था भंग हो सकती है। इसलिए यदि किसी ने सब नियमों की अवहेलना करके गलत ढंग से उस व्यक्ति का धारण छुड़ा दिया है जो धारण में है तो उसे इस गलत कांम का लाभ उठाने नहीं दिया जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) गलत ढंग पर धारण छुड़ा कर प्रमाण के भार को एक पक्ष से हटा कर दूसरे पक्ष पर रखने का जो प्रयत्न किया जाता है उस पर यह उपबंध रोक लगाता है।

धारा ६ सरसरी तौर पर की जानेवाली कार्यवाही है और शीघ्र सहायता प्रदान करने के लिये बनी है। इसमें एकमात्र धारण पर ही विचार किया जाता है, स्वत्व पर नहीं। भूधारण अधिनियम की धारा १८० और १८३ के अंतर्गत जो मुकदमे दाखिल किए जाते हैं वे वास्तव में भिन्न प्रकृति के होते हैं। उनमें सरसरी तौर पर कार्यवाही नहीं होती और वे एकमात्र धारण और धारणच्युति पर ही निर्भर नहीं करते। इन मुकदमों में स्वत्व पर विचार किया जाता है। १८३ के आरंभिक शब्दों से यह पता चलता है कि इस धारा के अंतर्गत मुकदमा दाखिल करने के लिये वादी का 'कृषक' (टेनेंट) होना आवश्यक है। जब तक वह यह नहीं प्रमाणित करता कि मैं कृषक के पद से धारण में था तब तक उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। यदि वादी 'कृषक' प्रमाणित नहीं होता है तो वह हार सकता है। धारा १८० के मुकदमे में भी स्पष्ट है कि वादी को यह कहना पड़ेगा कि उस खेत पर हमारा स्वत्व है। १९५१ ए० एल० जे० २६० गंगादीन वि० गोकुल प्रसाद इसके समर्थन में है।

विद्वान् वकील का तर्क है कि अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) भी भूधारण अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत वाद निवेशित कर सकता है। इसमें संदेह नहीं कि अनधिप्रवेशी धारा १८० में मुकदमा दाखिल कर सकता है किंतु यह मुकदमा केवल धारण और धारण छोड़ने पर आधारित नहीं होगा वरन् यह मुकदमा उस अधिकार पर आधारित होगा जिसे उस व्यक्ति ने अपने धारण के आधार पर प्राप्त किया है। धारा १८० और वि० सा० अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गतवाले मुकदमों में यही अंतर होता है। धारा ६ के मुकदमे में अधिकार का प्रश्न उठता ही नहीं इसलिए धारा २४२ के अंतर्गत व्यवहार न्यायालय के अधिकार के यह बाहर नहीं हो सकता।

विद्वान् वकील का दूसरा तर्क है कि वास्तव में यह मुकदमा ऐसे वादमूल (काज आफ ऐक्शन) पर आधारित है जिसके लिये भूधारण अधिनियम के धारा १८० के अंतर्गत कुछ सहायता प्राप्त की जा सकती थी और इसलिए यह मुकदमा धारा १८० के अंतर्गत ही दाखिल करना चाहिए था। धारा २४२ में वादमूल (काज आफ ऐक्शन) शब्द का प्रयोग हुआ है। यह तर्क उसके ठीक अर्थ के न समझने के कारण है। इसके लिये विद्वान् वकील ने जगनारायन मल्लाह वि० भगवती प्रसाद पांडेय १९५७ ए० एल० जे० ७८३ का अभिदेश किया है जिसमें निर्णय हुआ था 'वादमूल' का अर्थ होता है, "मुकदमा की तिथि तक जो कुछ भी हो चुका है।" इस पद का यही अर्थ लेकर विद्वान् वकील ने बहस की है कि मुकदमा के पहले जो कुछ हुआ है उसके आधार पर यदि वादी राजस्व न्यायालय से कोई सहायया प्राप्त कर सकता है तो उसे राजस्व न्यायालय में ही मुकदमा दाखिल करना चाहिए। यहाँ वादीगण जमींदार थे और उन्हीं का कहना है कि प्रतिवादीगण ने हमारा धारण छुड़ा दिया। प्रतिवादियों ने कहा कि इस खेत पर हमारा कृषक का अधिकार है और पहले से ही हम धारण में हैं। ये सभी तथ्य वादी के 'वादमूल' में आते हैं इसलिए वादी के लिये यह अनिवार्य था कि अपने वादपत्र में इन सबको दिखलाता। इसके लिये भूधारण अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत वाद निवेशित किया जा सकता था और कुछ सहायता प्राप्त की जा सकती थी। वादी ने जब केवल धारण और धारण छोड़ने पर आधारित करके अपना मुकदमा दाखिल किया तो उसने इस प्रकार एक आवश्यक वादमूल के भाग को छिपा लिया। 'वादमूल' की परिभाषा भूधारण अधिनियम के अंतर्गत नहीं दी गई है। इसके लिये हमें इंगलैंड की कुछ रूलिंगस का सहारा लेना पड़ेगा। (१८७३) ८ सी० पी० १०७। २८ ला टाइम्स ३२ और १८८९ क्यू० बी० डी० १२८ में इस पद की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

"प्रत्येक तथ्य जिनको न्यायालय के निर्णय में अपने अधिकार का समर्थन करने के लिये वादी को यदि उनका विरोध किया जाता है, प्रमाणित करना आवश्यक है किंतु इसमें साक्ष्य का वह प्रत्येक अंश नहीं आता जिसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता प्रत्येक तथ्य को प्रमाणित करने के लिये पड़ती है वरन् इसमें वह प्रत्येक तथ्य आता है जिसको प्रमाणित करना आवश्यक है।" इस न्यायालय के पूर्ण न्यायासन ने (आई० एल० आर० १६ इलाहाबाद १६५) में इस पद की व्याख्या इस प्रकार किया है :—

"उन सारभूत एवं आवश्यक तथ्यों का वह पूरा गट्ठर जिन्हें मुकदमे में सफलता प्राप्त करने के लिये वादी को प्रमाणित करना आवश्यक होता है।" १५ इंडियन अपील्स १५६ में प्रिवी कौंसिल ने इसे इस प्रकार निर्धारित किया है :—"वादमूल उस माध्यम से संबंध रखता है जिस पर वादी न्यायालय से अपने पक्ष में निष्कर्ष निकालने की माँग करता है।"

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि 'वादमूल' का संबंध उन सभी बातों से नहीं रहता जो मुकदमा की तिथि के पहले हो चुकी है वरन् 'वादमूल' का संबंध केवल उन आवश्यक और सारभूत तथ्यों से है जिनको सहायता प्राप्त करने के लिये प्रामाणित करना वादी के लिये आवश्यक है। धारा ६ के अंतर्गत सहायता प्राप्त करने के लिये धारण और धारण का छोड़ना आदि केवल उपर्युक्त बातें ही प्रमाणित करना आवश्यक होता है। वि० सा० अधिनियम के धारा ६ के अंतर्गत वाद के लिये बस इतने ही 'वादमूल' की आवश्यकता है। किसी अन्य तथ्य के बारे में कहने और उसको प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है। अतः इसके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि वह अधूरे 'वादमूल' के साथ न्यायालय में आया है। संबद्ध उपबंध के देखने से पता चलता है कि केवल इतने ही तथ्यों के आधार पर वादी राजस्व न्यायालय में कोई सहायता नहीं पा सकता। धारा ६ के अंतर्गत दाखिल किए हुए इस मुकदमे में केवल व्यवहार न्यायालय ही सहायता प्रदान कर सकता है और इस प्रकार इसमें भूधारण अधिनियम की धारा २४२ लागू नहीं होती।

यह सत्य है कि किसी वादी को यह अनुमति नहीं प्रदान की जा सकती कि वह अपूर्ण वादमूल या वादमूल को तोड़कर अपनी इच्छानुसार किसी न्यायालय विशेष को अनुमति प्रदान करे। किंतु साथ ही साथ इसमें भी संदेह नहीं है कि अधिक्षेत्र का प्रश्न वादपत्र में कही हुई बात के आधार पर तय किया जाता है किंतु वाद में जब यह पता चलता है कि वे बातें गलत हैं तो वाद उत्सर्जित हो सकता है। ये सिद्धांत वर्तमान परिस्थिति में लागू नहीं होते। यहाँ वि० सा० अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गत वाद निवेशित किया गया है। इसके लिये स्वत्व (टाइटिल) की चर्चा करना आवश्यक नहीं था, यदि स्वत्व की बात नहीं भी जाती तो न्यायालय उस पर विचार न करता। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वादी अधूरे वादमूल के साथ न्यायालय में आया है। जो बात उसने कही केवल वही बात कही भी जा सकती थी। प्रतिवादी भी स्वत्व की बात नहीं कह सकता था। इस प्रकार कोई आधार ऐसा नहीं था जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि यह मुकदमा राजस्व (रेवेन्यू) न्यायालय में दाखिल होना चाहिए था।

एक बात यह कही गई है कि धारा ६ के अंतर्गत वाली डिग्री फिर सामान्य क्रम में निवेशित वाद की डिग्री द्वारा उलट दी जाती है इसलिए इससे केवल मुकदमेबाजी बढ़ती है और विधि का सिद्धांत यह है इस प्रकार की डिग्री पारित होनी ही नहीं चाहिए। किंतु जिस सिद्धांत के कारण धारा ६ बनाई गई वह यह है कि जो व्यक्ति गलती करता है और इस प्रकार विधि को अपने हाथ में लेकर धारण हटा देता है उसे इस गलती का लाभ उठाने का अवसर नहीं प्रदान करना चाहिए और उसे वापस कर देना चाहिए। धारा ६ के अंतर्गत की डिग्री के निष्पादन में भी स्वत्व का प्रश्न नहीं उठाने दिया जाता। अतः इस प्रकार के मुकदमे के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि चूँकि इससे कई मुकदमे उठ खड़े होंगे इसलिए इसे नहीं लिया जाना चाहिए।

इस प्रकार जगनरायन मल्लाह वि० भगवती प्रसाद पांडेय वाले मुकदमे का निर्णय जो प्रार्थी की बात का समर्थन करता है, ठीक नहीं था और गंगादीन वि० गोकुल प्रसाद में निर्णय ठीक हुआ था और यह मानने योग्य है।

केवल जगनरायन मल्लाह वाले मुकदमे और इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसरण करनेवाले मुकदमे को छोड़कर अनेक निर्णयों का झुकाव हमारे की विचार की ओर है।

अतः निर्देशित प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया जाता है। उपर्युक्त उत्तर के साथ इसके अभिलेख निर्देश करनेवाले न्यायालय को भेज दिए जाँय।

संक्षिप्त विवरण

गौरीशंकर सराफ तथा अन्य — अपीलकर्ता गण

वि०

सेंट्रल हिंदुस्तान बैंक लिमिटेड तथा अन्य— उत्तरवादीगण।

ए० आई० आर० १९५९ कलकत्ता २६२

ए० एफ० ए० डी० सं० ६४२ और ६४३।१९५२ दिनांक ६।३।१९५८।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० २१ नि० ४९ और ५०-साझेदारी (पार्टनरशिप) अधिनियम धा० ३१-फर्म के गठन में परिवर्तन होने पर उसके ऋणदाताओं का कार्यवाही करने का अधिकार।

सामान्यतया ऋणदाताओं का यह अधिकार होता है कि साझेदारी फर्म की समस्त परिसंपत (ऐसेट्स) के विरुद्ध कार्यवाही कर सकते हैं। जब वह संपत्ति दूसरे की हो जाती है तब ऋण के लिये उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल उसी दशा में की जा सकती है जब कि यह भार (चार्ज) या धारणाधिकार (लियन) के अधीन हो।

न्यायालय इसकी संपत्ति को पुराने फर्म की ही संपत्ति मान सकता है। किंतु उस अवस्था में जब कि फर्म के गठन में परिवर्तन वास्तविक हो और नए फर्म का नवीन स्वरूप ही जाता हो तब यह नहीं कहा जा सकता कि पुराने फर्म की संपत्ति अभी भी पुराने फर्म की संपत्ति चली आती है। यदि ऐसी संपत्ति पुराने फर्म के हाथों में नहीं पहुँच सकती तो यह स्पष्ट है कि नए फर्म के हाथों में इसकी कुर्की नहीं की जा सकती।

एदापल्ली वालिया राजा — डिग्रीदार अपीलकर्ता

वि०

चक्को —निर्णीत ऋणी उत्तरवादी

ए० आई० आर० १९५९ केरल ८३

पारूर के उपन्यायाधीश के निर्णय और आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० ३२५।१९५६ दिनांक १०-६-१९५८।

अ-व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धा० ४८ (१) (बी०) परवर्ती (सबसिक्वेंट) आदेश-निष्पादन न्यायालय का समझौता स्वीकार करने वाला आदेश-समझौता प्रार्थनापत्र पर अभिलिखित आदेश।

निष्पादन न्यायालय (एक्जीक्यूटिंग कोर्ट) में डिग्री का ऋण किश्तों में देने के लिये दोनों पक्षों में तय हुआ और निष्पादन न्यायालय ने इस व्यवस्था को स्वीकार करनेके लिये आदेश पारित किया तो यह आदेश धा० ४८ (१) (बी०) के अंतर्गत परवर्ती आदेश (सबसीक्वेंट आर्डर) माना जायगा।

ब—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० ३ नि० ४-वकील का कर्तव्य।

न्यायाधीश और विरोधी वकील के बीच यह विश्वास की बात है कि वकील न्यायाधीश को दोनों पक्षों के पक्ष और विपक्ष में पड़नेवाली कानूनी बातों से अवगत करावे।

किशनलाल — अपीलकर्ता

वि०

कोठारी जेठमल — उत्तरवादी

ए० आई० आर० १९५९ मध्य प्रदेश ११५

मनसौर के जिला न्यायाधीश के आदेश दिनांक २१-४-१९५५ के विरुद्ध प्रथम अपील सं० २७।१९५५।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धा० ६५ और आ० २१ नि० ५२ (२) और ८४—डिग्रीदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरीददार को क्रय मूल्य के विरुद्ध डिग्री के धनराशि के प्रतिसादन (सेट आफ) का अधिकार कब होता है—डिग्रीदार को किस तिथि तक सूद लेने का अधिकार है ।

धा० २१ नि० ७२ (२) केवल डिग्रीदार के प्रतिसादन (सेट आफ) से संबंध रखता है तथा यह न्यायालय के कर्तव्य के बारे में है कि डिग्री का भुगतान हो जाय । यह उपबंध उस निश्चित समय के बारे में कुछ नहीं कहता कि कब डिग्रीदार को प्रतिसादन (सेट आफ) का कानूनी अधिकार होता है और कब न्यायालय डिग्री के भुगतान की कार्यवाही कर सकता है ।

यह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है कि किसी परिस्थिति विशेष में डिग्रीदार खरीददार को धा० २१ नि० ८४ (१) के अंतर्गत रुपया जमा करने के लिये कहा जाय कि नहीं । यदि किसी विशेष परिस्थिति में उपनियम (१) की शर्त छोड़ दी गई है और डिग्रीदार को प्रतिसादन (सेट आफ) की अनुमति नि० ७२ में दी गई है तो इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि वह रुपया जो डिग्रीदार को खरीददार के पद से अन्य प्रकार से जमा करना होता वह न्यायालय के नियंत्रण और उसके निर्देश के भीतर नहीं है और वह ऐसा है जिसको प्रतिसादित करने का अधिकार डिग्रीदार को विक्रय के स्थिरीकरण के पहले भी है ।

धा० ६५ का यह उपबंध कि किस तिथि से संपत्ति खरीददार की हो गई समझी जायगी इस प्रश्न से सर्वथा भिन्न है कि किसी तिथि को डिग्रीदार को रुपया (परचेज मनी) निकालने का अधिकार होता है । इसमें संदेह नहीं कि समझा यह जाता है कि विक्रय की तिथि से संपत्ति खरीददार को मिल चुकी है किंतु ऐसा तभी हो सकता है जब कि विक्रय का पुष्टिकरण हो गया हो । किंतु किसी भी प्रकार वह उस तिथि पर प्रभाव नहीं डाल सकती जिस दिन कि डिग्रीदार को रुपया निकाल कर अपनी डिग्री के भुगतान में रुपया ले लेने का अधिकार होता है।

यदि डिग्रीदार खरीददार को जब तक विक्रय का पुष्टिकरण नहीं हो जाता तब तक डिग्री के रुपए को प्रतिसादित करने का अधिकार नहीं होता तो जब तक विक्रय का पुष्टिकरण नहीं हो जाता तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि डिग्री प्राप्त (रियलाइज्ड) हो चुकी है। इसलिए विक्रय की पुष्टि की तिथि तक सूद लेने का डिग्रीदार का अधिकार है ।

एम० एस० एम० शर्मा प्रार्थी

वि०

श्री कृष्ण सिनहा तथा अन्य उत्तरवादीगण

ए० आई० आर० १९५९ सर्वो० न्या० ३९५

प्राथनापत्र सं० १२२।१९५८

भारतीय संविधान, अनुच्छेद १९ (१) ए०—समाचार पत्र (प्रेस) स्वातंत्र्य—

अनुच्छेद १९ के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को भाषण एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य प्रदान किया गया है परंतु अलग से और स्पष्टतः समाचार पत्रों की स्वतंत्रता का नियम नहीं है । किंतु यह निश्चित है कि ध्वनितार्थ से समाचार पत्रों को यह स्वतंत्रता प्रदान की गई है पर इस विषय में दो बातों पर ध्यान देना चाहिए, एक यह कि जो भारत का नागरिक नहीं है और समाचार पत्र निकालता है उसको यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती और दूसरे यह कि प्रत्येक व्यक्ति को जो भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है उससे अधिक स्वतंत्रता भारत में समाचार पत्रों को नहीं है । इस संबंध में यहाँ समाचार पत्रों को कोई विशेषाधिकार नहीं है ।

भारतीय संविधान, अनुच्छेद १९४ (३) अयथार्थ प्रतिवेदन प्रकाशित करने से रोकने का अधिकार (न्यायमूर्ति सुब्बाराव, विरुद्ध)

हमारे संविधान के प्रारंभण के समय सामान्य सदन (हाउस आफ कामंस) को यह अधिकार या विशेषाधिकार था कि जो भी वादाविवाद या कार्यवाही सदन के भीतर हो उसके सच्चे और ठीक ठीक प्रतिवेदन के प्रकाशन को भी रोक दे । अतः संबद्ध अवसर पर सदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यह अधिकार था कि वादाविवाद या कार्यवाही का अयतार्थ छाँटकर प्रतिवेदन प्रकाशित करने पर रोक लगा दे। अनुच्छेद १९४ (३) का अंतवाला अंश इन समस्त अधिकारों और विशेषाधिकारों आदि को राज्य के विधान मंडल के सदन को प्रदान करता है। संविधान में यह स्पष्ट दिया हुआ है कि संसद् ने या राज्य विधान मंडल ने अपने सदस्यों के लिये विशेष नियम नहीं बनाया है तो हमारे संविधान के प्रारंभण के समय जो अधिकार सामान्य सदन (हाउस आफ कामंस) को थे वे सभी अधिकार और विशेषाधिकार इन सदस्यों को प्राप्त होंगे और इसलिए यह तय हो जाने पर भी कि संबद्ध अवसर पर सामान्य सदन को अमुक अधिकार या विशेषाधिकार थे यहाँ उन्हें उस अधिकार से वंचित किया जाना संविधान की व्याख्या करना न होकर उसका पुर्ननिर्माण होगा। हमारे सदन (हाउसेज) सामान्य सदन की तरह इसमें संदेह नहीं कि प्रकाशन के महत्व को समझते हैं और केवल चरम स्थितियों में ही उन अधिकारों और विशेषाधिकारों का प्रयोग करेंगे। (न्यायमूर्ति सुब्बाराव)

१९५० में सामान्य सदन को कार्यवाहियों के सही और ठीक ठीक प्रतिवेदन के प्रकाशन में रोक लगाने का कोई विशेषाधिकार नहीं था। केवल उस समय रोक लगाई जा सकती थी जब कि अपवाद स्वरूप परिस्थितियाँ उपस्थित होने पर गुप्त सत्र होता था तथा कार्यवाहियों की दुर्भावना से या छाँटकर निकाला हुआ या असत्य प्रतिवेदन को प्रकाशित करने में रुकावट डालने का केवल सीमित विशेषाधिकार प्राप्त था।

भारतीय संविधान -अनुच्छेद १९४, अनुच्छेद १९४ अनुच्छेद १९ के अधीन नहीं है।

———

आर० सी० गुप्ता	—	**प्रार्थी**
	वि०	
राज्य	—	**विपक्षी**

ए० आई० आर० १९५९ इलाहाबाद २१९

आगेरा के अतिरिक्त जिलाधीश के आदेश दिनांक २१-५-१९५७ के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण सं० ९८१।१९५७।

भारतीय संविधान अनुच्छेद २० (३) में 'साक्षी होना' (टू बी विटनेस) का अर्थ-दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ९४ के अंतर्गत आदेश।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २० (३) में साक्षी होना शब्दों का जो प्रयोग किया गया है वह विस्तृत अर्थ में है उक्त अभिव्यक्ति का अर्थ है साक्ष्य देना।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ९४ के अंतर्गत न्यायालय के समक्ष लेख्य (डाकुमेंट) प्रस्तुत करने के लिये किसी व्यक्ति को जो आदेश दिया जाता है वह आदेश स्पष्ट रूप से साक्ष्य प्रस्तुत करने के समान होता है। इसलिए संविधान के अनुच्छेद २० (३) में जो मनाही है वह ऐसे आदेश में लागू होती है।

—

आर० शंकर-अभियुक्त वि० राज्य- विपक्षी

ए० आई० आर० १९५९ केरल १००।

त्रिवेंद्रम के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के आदेश से आपराधिक अपीलें सं० ७३ और ८१।१९५८।

भारतीय संविधान अनुच्छेद १४-दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १९८ बी० क्या इस अनुच्छेद के उपबंध के विरुद्ध है।

कोई व्यक्ति विभेदकरण की बात तब तक नहीं कह सकता जब तक कि उसके साथ जो भिन्न व्यवहार किया गया है वह उसके लिये हानिकारक न हो। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस धारा का उपबंध उन दो प्रकार के अभियुक्तों के बीच विभेदकरण करता है जो पहला, साधारण व्यक्ति के विरुद्ध निदात्मक लेख (लाइबेल) के लिये अपराधी हैं और दूसरा, वे लोग जो इस धारा में दिए हुए लोगों के विरुद्ध उक्त अपराध के अपराधी हैं। दोनों प्रकार के अभियुक्तों में अंतर है एक में सार्वजनिक हित का प्रश्न है और दूसरे में सार्वजनिक हित का प्रश्न नहीं है। इस अंतर के आधार पर १९८ बी० जैसा विशिष्ट उपबंध बनाना ठीक है।

दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८) धारा १९८-बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३)--इस धारा के अंतर्गत आनेवाले मुकदमों में जिस व्यक्ति के ऊपर अपराध किया गया है उसके द्वारा परिवाद (कंप्लेंट) निवेशित करने की आवश्यकता है कि नहीं ।

न्यायमूर्ति रमन नायर द्वारा—धा० १९८ बी० (१३) का उचित अर्थ यह होता है कि उस धारा के अंतर्गत भी आनेवाले मुकदमों में जिस व्यक्ति के विरुद्ध अपराध किया गया है उसे परिवाद (कंप्लेंट) निवेशित करने से छुटकारा नहीं दिया गया है इसलिए उस स्थिति में जब कि परिवाद केवल जन अभियोजक ने निवेशित किया हो और जिसके विरुद्ध अपराध किया गया है उसने परिवाद निवेशित नहीं किया है तो अभियोजन (प्रासिक्यूशन) को असफल हो जाना चाहिए ।

न्यायमूर्ति वैद्यालिंगम् द्वारा—धा० १९८ बी० (१३) का अभिप्राय यह नहीं होता कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध अपराध किया गया है वह भी जन अभियोजक द्वारा दाखिल किए हुए परिवाद में पक्ष हो। धारा १९८ बी० (१३) का अभिप्राय केवल इतना ही होता है कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध अपराध किया गया है, यदि वह चाहे तो न्यायालय में आकर सीधे धा० १९८ के अंतर्गत परिवाद निवेशित करने का उसका अधिकार अक्षुण्ण है ।

दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८) धा० १९८ बी० (३)—उपधारा (३) का पालन न करने से अन्वीक्षा (ट्रायल) गलत हो जाता है ।

———

हसनाम बरुंटन सिंह **प्रार्थी**

विरुद्ध

थोकवम निंगोल हसनाम ओग्बी भानू देवी तथा अन्य **विपक्षी**

ए० आई० आर० १९५९ मनीपुर २०

हिंदू विवाह अधिनियम (१९५५) धा० ५, ४ अधिनियम की वैधता—यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद १४, १५ और २५ के विरुद्ध नहीं पड़ता—पहली पत्नी के जीवन काल में दूसरा विवाह करने का प्रभाव—(भारतीय दंड संहिता (१८६०), धा० ४९४)

हिंदू विवाह अधिनियम, १९५५ जिसके अनुसार कोई हिंदू केवल एक ही विवाह कर सकता है भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४,१५या २५ के विरुद्ध नहीं है।

यह कहना कि जब किसी क्षेत्र में पुरुषों की संख्या से स्त्रियों की संख्या अधिक है तो एक ही विवाह की व्यवस्था से समाज में अनैतिकता फैलेगी माना नहीं जा सकता ।

उसी प्रकार यह कहना कि मनीपुर की प्रथा या वहाँ का व्यक्तिगत विधि (परसनल ला) मनीपुर संविधान अधिनियम (१९४७) और मनीपुर (न्यायालय) अधिनियम, १९५५ की धारा ४२ के अंतर्गत सुरक्षित और ज्यों का त्यों है अधिनियम की धारा ४ और भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३७२ (अनुसूची ७ की सूची ३ के पद ५ के साथ) के अनुसार माना नहीं जा सकता ।

अनुच्छेद १५ (१) के अंतर्गत नागरिक को जो मौलिक अधिकार उपलब्ध हैं वे व्यक्ति के नाते हैं और उस अर्थ में वे व्यक्तिगत कहे जा सकते हैं। उस उपवाक्य में 'केवल' शब्द का जो प्रयोग हुआ है उसका मतलब यह होता है कि किसी धर्म और जाति विशेष आदि के व्यक्ति के साथ दूसरे धर्म या जाति की तुलना में असमानता का व्यवहार केवल इसलिए नहीं किया जायगा कि वह किसी विशेष जाति या धर्म का व्यक्ति है। दूसरे शब्दों में इसका अभिप्राय यह है कि और सब बातें समान रहने पर किसी व्यक्ति की जाति या उसका धर्म वरीयता या अक्षमता का आधार नहीं हो सकता। तात्पर्य यह कि अनुच्छेद में जो आधार दिए गए हैं उनके अलावा अन्य आधारों या विचारों पर विभेदकरण किया जाना असंवैधानिक नहीं है ।

अनुच्छेद १४ जो रोक लगाता है वह केवल इस बात पर कि कोई व्यक्ति या व्यक्ति वर्ग विरुद्ध विधान बनाने के लिये या विभेदकरण के लिये विशेष तौर पर चुना जाय। इसलिए यदि वर्गीकरण मनमाने ढंग पर किया गया है और बिना किसी आधार के हैं केवल तभी उसमें अनुच्छेद लागू होगा, अन्यथा नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Injunction order	निषेधाज्ञा
" pendente lite	वादकालीन आज्ञा
In jure	न्यायालय में
Injure	हानि पहुँचाना, क्षति पहुँचाना
Injuria	अपकृति
Injurious	हानिकर
" effects	हानिकर प्रभाव
Injuriously	हानिकर रूप से
Injury	चोट, क्षति
" report	उपघात प्रतिवेदन
" to property	संपत्ति क्षति
" without damage	हानि बिना अपकृति
Injustice	अन्याय
In kind	वस्तु रूप में
Inland	अंतर्देशीय
" waters	देशाभ्यंतर जल
" waterways	देशाभ्यंतर जलपथ
In law	विधिगत् , विधिनुसार
Inlet	प्रवेश
In lieu of	के स्थान में
" " thereof	उसके स्थान में
" limine	आरंभ में
" litem	वादकाल में
" loco	स्थान में
" " parentis	माता पिता के स्थान में
" lump sum	पिंड राशि में
Inmate	सहवासी
In medio	मध्य में
" memorium	स्मृति में
" miniature	लघु रूप में
Inn	पांथशाला
Innate	सहज, प्राकृत
Inn-keeper	पांथशालिक
Innocence	निर्दोषिता
Innocent	निर्दोष
" party	अकपट पक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Innocent possession	अकपट धारण
,, woman	सच्चरित्रा, सती
Innocuous	अहानिकर
Inn of court	न्याय विहार
Innovation	नवप्रवर्तन
Inns of chancery	वादजीवि संस्था
Innuendo	छेकोक्ति, इंगित
In official capacity	अधिकारी रूप में
Inofficious	कर्तव्य पराङ्मुख, अप्रवृत्त
,, will	उल्लंघी इच्छापत्र
In open court	खुले न्यायालय में
Inoperable limit	अकार्य सीमा
In operation	प्रवर्तन में
Inoperative	अप्रवृत्त, अप्रवर्ती, प्रवर्तनशून्य
In order	यथाक्रम, क्रम में, क्रम से, व्यवस्थित
,, ,, of merit	योग्यतानुसार
,, ,, ,, priority	पूर्वता क्रम में
,, ordinary course	सामान्य क्रम में
Inondinate	क्रमशून्य, असंयत, अनियमित
In other respects	अन्य बातों में
,, pari cause	सम दशा में, सम स्थिति में
,, pari delicto	सम दोष में, सम त्रुटि में
,, pari materia	सम दशा अथवा स्थिति में
,, partial modification	में आंशिक परिवर्तन करते हुए
,, particular	विशेषतः विशेषतया
,, pendente	निलंबित
,, perpetuity	शाश्वत, शाश्वत काल पर्यंत
,, person	स्वयं
,, personam	व्यक्ति बंधक
,, place of	के स्थान में
,, plain language	स्पष्ट शब्दों में
,, posse	संभवतः
,, practice	व्यवहार में, व्यवहारतः
,, principle	सिद्धांततः
,, progress	प्रवर्तमान, चालू
,,-promptu	सत्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In proper order	उचित क्रम में
„ proportion of	के अनुपात में
„ „ to	अनुपाततः, के अनुपात में.
„ pursuance of	के अनुसरण में, अनुसार
„ „ „ a resolution	संकल्पानुसार
Inquest	मरणान्वेषण, अन्वेषण
In question	प्रश्नास्पद, प्रस्तुत, उक्त
Inquest report	मरणान्वेषण प्रतिवेदन
Inquisition	संपृच्छा
Inquisitorial	अतिपृच्छाशील
In re	विषय में, संबंध में
In recognition	के हेतु
„ regard to	के बारे में
„ regular order	नियमित क्रम में
„ relation to	के संबंध में
„ rem	रयि बंधक, सर्व बंधक
„ replacement of	के स्थान पर
„ representative capacity	प्रतिनिधि के रूप में
„ respect of	के लिये, के बारे में, के विषय में
„ safe custody	सुरक्षित
Insane	विक्षिप्त
„ delusion	विक्षिप्त, भ्रम
Insanitary	अस्वास्थ्यकारी, अस्वच्छ
Insanity	विक्षिप्ति
In satisfaction of claims	अभ्यर्थन चुकाने के लिये
Insecurity	असुरक्षा
Insensitive	संवेदना शून्य
Inseparable	अभिन्न
In sequence	लगातार
„ series	मालाबद्ध
Insert	जोड़ना, डालना
Inserted	निविष्ट
Insertion or deletion	जोड़ना अथवा निकालना
In session	सत्र में
In sevreralty	अनन्याधिकृत
Insight	अंतर्दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Insignia	अधिचिह्न
Insignificant	नगण्य
Insinuation	कटाक्ष
Insist	आग्रह करना
Insistence	आग्रह
Insobriety	असंयमता
In so far as	जहाँ तक, यावत्
Insolent	उद्धत, अपमानकारी
Insolvency	शोधाक्षमता
" Act	शोधाक्षमता–अधिनियम
" Rules	शोधाक्षमता नियम
Insolvent	शोधाक्षम
In some respects	कुछ बातों में
" special cases	विशेष स्थितियों में
" specie	वस्तु रूप में, मुद्रा में
Inspecting Assistant commissioner of Income Tax	निरीक्षक सहायक आयकर आयुक्त
Inspection of document	लेख्य का निरीक्षण
" " injury	क्षति का निरीक्षण
Inspector	निरीक्षक
Inspector General of Civil Hospitals	जानपद चिकित्सालय महानिरीक्षक
" " " Police	आरक्षि महानिरीक्षक
" " " Prisons	कारा महानिरीक्षक
" " " Registration	पंजीयन महानिरीक्षक
" of Accounts	लेखा निरीक्षक
" " Civil supplies	जानपद प्रदाय निरीक्षक
" " Excise	उत्शुल्क निरीक्षक
" " Explosives	उत्स्फोट निरीक्षक
" " Factories	निर्माणी निरीक्षक
" " Sales Tax	विक्रयकर निरीक्षक
" " Schools	विद्यालय निरीक्षक
" " Technical Education	औद्योगिक शिक्षण निरीक्षक
" " Works	कर्मांत निरीक्षक
" " Watch and Ward	प्रहरि निरीक्षक
Inspectress of Schools	विद्यालय निरीक्षिका
In spirit as well as in letter	तत्वतः और अक्षरशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Inspite of	के होते हुए भी
Instance	प्रेरणा, अनुरोध, उदाहरण, अवसर, वाद
at the instance of	की प्रेरणा पर, के कहने पर
court of first instance	प्रथम बाद न्यायालय
in the first instance	प्रथमतः, प्रथम बार
Instantanious	तात्क्षणिक
Instant death	तत्क्षण मृत्यु, तत्काल मृत्यु
„ dismissal	तत्काल पदच्युति
Instantly	तत्क्षण, तत्काल
In status quo	यथा स्थिति
Instead of	के स्थान में
Instigate	अपोत्तेजन, अपोत्तेजित करना
Instigation	अपोत्तेजना
Instigative	अपोत्तेजी
Instigator	अपोत्तेजक
Institute	संस्था
Institute	(क्रिया) (मुकदमा) चलाना
„ a suit	बाद संस्थापित करना, वाद चलाना
Instituted	संस्थापित
Institute of International Law	अंताराष्ट्रिय विधि संस्था
Institution	संस्थापन
In strict conformity with	का पूर्ण अनुसरण करते हुए, के सर्वथा अनुरूप
Instruct	शिक्षा देना, अनुदेशन करना
Instruction	शिक्षण, पाठन
Instruction	उनुदेश
Instrument	साधन, संलेख, विलेख
„ of evidence	साक्ष्य साधन
„ „ instructions	अनुदेश संलेख
Instrument of partition	विभाजन संलेख
„ „ title	स्वत्व संलेख
„ „ trust	न्यास संलेख
Insufficiently stamped	न्यून मुद्रांकित
Insufficeint security	अपर्याप्त, प्रतिभूति
„ stamp	अपर्याप्त मुद्रांक
Insult	अपमान
In supersession of	का अधिलंघन करते हुए, को निष्प्रभाव करते हुए —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In support of	के समर्थन में, की पुष्टि में
Insurable	आगोप्य
" interest	आगोप्य हित
" risk	आगोप्य हानिभय
Insurance	आगोप
" agent	आगोप अभिकर्ता
" broker	आगोप-मध्यग
" charge	आगोप प्रभरण
" policy	आगोप लेख
" premium	आगोप प्रव्याजि
Insurant	आगोपित
Insure	आगोप करना
Insured	आगोपित
Insurer	आगोपक
Insurgence	अभिद्रोह
Insurgent	अभिद्रोही
Insurrection	परिद्रोह
In suspense	निलंबित
Intact	अविकल, संपूर्ण
Integrity	सचाई
Intelligence office	गुप्त वार्ता कार्यालय
Intendment	प्राधीक्षक
Intended	अभिप्रेत
Intending	इच्छुक
Intendment	मंतव्य, अभिप्राय
Intense	प्रचंड, उग्र, गहन, घन
Intention	विचार, अभिप्राय
Intentionally	साभिप्राय, जानबूझकर
Intentional omission	जानबूझकर न करना
Intention of the legislature	विधानमंडल का अभिप्राय
" to defraud	प्रतारण का अभिप्राय
Inter alia	और बातों के साथ साथ
Intercept	मार्ग में रोकना
Intercepted	अंतारुद्ध
Intercourse	समागम
Interdependent	अन्योन्याश्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Interdominion	अंतराधिराज्य
Interest	हित, स्वार्थ, स्वत्व, रुचि
„ charges	वृद्धि प्रभार
Interested	बद्धहित, हितपरायण
„ person	हितार्थी व्यक्ति
Interest in common	सामान्य हित
Interesting to note	ध्यान देने योग्य
Interest in land	भू बद्ध हित, भूमि में हित
„ „ the estate of the deceased	मृत की संपदा में हित
„ of minorities	अल्प संख्यकों का हित
„ „ the public	लोक हित
Interfere	हस्तक्षेप करना, बाधा डालना
Interference	हस्तक्षेप, बाधा
Interfere with	बाधा डालना
Interfering	विघ्नकर
Interim	अंतःकालीन, सामयिक, मध्यवर्ती अस्थायी
„ allotment	अंतःकालीन आवंटन
„ compensation	अंतःकालीन प्रतिकर
„ curator	अंतःकालीन संरक्षक
„ government	अंतःकालीन शासन
„ order	अंतःकालीन आदेश
„ period	अंतरवधि
„ receiver	अंत;कालीन प्रापक
„ relief	अंतःकालीन सहायता
Interior	आभ्यंतर भाग, भीतरी भाग
Interlocutory	अंतर्वादीय, वाद कालिक
pendente lite	वाद कालीन
in litem	वाद काल में
Interlocutory application	अंतर्वादीय आवेदन पत्र
„ costs	अंतर्वादीय परिव्यय
„ degree	अंतर्वादीय डिग्री
„ injunction	अंतर्वादीय निषेधाज्ञा
„ judgment	अंतर्वादीय निर्णय
„ order	अंतर्वादीय आदेश
Interloper	बलात्प्रवेष्टा
Intermeddle	हस्तक्षेप करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Intermediary	मध्यवर्ती
Intermediate	अंतर्वर्ती, मध्यम, माध्यमिक
" order	अंतस्थ आदेश
Intermittent	सविराम
Internal	आभ्यंतर
" administration	आंतरिक प्रशासन
" affairs	आंतरिक कार्य
International Bank of Reconstruction and Development	अंताराष्ट्रिय पुनर्निर्माण एवं विकास अधिकोष
International convention	अंताराष्ट्रिय प्रसभा
" dispute	अंताराष्ट्रिय विवाद
" jurisprudence	अंताराष्ट्रिय विधिशास्त्र
" Labour Orgainsation	अंताराष्ट्रिय श्रम संस्था
" Law	अंताराष्ट्रिय विधि
" Monetary Fund	अंताराष्ट्रिय मुद्रानिधि
" peace	अंताराष्ट्रिय शांति
" trade	अंताराष्ट्रिय व्यापार
" Trade Orgainsation	अंताराष्ट्रिय व्यापार संस्था
Internecine	परस्पर विध्वंसी
Interplead	अंतर्वाद लाना
Interpleader	१ (कार्यवाही के संबंध में) अंतर्वाद, २—अंतर्वादी
" suit	अंतर्वाद
Interpolation	प्रक्षेप, अंतर्वेशन, अंतर्वेश
Interpose	उपस्थित करना, अंतरास्थापन
" formal objection	औपचारिक आपत्तियाँ उपस्थित करना
Interpret	व्याख्या करना
Interpretation	व्याख्या
liberal interpretation	उदार व्याख्या
literal "	शाब्दिक व्याख्या
extensive "	विस्तृत व्याख्या
Interpretation Act	व्याख्या अधिनियम
" clause	व्याख्या खंड
Interpreter	दुभाषिया
Interrogate	पूछताछ करना
" a witness	साक्षी से पूछताछ करना
Interrogation	पूछताछ, जाँच.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क, क्रमशः १०), ५॥) और २॥) है; एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी-१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक अँगरेजी मास के अंतिम सप्ताह में प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि 'संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

———

सोल एजेंट :—

श्री भगवानदास गोवर्धनदास शाह,
के० २७।११, कूचा माधोदास सामिया,
भैरो बाजार,
वाराणसी।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक और मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से तथा उसके लिये श्री सिद्धनाथ सिंह,
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

विधि पत्रिका

वर्ष २] आश्विन-कार्तिक (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : सितंबर से नवंबर १९५८ [अंक ११-१२

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

व.द. तालिका	१	इलाहाबाद उच्च न्यायालय	१५९–१८२
अधिनियम खंड	२८-३४	,, (राजस्व)	६५–७२
सर्वोच्च न्यायालय	७७-९२	विधिक अंग्रेजी-हिंदी-शब्दसंग्रह	१३९–१४६

वार्षिक शुल्क १०) इस प्रति का २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

संपादक मंडल

(१) श्री व्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी।
(२) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी।
(३) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(४) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(५) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(६) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी।
(७) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(८) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी।
(९) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी।
(१०) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवोकेट }
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका सितंबर से नवंबर १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

१—उ० प्र० राज्य वि० मुहम्मद इब्राहीम	इला० उच्च न्या०	१६६
२—उ० प्र० राज्य वि० सत्यनारायण	,, ,,	१६९
३—कामताप्रसाद वि० भूधर	इला० (राजस्व)	६७
४—कामेश्वरनाथ वर्मा वि० वैधिक वर्ग परिषद्	इला० उ० न्या०	१७४
५—गुरुदयाल वि० बुद्धू	इला० (राजस्व)	७२
६—गोविंदप्रसाद वि० शिवकुमार	,, ,,	६५
७—दीवान दुर्गादास वि० बृजराज किशोर	इला० उ० न्या०	१७८
८—दीपनारायण वि० राज्य	इला० उ० न्या०	१६७
९—नंदकिशोर वि० किराया नियंत्रण अधिकारी	,, ,,	१६१
१०—भगवानदास वि० श्री गंगाप्रसाद	इला० उ० न्या०	१६५
११—महमुदुन्निसाँ वि० मेहरबान हुसेन	,, ,,	१६०
१२—मुसम्मात सुघरा वि० फकीर मुहम्मद	,, ,,	१७६
१३—रजिया बेगम वि० अनवर बेगम	सर्वो० न्या०	८३
१४—राम सिंह वि० अतिरिक्त आयुक्त, मेरठ	इ० उ० न्या०	१७२
१५—रामरेख वि० चुन्नीलाल	इला० (राजस्व)	६६
१६—श्रीमती कमलावती वि० शिवशंकर दयाल	सर्वो० न्या०	९१
१७—श्रीमती कपुरा देवी वि० श्रीमती रुक्मणी देवी	इ० उ० न्या०	१८०
१८—श्रीमती प्रेम वि० जिलाधीश	,, ,,	१७५
१९—श्री श्यामनारायण सिंह वि० एस० डी० ओ०	,, ,,	१६३
२०—सल्तंती वि० विमलधर दूबे	इला० (राजस्व)	६९
२१—सोनपाल गुप्त वि० आगरा विश्वविद्यालय	इ० उ० न्या०	१७१

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिनियम खंड

(पूर्वानुबद्ध)

तो प्रार्थी पर जिस दिन इनकार की या अस्वीकृत की सूचना, जैसी परिस्थिति हो तामील होती है उस तिथि से तीन महीने के भीतर उच्च न्यायालय से प्रार्थना कर सकता है और उच्च न्यायालय यदि अपील के न्यायाधिकरण के निर्णय को ठीक नहीं समझता है तो वह अपील के न्यायाधिकरण से माँग कर सकता है कि वह इसे उच्च न्यायालय में भेज दे और इस प्रकार की माँग पर अपील का न्यायाधिकरण मामले को भेज देगा

किंतु प्रतिबंध है कि यदि किसी स्थिति में जब कि कर-दाता अपील के न्यायाधिकरण से माँग करता है कि वह मामले को उच्च न्यायालय में भेज दे और अपील का न्यायाधिकरण इस आधार पर इसे अस्वीकार कर देता है कि विधि का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता तो करदाता पर जिस दिन इसे भेजने से इनकार करने वाली सूचना की तामीली होती है उस तिथि से ३० दिन के भीतर कर-दाता मामले को हटा सकता है और इस प्रकार हटाने पर उपधारा (१) के अंतर्गत दिया हुआ शुल्क उसे वापस कर दिया जायगा ।

(४) उच्च न्यायालय में भेजने के समय उसमें तथ्यों की चर्चा रहेगी, अपील के न्यायाधिकरण का निष्कर्ष रहेगा और विधि का वह प्रश्न रहेगा जो कि उस अवस्था में उत्पन्न हुआ है ।

(५) यदि उच्च न्यायालय जितनी बातें दी गई हैं उससे संतुष्ट नहीं है कि वे उक्त प्रश्न पर निर्णय देने के लिये पर्याप्त हैं तो वह अपील के न्यायाधिकरण को निर्देश कर सकता है कि तद्नुसार वह इसमें संशोधन करे ।

(६) ऐसे मामले की सुनवाई के पश्चात् उच्च न्यायालय उसमें उठाए गए विधि के प्रश्न का निर्णय करेगा और ऐसा करने में यदि वह आवश्यक समझे तो विधि के प्रश्न के स्वरूप को बदल सकता है और तब निर्णय दे सकता है जिसमें वे सभी आधार रहेंगे जिस पर कि निर्णय आधारित है तथा वह निर्णय की एक प्रति, जो निर्णय न्यायालय की मुहर और रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर के साथ रहेगा, अपील के न्यायाधिकरण को भेज देगा और अपील का न्यायालय उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकता है जो कि ऐसे निर्णय के अनुकूल मामले के निर्वर्तन के लिये आवश्यक हो ।

(७) जहाँ किसी कर निर्धारण की धनराशि उच्च-न्यायालय में अभिदेश के फल स्वरूप कम कर दी गई है और यदि कोई धनराशि संपत्ति कर के रूप में अधिक दे दी गई है तो वह उस व्याज के साथ वापस कर दी जायगी जिसे कि आयुक्त स्वीकार करें और आयुक्त ऐसे अभिदेश के परिणाम की प्राप्ति के ३० दिन के भीतर उच्च न्यायालय को जब इस बात की सूचना दे दें कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के लिये अनुमति प्राप्त करने का विचार है तो उच्च-न्यायालय जब तक आदेश नहीं देता है जिससे कि आयुक्त को यह अधिकार प्राप्त हो कि रुपया वापस दिया जाना तब तक के लिये रोक रखा जाय जब तक कि सर्वोच्च न्यायालय से अपील का निर्णय न हो जाय ।

(८) उच्च न्यायालय में किसी अभिदेश का परिव्यय न्यायालय के स्वविवेक पर रहेगा ।

(९) भारतीय अवधि अधिनियम १९०८ की धारा ५ इस धारा के अंतर्गत उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र देने में लागू होगी ।

२८—उच्च न्यायालय द्वारा सुनवाई

जब कोई मामला धारा २७ के अंतर्गत उच्च न्यायालय को भेजा जाय तो इसकी सुनवाई उस न्यायालय द्वारा होगी जिसमें दो से कम न्यायाधीश नहीं रहेंगे और इसका निर्णय ऐसे न्यायाधीशों की संमति के अनुसार या उसकी बहुमत, यदि कोई हो, के अनुसार होगी ।

किंतु प्रतिबंध है कि जब इस प्रकार बहुमत न हो तो न्यायाधीश विधि (ला) के उस प्रश्न का जिस पर वे असहमत हैं उल्लेख कर देंगे और तब केवल उसी विषय पर मामले की सुनवाई उच्चन्यायालय के एक या एक से अधिक न्यायाधीशों द्वारा होगी और इस विषय का निर्णय जिन न्यायाधीशों ने सुनवाई की है उनकी बहुमत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार होगी और इस बहुमत में उन न्यायाधीश की भी संमति संमिलित है जिन्होंने पहले इसकी सुनवाई की थी।

२६—सर्वोच्च न्यायालय में अपील

(१) धारा २७ के अंतर्गत जो मामला उच्चन्यायालय को भेजा गया हो उस पर के निर्णय के विरुद्ध उन सभी अवस्थाओं में जब कि उच्चन्यायालय प्रमाणित कर दे कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के लिये यह मामला उपयुक्त है तो सर्वोच्च न्यायालय में अपील होगी।

(२) जब उच्चन्यायालय का निर्णय इस धारा के अंतर्गत अपील में परिवर्तित या बदल दिया गया हो तो सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय धारा २७ उपधारा (६) में दिए गए प्रकार से कार्यान्वित होगा।

(३) उच्चन्यायालय में जब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी परिव्यय (कास्ट्स) के दिए जाने के आदेश के निष्पादन के संबंध में प्रार्थनापत्र दिया जाय तो यह निष्पादन के लिये आदेश को उच्चन्यायालय के नीचे के किसी भी न्यायालय में भेज सकता है।

अध्याय ७

संपत्ति कर का भुगतान एवं प्रत्यादान (रिकवरी)

३०—माँग की नोटिस—

जब इस अधिनियम के अंतर्गत पारित आदेश के परिणाम स्वरूप कोई कर या अर्थ दंड किसी के यहाँ बाकी रह गया है तो संपत्ति कर अधिकारी करदाता पर या अन्य व्यक्ति पर जो कि ऐसे कर या अर्थ दंड का देनदार हो निर्धारित प्रपत्र पर माँग की एक नोटिस तामील करेंगे और उसमें उस धनराशि का उल्लेख रहेगा जो देय है तथा समय भी दिया रहेगा जिसके बीच यह देय होगी।

३१—कर एवं अर्थदंड का प्रत्यादान (रिकवरी)

(१) धारा ३० के अंतर्गत जारी की हुई माँग की नोटिस में जो धनराशि दी गई रहेगी वह समय के भीतर उस स्थान पर और उस व्यक्ति को दे दी जायगी जिसके बारे में नोटिस में दिया रहेगा, या नोटिस में यदि इस प्रकार समय नहीं दिया हो तो इसका भुगतान नोटिस तामीली के दूसरे महीने के पहले दिन को या उसके पहले हो जायगा और जो करदाता इस प्रकार भुगतान न कर सका हो तो वह बाकीदार समझा जायगा।

(२) जब किसी करदाता पर कर निर्धारण उस परिसंपत् के बारे में किया गया है जो कि भारत के बाहर के देश में स्थित है और जिस देश के नियमानुसार वहाँ से भारत में रुपया भेजे जाने का निषेध है या रुकावट है तो उस देश में स्थित परिसंपत् पर लगाए गए कर के बारे में संपत्तिकर अधिकारी करदाता को बाकीदार जैसा नहीं मानेंगे और उसे कर के उस भाग के संबंध में बाकीदार न मानना तब तक जारी रखेंगे जब तक कि रुपया भेजने का निषेध या रुकावट दूर न हो जाय।

(३) इस धारा के अंतर्गत किसी बात के रहते हुए भी जब करदाता ने धारा २३ के अंतर्गत अपील निवेशित किया हो तो संपत्ति कर अधिकारी यदि चाहें तो करदाता को बाकीदार तब तक के लिये न समझें जब तक कि अपील का निर्वर्तन नहीं हो जाता।

३२—प्रत्यादान (रिकवरी) के ढंग—

आयकर अधिनियम की धारा ४६ और ४७ की उपधाराएँ (१), (१ ए०), (२), (३), (४), (५) (५ ए०) (६) और (७) के उपबंध लागू होंगे मानों उक्त उपबंध इसी अधिनियम के उपबंध हैं और उनका अभिदेश आयकर या आयकर अधिनियम के अंतर्गत लगाए गए अर्थदंड की धन राशि के बजाय संपत्ति कर या इस अधिनियम के अंतर्गत की धनराशि जो दंडस्वरूप लगाई गई है होगा तथा आयकर अधिकारी और आयकर के आयुक्त के बजाय संपत्ति कर अधिकारी और संपत्ति कर के आयुक्त का होगा।

३३—कुछ परिस्थितियों में हस्तांतरिती (ट्रांसफरी) का दायित्व।

(१) जहाँ धारा ४ में दिए गए उपबंधों के कारण उस अधिनियम के अंतर्गत दिए गए व्यक्तियों में से किसी को हस्तांतरण किए गए किसी परिसंपत् के मूल्य के बारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आवश्यकता पड़ती है कि किसी व्यक्ति की शुद्ध संपत्ति में यह संमिलित किया जाय तो वह व्यक्ति जिसके नाम से यह प्ररिसंपत् है किसी भी विधि को प्रतिकूल रहते हुए भी इस संबंध में संपत्ति कर अधिकारी द्वारा भाग की नोटिस तामील होने पर करदाता पर निर्धारित कर के उस भाग का देनदार होगा जो उसके नाम की उपर्युक्त परिसंपत पर लगाया गया है।

किंतु प्रतिबंध है कि जहाँ पर ऐसी परिसंपत् एक से अधिक व्यक्तियों के संयुक्त धारण में है तो वे लोग सामूहिक रूप से और अलग अलग इस प्रकार संयुक्त परिसंपत् के मूल्य पर लगाए गए कर के देनदार होंगे।

(२) जहाँ ऐसा कोई व्यक्ति जिसका अभिदेश उपधारा (१) में हुआ है उससे माँगे गए किसी कर को नहीं दे देता है तो समझा जायगा कि वह करदाता ऐसी धनराशि के संबंध में बाकीदार है और प्रत्यादान (रिकवरी) से संबंध रखनेवाले इस अधिनियम के समस्त उपबंध तदनुसार लागू होंगे।

३४—कुछ परिस्थितियों में अचल संपत्ति के हस्तांतरण की रजिस्ट्री के बारे में रुकावट—

भारतीय रजिस्ट्री अधिनियम १९०८ की धारा १७ की उपधारा (१) उपवाक्य ए०, बी०, सी० या ई० के उपबंधों के अनुसार जहाँ किसी विलेख (डाकूमेंट) की रजिस्ट्री आवश्यक हो और उस विलेख का अभिप्राय कृषि भूमि को छोड़कर किसी अन्य संपत्ति में किसी व्यक्ति के अधिकार स्वत्व या हित का हस्तांतरण, अर्पण, उसके सीमित करने या उसके उपशमन करने का हो और जिस संपत्ति का मूल्य निर्धारण १ लाख रुपए से अधिक का हो तो उक्त अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त रजिस्ट्री का कोई अधिकारी उसकी रजिस्ट्री तब तक नहीं करेगा जब तक प्रमाणित न हो कि:—

(अ) ऐसे व्यक्ति ने इस अधिनियम के अंतर्गत समस्त वर्तमान दायित्वों का या तो भुगतान कर दिया है या पहले से भुगतान का प्रबंध कर रखा है, अथवा—

(ब) विलेख (डाकूमेंट) की रजिस्ट्री से इस अधिनियम के अंतर्गत समस्त दायित्वों के प्रत्यादान (रिकवरी) में कोई रुकावट नहीं पड़ेगी।

अध्याय ८

विविध

३५—अशुद्धियों की शुद्धि—

आदेश पारित करने की तिथि से चार वर्ष के भीतर किसी भी समय आयुक्त, संपति कर अधिकारी अपील के सहायक आयुक्त और अपील का न्यायाधिकरण स्वतः उस अशुद्धि की शुद्धि कर सकते हैं जो अभिलेख पर स्पष्ट हो और उसी अवधि के भीतर आयुक्त संपति कर अधिकारी, अपील के सहायक आयुक्त, अपील का न्यायाधिकरण जैसी स्थिति हो करदाता द्वारा अवगत होने पर कोई ऐसी अशुद्धि को शुद्ध कर देंगे;

किंतु प्रतिबंध है कि करनिर्धारण वृद्धि करनेवाली कोई शुद्धि तब तक नहीं की जायगी जब तक कि करदाता को इस मामले में अपनी बात कहने का अवसर न दे दिया गया हो।

३६—अभियोजन (प्रासक्यूशन)

(१) यदि कोई व्यक्ति युक्तियुक्त कारण के बिना (अ) धारा १४ में के विवरण को समय के भीतर नहीं देता है;

(ब) धा० १६ की उपधारा (२) या उपधारा (४) के अंतर्गत नोटिस में दी गई तिथि को या उसके पहले नोटिस में लिखे गए लेखा, (एकाउंट्स) अभिलेख, (रिकार्डस) विलेख, (डाकूमेंट्स) को उपस्थित नहीं करता या करवा देता;

(स) धा० ३८ के अंतर्गत वह संपति कर अधिकारी को निर्दिष्ट अवधि के भीतर विवरण या सूचना जिसे देने के लिये वह बाध्य है; नहीं देता तो;

मजिस्ट्रेट के समक्ष दोष सिद्ध होने पर वह अर्थ दंड से दंडित होगा जो कि दस रुपए प्रतिदिन तक का हो सकता है और यह उस अवधि तक चलता रहेगा जब तक उसकी चूक (डिफाल्ट) चलती रहती है।

(२) यदि कोई व्यक्ति धा० १४ या धारा २३ या धा० २४ या धा० २६ में सत्यापन (वेरीफिकेशन) में ऐसा बयान देता है जिसे वह या तो जानता है कि झूठा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या उसका विश्वास है कि झूठा है या उसके सत्य होने में उसका विश्वास नहीं है तो वह साधारण कारावास के दंड से दंडित होगा जो कि १ वर्ष तक का हो सकता है अथवा उसे अर्थ दंड दिया जा सकता है जो एक हजार रुपए तक हो सकता है या दोनों प्रकार के दंड से दंडित हो सकता है।

(३) किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपराध के लिये इस धारा के अंतर्गत कार्यवाही सिवा आयुक्त के कहने पर किसी अन्य प्रकार से नहीं की जायगी।

(४) आयुक्त कार्यवाही निवेशित होने के या तो पहले या बाद में ऐसे किसी अपराध में सुलह कर सकते हैं।

व्याख्या—इस धारा के प्रयोजन के लिये "मजिस्ट्रेट" का तात्पर्य प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट, या द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट से है जो केंद्रीय सरकार द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत अपराधों की अन्वीक्षा करने के लिये विशेष प्रकार से अधिकृत हों।

३७—शपथ पर साक्ष्य लेने का अधिकार इत्यादि।

आयुक्त, संपति कर अधिकारी, अपील के सहायक आयुक्त तथा अपील का न्यायाधिकरण इस अधिनियम के प्रयोजन के लिये वही अधिकार रखेंगे जो कि निम्नलिखित मामलों की अन्वीक्षा करते समय व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १६०८ के अंतर्गत न्यायालय को दिया है;

(अ) किसी व्यक्ति को उपस्थित होने के लिये बाध्य करना और शपथ पर उसका परीक्षण करना;

(ब) विलेखों के अन्वेषण (डिस्कवरी) और उनके प्रस्तुत करने की माँग;

(स) शपथपत्र पर साक्ष्य लेना

(द) साक्षियों के परीक्षण के लिये आयोग (कमीशन) का जारी किया जाना

और आयुक्त, संपति कर अधिकारी, अपील के सहायक आयुक्त अथवा अपील के न्यायाधिकरण के समक्ष किसी भी कार्यवाही को समझा जायगा कि भारतीय दंड संहिता की धा० १६३ और २२८ के अभिप्राय के अंतर्गत न्यायिक कार्यवाही है।

३८—सूचना विवरण और अभिकथन (स्टेटमेंट)

जहाँ किसी व्यक्ति द्वारा देय संपतिकर को निश्चित करते समय संपति कर अधिकारी आवश्यक समझते हैं कि किसी व्यक्ति, कंपनी, सार्थ (फर्म), हिंदू अविभाजित परिवार या किसी अन्य व्यक्ति से कोई सूचना प्राप्त की जाय या बयान लिया जाय तो संपति कर अधिकारी एक नोटिस तामील कर सकते हैं जिसके द्वारा वे ऐसे व्यक्ति, कंपनी, सार्थ (फर्म), हिंदू अविभाजित परिवार या अन्य व्यक्ति से माँग कर सकते हैं कि वह नोटिस में दिए गए विषय पर ऐसा बयान या इस प्रकार की सूचना नोटिस में दी हुई तिथि को या उसके पहले निवेशित करे और वह व्यक्ति तथा संबंधित प्रमुख अधिकारी या हिंदू अविभाजित परिवार का कर्ता जैसी स्थिति हो, किसी भी विधि (ला) के प्रतिकूल रहते हुए भी संपति कर अधिकारी को ऐसा बयान या इस प्रकार की सूचना देने के लिये बाध्य होगा।

किंतु प्रतिबंध है कि कोई भी विधि व्यवसायी इस धारा के अंतर्गत कोई बयान या सूचना देने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता जो कि उसके व्यवसाय के संबंध में प्राप्त की गई सूचना पर अधारित है और जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम १८७२ की धारा १२६ के अंतर्गत अनुमित नहीं है।

३९—कार्यवाही की विचाराधीनावस्था में ही प्राधिकारियों के स्थानांतरण का प्रभाव।

जब कभी इस धारा के अंतर्गत किसी कार्यवाही के संबंध में किसी संपत्तिकर अधिकारी का अधिक्षेत्र प्रयोग समाप्त हो जाता है और इसके स्थान पर दूसरा प्राधिकारी आ जाता है जिसे अधिक्षेत्र है और वह इसका प्रयोग करता है तो इस प्रकार उत्तरवर्ती प्राधिकारी कार्यवाही को उस अवस्था से आरंभ कर सकता है जहाँ पर उसके पूर्ववर्ती प्राधिकारी ने उसे छोड़ा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०—अवधि (लिमिटेशन) के समय की गणना—

इस अधिनियम के अंतर्गत अपील अथवा धारा २७ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र के लिये निर्धारित अवधि के समय की गणना करते समय वह दिन जिस दिन कि वह प्रश्नगत आदेश पारित हुआ था ऐसे आदेश की प्रतिलिपि प्राप्त करने में आवश्यक समय को छोड़ दिया जायगा।

४१—नोटिस की तामीली

(१) इस अधिनियम के अंतर्गत नोटिस या अवाप्ति (रिक्विजिशन) उसमें दिए गए नामवाले व्यक्ति पर या तो डाक से तामील होगी या मानो यह समन है जो कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता; १६०८ के अंतर्गत किसी न्यायालय द्वारा जारी किया गया है।

(२) इस प्रकार की नोटिस या अवाप्ति यदि सार्थ (फर्म) या हिंदू अविभाजित परिवार पर तामील करना हो तो यह सार्थ के किसी भी सदस्य के नाम से होगी अथवा परिवार के किसी वयस्क सदस्य के नाम से या कर्ता के नाम से रहेगी या व्यक्तियों के किसी अन्य समुदाय की स्थिति में उसके प्रमुख अधिकारी के नाम से रहेगी।

४२—सूचना को प्रकट करने का निषेध

(१) उपधारा २ के उपबंधों के अधीन आयकर अधिनियम की धारा ५४ के उपबंध समस्त लेखाओं या वयान, विलेख साक्ष्य अथवा शपथपत्र में जो कि इस अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में या उसके प्रसंग में दिए गए हैं, प्रस्तुत किए गए हैं या प्राप्त किए गए हैं लागू होंगे जैसा कि उस अधिनियम के अंतर्गत समान विवरण में या उसके संबंध में लागू होते हैं, जो कि इस संशोधन के अधीन होगा कि उपधारा (२) के उपवाक्य (डी०) का "कोई आयकर प्राधिकारी" या उस अधिनियम की उपधारा ५ का "आयुक्त" का अभिप्राय निकाला जायगा कि यह क्रम से "कोई संपत्ति कर प्राधिकारी" और "संपत्ति कर का आयुक्त" है।

(२) आयकर अधिनियम की धारा ५४ में दी गई कोई बात किसी उस विवरण के प्रकट करने में लागू नहीं जिसका अभिदेश उपधारा (१) में किसी उस व्यक्ति से है जो कि इस अधिनियम के निष्पादन में कार्य करता है या आयकर अधिनियम या संपदा शुल्क अधिनियम १६५३ में काम करता है और जहाँ पर यह आवश्यक और वांछनीय है कि इस अधिनियम या उपर्युक्त अन्य अधिनियमों के प्रयोजन के लिये इसे उस व्यक्ति के समक्ष प्रकट कर दिया जाय।

४३—अधिक्षेत्र की रुकावट

किसी व्यवहार (सिविल) न्यायालय में इस अधिनियम के अंतर्गत कर निर्धारण को निराकृत करने या उसके संशोधन के लिये कोई वाद निवेशित नहीं किया जा सकता तथा सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध इस अधिनियम के अंतर्गत सद्विचार से किए गए या सद्विचार के अभिप्राय से किए जानेवाले किसी काम के लिये कोई अभियोजन, वाद या अन्य विधिक कार्यवाही नहीं चलाई जायगी।

४४—संपतिकर के प्राधिकारियों के समक्ष अधिकृत प्रतिनिधियों द्वारा उपस्थिति।

कोई कर दाता जिसे किसी संपति कर के प्राधिकारी या अपील के न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित होने का अधिकार है या उसकी उपस्थिति की माँग इस अधिनियम के अंतर्गत किसी कार्यवाही या जाँच के संबंध में की गई है तो सिवा उस स्थिति के जब कि माँग की गई है कि इस अधिनियम के अंतर्गत वह स्वयं उपस्थित हो, वह इस संबंध में लिखित रूप से अधिकृत व्यक्ति द्वारा उपस्थित हो सकता है जो कि उसका संबंधी हो, या नियमित रूप से करदाता द्वारा नियुक्त कोई व्यक्ति हो अथवा विधि व्यवसायी हो वा शास प्राप्त लेखापाल हो या कोई अन्य व्यक्ति जो निर्धारित की जानेवाली योग्यता रखता हो।

व्याख्या—

इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये—

(अ) "करदाता द्वारा नियमित रूप से नियुक्त कोई व्यक्ति" की अभिव्यक्ति में अनुसूचित (शेड्यूल्ड) बैंक का कोई अधिकारी संमिलित है जिसके साथ करदाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालू खाता रखता है या अन्य नियमित लेन देन करता रहता है;

(ब) "शास प्राप्त लेखा पाल" का तात्पर्य उस शास प्राप्त लेखा पाल से है जिसकी परिभाषा शास प्राप्त लेखापाल अधिनियम १९४९ में दी गई है।

४५—कुछ मामलों में अधिनियम का लागू न होना।

इस अधिनियम के उपबंध—

(अ) किसी बैंकिंग कंपनी में लागू नहीं होंगे जिसकी परिभाषा बैंकिंग कंपनी अधिनियम १९४९ की धारा ५ में दी गई है;

(ब) आगोप अधिनियम (इश्योरेंस ऐक्ट) १९३८ के अभिप्राय के अंतर्गत किसी आगोपक (इश्योरर) की स्थिति में लागू नहीं होंगे।

(स) कोई कंपनी जो इस उद्देश्य से स्थापित की गई है कि वह भारतीय वैयक्तिक उद्योग को आर्थिक सहायता प्रदान करे और यह सहायता चाहे ऋण देकर चाहे अग्रिम देकर या इन उद्योगों की पूँजी में योग देकर हो तथा किसी भी स्थिति में जहाँ केंद्रीय सरकार ने इस प्रयोजन के लिये अग्रिम (ऐडवांस) विशेष या तो दिया है या देने को राजी हुई है या कंपनी द्वारा भारत के बाहर से किसी भी संस्था से लिए हुए ऋण के भुगतान की प्रत्याभूति (गरांटी) दिया है या देने को राजी हुई है;

किंतु प्रतिबंध है कि उपवाक्य डी० द्वारा दी गई छूट उसमें अभिदिष्ट कंपनियों में केवल ५ लगातार कर निर्धारण वर्षों के लिये लागू होगा जिसका प्रारंभण जिस तिथि को कंपनी की स्थापना हुई है उस तिथि के बाद होनेवाले कर निर्धारण वर्ष से होगा; और वह अवधि उस अवस्था में जब कि कंपनी की स्थापना इस अधिनियम के प्रारंभण से पहले हो चुकी हो इस अधिनियम के अनुसार स्थापना की तिथि से गिनी जायगी मानो इसकी स्थापना की तिथि को या उस तिथि से यह अधिनियम लागू था।

व्याख्या:—

उपवाक्य द, (डी०) के प्रयोजनों के लिये 'औद्योगिक उपक्रम' (इंडस्ट्रियल अंडरटेकिंग) का तात्पर्य उस उपक्रम से है जो निर्माण, उत्पति, माल या वस्तुओं के विधायन (प्रासेसिंग) से संबंधित हो अथवा खान खोदने या बिजली की उत्पति या वितरण या शक्ति के किसी अन्य प्रकार से संबंध रखता हो;

य—कोई कंपनी जो एकमात्र जहाजों द्वारा यात्रियों या माल को बाहर भेजने का व्यापार करती हो।

र—कोई वह कंपनी जिसकी रजिस्ट्री कंपनी अधिनियम, १९५६ की धारा २५ के अंतर्गत हुई हो।

४६—नियम बनाने का अधिकार—

(१) बोर्ड राजकीय गजट में विज्ञप्ति द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों को काम में लाने के लिये नियम बना सकता है।

(२) विशिष्टतः और पिछले अधिकारों की सामान्यता को हानि न पहुँचाते हुए इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियम निम्नलिखित प्रकार की बातों के संबंध में विधान कर सकते हैं :—

(अ) वह ढंग जिससे किसी परिसंपत् का बाजार-मूल्य निर्धारित किया जाय;

(ब) वह प्रपत्र जिस पर इस अधिनियम के अंतर्गत विवरण बनाया जायगा और वह ढंग जिस पर ऐसा विवरण सत्यापित होगा;

(स) वह प्रपत्र जिसपर इस अधिनियम के अंतर्गत अपील या प्रार्थनापत्र दिए जा सकते हैं और वह ढंग जिस ढंग पर कि ये सब सत्यापित होंगे;

(द) इस अधिनियम के अंतर्गत माँग की नोटिस का प्रपत्र;

(य) वह क्षेत्र जिसके लिये मूल्य निर्धारकों की सूची बनाई जा सकती है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) कोई अन्य मामला जो इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये निर्धारित किया जा चुका है या निर्धारित किया जा सकता है;

(३) इस धारा द्वारा नियम बनाने के दिए हुए अधिकार में उसके पहले अवसर के प्रयोग में नियमों को या उनमें से किसी नियम को अतीत प्रभावी बनाने का अधिकार भी संमिलित है और यह प्रभाव उस तिथि से होगा जो कि इस अधिनियम के प्रारंभण के पहले की न हो।

(४) इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए समस्त नियम बन जाने के बाद तुरत संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखे जायँगे और वे उन संशोधनों के अधीन होंगे जिसे संसद उस सत्र में जिसमें कि वे नियम रखे गए हैं, करे या उस सत्र में करे जो ठीक उसके बाद हो।

अनुसूची (शेड्यूल)

संपत्ति कर की दर

भाग १

(अ) प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति में —कर की दर

(१) पहले २ लाख रुपये की शुद्ध संपत्ति पर—कुछ नहीं।

(२) दूसरे १० लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—½%

(३) दूसरे १० लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—१%

(४) शुद्ध संपत्ति के शेष पर—१½%

(ब) प्रत्येक हिंदू अविभाजित परिवार की स्थिति में:—

(१) पहले चार लाख रुपये की शुद्ध संपत्ति पर—कुछ नहीं।

(२) दूसरे ६ लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—½%

(३) दूसरे १० लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—१%

(४) शुद्ध संपत्ति के शेष पर—१½%

भाग २

प्रत्येक कंपनी की स्थिति में कर की दर—

(१) पहले ५ लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—कुछ नहीं।

(२) शुद्ध संपत्ति के शेष पर—½%

किंतु प्रतिबंध है कि जब एतत् पश्चात् विहित ढंग पर गणना करने से किसी कंपनी को वास्तविक हानि हुई है और उस वर्ष के संबंध में उसने अपनी पूँजी साम्य पर कोई लाभांश घोषित नहीं किया है तो संबद्ध वर्ष के लिये कर की दर कुछ नहीं होगी।

उपर्युक्त परंतुक में जिस हानि की चर्चा हुई है उसकी गणना आयकर अधिनियम की धा० ८, ९, १० और १२ के उपबंधों के अनुसार होगी किंतु इसमें से वह छूट निकाली नहीं जायगी जिसका अभिदेश धा० १० (२) के उपवाक्य (६) के परंतुक के परिच्छेद (ब), उस अधिनियम की धारा १० (२) के उपवाक्य से उपवाक्य तक है अथवा वह छूट भी नहीं निकाली जायगी जो पहले वर्षों की हानि से आई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार राज्य के प्रार्थनापत्रों में कुछ प्रार्थी व्याधा हैं जो मांस बेचने का व्यापार करते हैं कुछ मरे हुए जानवरों की खाल को सिझाकर उसको बेचते हैं, कुछ प्रार्थी जानवरों की चर्वी और उनकी अँतड़ियों से सरेस आदि बनाकर व्यापार करते हैं और कुछ जानवरों के खून का निर्जलयीकरण करके उस पदार्थ का व्यापार करते हैं और उसी पर जीवनयापन करते हैं। इसमें प्रार्थी सं० १ और २ व्याधा हैं और उनके कहने के अनुसार वे "कसाई" कहे जाते हैं। "कसाई" और "चिक" में अंतर यह होता है कि "कसाई" पशुओं का वध करके उनके मांस आदि का व्यापार करते हैं और "चिक" केवल भेंड़ों और बकरियों, बकरों का बध करके उसका व्यापार करते हैं। बिहार के इन तीन प्रार्थनापत्रों के सभी प्रार्थी भारत के नागरिक हैं।

बिहार में इस संबंध में जो विधेयक पारित हुआ वह बिहार गजट में २० अप्रैल १९५३ को प्रकाशित हुआ। आरंभिक विधेयक में गोबध के संबंध में जो उपबंध था उसमें केवल गायों और गायों के तीन वर्ष से कम आयु-वाले बछड़ों के बध का ही निषेध था किंतु जब यह प्रवर समिति के समक्ष पहुँचा तो इसकी व्याप्ति और बढ़ा दी गई। इस अधिनियम की धारा १ तुरत लागू हुई और शेष अधिनियम धारा १ (३) के अंतर्गत विज्ञप्ति होने पर लागू होने को था। इसके पहले ही प्रार्थी ने इस न्यायालय में प्रार्थनापत्र निवेशित कर दिया और उसमें उसकी एक प्रार्थना यह भी थी कि बीच में ही एक आदेश पारित करके बिहार सरकार को रोक दिया जाय कि धा० १ (३) के अंतर्गत की विज्ञप्ति निर्णय होने तक रोके रहे। विद्वान् सालिसिटर जनरल ने बिहार सरकार की ओर से इसे मांना कि सरकार निर्णय होने के पहले विज्ञप्ति नहीं करेगी।

उ० प्र० राज्य के विरुद्ध प्रार्थीगण मुसलमान हैं जो या तो व्याधा हैं या चमड़े का व्यापार करते हैं। ये लोग भारत के नागरिक हैं। इन्होंने इस प्रार्थनापत्र में उ० प्र० अधिनियम १, १९५६ की वैधता पर आपत्ति की है और उनकी प्रार्थना है कि परमादेश लेख जारी करके उ० प्र० सरकार को रोक दिया जाय कि उक्त अधिनियमों के उपबंधों द्वारा वह प्रार्थीगण के मौलिक अधिकारों में हस्तक्षेप न करें।

शेष प्रार्थनापत्रों में भी सभी प्रार्थी मुसलमान हैं और वे या तो व्याधा हैं, या चमड़े का व्यापार करते हैं या सरेस आदि बनाकर या खून का निर्जलयीकरण करके इन पदार्थों का व्यापार करते हैं। कुछ प्रार्थी जो पहले मध्यप्रदेश में रहते थे वह भाग राज्य पुनः संघटन के बाद बंबई राज्य में चला गया इसलिए बंबई राज्य को भी उत्तरवादी बनाना पड़ा। इसमें उन्होंने मध्यप्रांत और बरार अधिनियम ५२।१९४९ (तत्पश्चात् संशोधित) की वैधता पर आपत्ति किया है।

संवैधानिकता के प्रश्न पर जो तर्क यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं उनको समझने के लिये संविधान के अनुच्छेद ४८ को समझ लेना आवश्यक है। अनु० ४८ सरकार की नीति के निर्देशक सिद्धांत से संबंध रखता है। अनु० ३७ के अनुसार निर्देशक सिद्धांत किसी न्यायालय द्वारा लागू नहीं किए जा सकते फिर भी देश के शासन के बारे में ये मूलभूत आधार होते हैं।

"**कृषि एवं पशु पालन का संघटन-(४८)**-सरकार कृषि और पशुपालन का संगठन आधुनिक एवं वैज्ञानिक ढंग पर करने का प्रयत्न करेगी और विशिष्ट रूप से नसल के संरक्षण तथा उसकी उन्नति के उपाय करेगी और गायों और बछड़ों तथा अन्य दूध देनेवाले या बोझ ढोनेवाले पशुओं के बध का निषेध करेगी।"

प्रार्थियों के विद्वान् वकील का कहना है कि—

कृषि और पशुपालन का संगठन आधुनिक और वैज्ञानिक ढंग पर करना ही प्रमुख उद्देश्य है और इसलिए इसमें के बादवाले अंश (जैसे बध निषेध आदि) उसके सहायक मात्र हैं, स्वतंत्र नहीं।

इसके समर्थन में प्रार्थियों का कहना है कि—

अ—अनुच्छेद ४८ के किनारे की टिप्पणी में "कृषि और पशुपालन का संगठन" ही लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब—संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची २ में की १५ वीं प्रवृष्टि में केवल यही लिखा है—"पशु वंश का परिरक्षण, संरक्षण एवं उन्नति तथा पशु बीमारियों की रोकथाम; पशु चिकित्सा की शिक्षा एवं तत्संबंधी व्यवसाय"।

स—अन्यत्र कहीं पशुबध के लिये विधान संबंधी शीर्षक है ही नहीं।

उत्तरवादियों की ओर से कहना है कि अनुच्छेद ४८ के तीनों बातें अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं, कोई किसी के अधीन नहीं है।

ये उपबंध पहले के अधीन हैं या सब स्वतंत्र हैं इस विवादास्पद बात पर निर्णय देने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसमें दिए हुए जानवरों के वध का निषेध तो स्पष्ट है ही। जो जानवर दिए गए हैं वे हैं—गाय, बछड़े तथा अन्य दूध देनेवाले और बोझा ढोनेवाले जानवर। इसका तात्पर्य यह है कि यह संरक्षण उन जानवरों को नहीं मिल सकता जो कि किसी समय बोझा ढोते थे या दूध देते थे किंतु अब न तो वे बोझा ढोते हैं और न तो दूध देते हैं।

तात्पर्य यह कि "पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति के लिये" ही तीनों अधिनियम बने हैं अंतः इसी प्रसंग एवं इसी पृष्ठभूमि पर तीनों अधिनियम की वैधता पर विचार करना है।

उत्तरप्रदेश के अधिनियम द्वारा गाय, बैल, साँड़ और गाय के बछड़ों के बध का निषेध है। मध्य प्रदेश के अधिनियम में गाय, बैल, साँड़ के बध का पूर्ण निषेध है किंतु कुछ प्रतिबंधों का पालन करते हुए भैंस, भैसा और पड़वा का बध किया जा सकता है। बिहार के अधिनियम में गो जाति (बोवाईन) के समस्त जानवरों के बध का निषेध है जिसमें भैंस, भैंसा, पड़वा भी आ जाते हैं।

इसकी सुनवाई के बीच में गोरक्षण संबंधित प्रांतीय एवं अखिल भारतीय स्तर की कुछ संस्थाओं ने इस कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति माँगा। सर्वोच्च न्यायालय नियम के आ० ४१ नि० २ में है कि भारत महान्यायवादी (अटार्नी जनरल आफ इंडिया) और राज्यों के महाधिवक्ताओं (ऐडवोकेट जनरल्स) को ही बीच में आकर कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है। तृतीय पक्ष को कार्यवाही में संमिलित करने के लिये कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है फिर भी सर्वोच्च न्यायालय अपने अंतर्भूत अधिकारों के प्रयोग द्वारा तृतीय पक्ष को संमिलित होने के लिये अनुमति केवल उसी अवस्था में देता है जब कि वह तृतीय पक्ष सर्वोच्च न्यायालय में या उच्च न्यायालय में विचाराधीन किसी मामले में पक्ष हो और उसमें विचाराधीन प्रश्न समान हो तथा सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय उसके मामले को भी समाप्त कर देगा, ऐसी स्थिति हो। यहाँ अनुमति के लिये प्रार्थना करनेवाले कहीं पर इस प्रकार पक्ष नहीं हैं इसलिए उन्हें भाग लेने की अनुमति देना ठीक नहीं है। विषय महत्वपूर्ण है इसलिए पंडित ठाकुर दास भार्गव को न्याय परामर्शक (अमिकस क्यूरी) के रूप में उपस्थित होने की अनुमति दी जाती है।

पंडित ठाकुरदास भार्गव ने एक आरंभिक आपत्ति उठाई कि संविधान के अनुच्छेद ४८ में दिया हुआ निदेशक (डाइरेक्टिव) सिद्धांत यद्यपि न्यायालयों द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता फिर भी देश के शासन के ये मूल भूत आधार हैं और इनका बंधन राज्य (स्टेट) पर है और इसलिए संविधान के अध्याय ३ में नागरिकों को जो मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट) प्रदान किया गया है वह निदेशक सिद्धांत (डाइरेक्टिव प्रिंसिपुल) के अधीन है क्योंकि निदेशक सिद्धांत राज्य के लिये मूलभूत बंधन होते हैं। उनका कहना है कि ये अधिनियम जो निदेशक सिद्धांत के अंतर्गत "पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति" के लिये बनाए गए हैं वे मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट्स) के ऊपर हैं। इस प्रतर्क को मानने के लिये हम तैयार नहीं हैं क्योंकि अनुच्छेद १३ (२) में स्पष्ट कह दिया गया है कि राज्य सरकार कोई ऐसा अधिनियमन नहीं करेगी जो कि संविधान के अध्याय ३ द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का हनन करता है या उन्हें सीमित करता है। संविधान की संतुलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या आवश्यक है। सरकार निदेशक सिद्धांत को कार्यान्वित करेगी किंतु यह देखना पड़ेगा कि इससे मौलिक अधिकार पर धक्का न पहुँचे नहीं तो मौलिक अधिकार नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। ए० आई० आर० १९५१ सर्वोच्च न्या० २२६ में कहा गया था, "राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांत को मौलिक अधिकारों के अध्याय की पुष्टि एवं उसकी सहायता करना है।"

प्रार्थियों ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद २५ (१) के अंतर्गत धार्मिक स्वातंत्र्य के संबंध में आपत्ति उठाई है। यह बात केवल एक स्थल पर साधारण ढंग पर उन्होंने कही है कि बकरीद को गोवध करना हमारा धार्मिक अधिकार है जो कि अनुच्छेद २५ (१) के संरक्षण के अंतर्गत है। प्रार्थियों का यह कथन भी मान्य नहीं हो सकता कारण कि यों तो यहाँ पर कोई मौलवी आए नहीं जो कि कुरान के आधार पर गो वध को अनिवार्य धार्मिक कृत्य का होना प्रमाणित करते किंतु मुसलमान धर्म के धर्मग्रंथों में लिखा है कि एक व्यक्ति बकरे का वध करे या परिवार के ६ और व्यक्ति मिलकर एक गाय का वध करें। गाय का वध वैकल्पिक है अनिवार्य नहीं। यह केवल आर्थिक दृष्टिकोण से रखा गया है।

प्रार्थियों की ओर से कहा गया कि चूँकि बहुत समय समय से धर्म के लिये गो वध होता आया है इसलिए अब यह धर्म का एक अविच्छिन्न अंग हो गया और इसीलिये अनुच्छेद २५ (१) का लाभ दिया जाना चाहिए। यह बात भी नहीं मानी जा सकती क्योंकि इस बात का प्रमाण है कि मुगल सम्राट् बाबर ने धर्म के लिये गो वध बंद करा दिया था. और अपने पुत्र हुमायूँ को इसके अनुसरण की सलाह दी थी। मैसूर के नवाब हैदरअली तथा अहमदशाह ने गो बध को अपराध माना था। इस बात के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं कि आज भी मुसलमानों की पर्याप्त संख्या बकरीद के दिन गो बध नहीं करती। अभिलेख पर कोई ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे यह जाना जा सके कि अपने धार्मिक विचारों एवं विश्वासों की अभिव्यक्ति के लिये उस दिन बाह्य कृत्यों द्वारा गाय का बध अनिवार्य है। इस आपत्ति में बल नहीं है।

प्रार्थियों की दूसरी आपत्ति है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ के अंतर्गत वे विधि (ला) के समान संरक्षण से वंचित रखे जाते हैं। उनका कहना है कि प्रार्थीगण मुसलमान कसाई हैं और गोमांस का व्यापार करते हैं इसलिए इस अधिनियम से केवल प्रार्थियों को ही हानि पहुँची है क्योंकि दूसरा वर्ग जो चिकों का है और जो बकरों और भेड़ों के माँस का व्यापार करता है इस अधिनियम से तनिक भी प्रभावित नहीं होता। प्रार्थियों का कहना है कि विभेदकरण के लिये हम लोगों को छाँट कर निकाला गया है जो अनुच्छेद १४ के प्रतिकूल पड़ता है।

अनुच्छेद १४ का तात्पर्य, इसका क्षेत्र और इसका प्रभाव अनेक निर्णयों में बतलाया गया है जो चिरंजीलाल चौधरी वि० भारत संघ (ए० आई० आर० १९५१ सर्वोच्च न्या० ४१) से आरंभ होकर राम कृष्ण डालमिया वि० न्यायाधीश टेंडोलकर (ए० आई० आर० १९५८ सर्वो० न्या० ५३८) के साथ समाप्त हुआ है। यह सिद्धांत अब सुसंस्थापित हो चुका है कि जब कि अनुच्छेद १४ वर्ग विधायन का निषेध करता है यह विधायन के लिये युक्तिसंगत वर्गीकरण का निषेध नहीं करता और इस प्रकार अनुमित वर्गीकरण के प्रतिबंध को पूरा करने के लिये दो शर्तों का पालन आवश्यक है:—

(१) वर्गीकरण बुद्धिगम्य विभेद पर आधारित होना चाहिए जो कि एक समुदाय के व्यक्तियों या वस्तुओं में दूसरे समुदाय से अंतर रखता हो।

(२) ऐसा विभेदकरण उस उद्देश्य से युक्ति संगत संबंध रखता हो जिसकी प्राप्ति का प्रयत्न प्रश्नगत् परिनियम द्वारा किया जाता हो।

वर्गीकरण विभिन्न आधारों, जैसे भौगोलिक आदि पर आधारित होना चाहिए। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि वर्गीकरण के आधार और विचाराधीन अधिनियम के उद्देश्य में संबंध होना चाहिए। इस न्यायालय के कतिपय निर्णयों द्वारा यह सिद्धांत निश्चित हो चुका है कि किसी अधिनियमन (एनैक्टमेंट) के पक्ष में अभिधारणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रेजंप्शन) सर्वदा संवैधानिकता की ही रहती है और जो व्यक्ति इसको चुनौती देता है उसको यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि उस अधिनियम द्वारा संविधान के सिद्धांतों का अतिक्रमण किया गया है। विधान मंडल जनता की आवश्यकताओं को अच्छी तरह समझता है और विधि (ला) उन्हीं समस्याओं के लिये बनाता है जो अनुभव द्वारा उसे आवश्यक प्रतीत होता है इसलिए विभेदकरण पर्याप्त दृढ़ आधारों पर आधारित रहता है। संवैधानिकता की अभिधारणा (प्रेंजप्शन) के लिये न्यायालय को सामान्य ज्ञान, सामान्य व्यवहार, समय समय के इतिहास पर विचार करना चाहिए और उन तथ्यों की प्रत्येक स्थिति की कल्पना कर लेनी चाहिए जो विधान के समय वर्तमान रही हों। अतएव हमें प्रश्नगत् अधिनियमों की वैधता इन सिद्धांतों के आधार पर करनी है।

इन अधिनियमों का अधिनियम "पशुधन के परिरक्षण संरक्षण और उन्नति" के लिये हुआ है। अधिनियमों का यही उद्देश्य है। गाय बैलों आदि की उपयोगिता निश्चय ही भेड़ों और बकरियों से अधिक है अतः इनकी उपयोगिता के विचार से इन दो प्रकार के जानवरों के दो समुदाय बनाए गए हैं। 'कसाई' और 'चिक' के व्यवसायों का प्रभाव समाज पर अलग अलग पड़ता है। "कसाई" जो गायों आदि को काटते हैं अपने व्यवसाय विशेष के कारण एक वर्ग विशेष में आ जाते हैं। यह वर्गीकरण युक्ति संगत विभेद पर आधारित है और उन्हें एक निश्चित वर्ग में रखता है तथा यह वर्ग उस वर्ग ("चिकों") से अंतर रखता है जो कि केवल भेड़ों और बकरियों को काटता है। यह विभेदकरण प्रश्नगत् अधिनियम के उद्देश्य (पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति) से निकट संबंध भी रखता है। यहाँ यह विभेदकरण उपर्युत शर्तों का पालन करता है। इसलिए सर्वथा ठीक है। यहाँ प्रार्थीगण विधि के समान संरक्षण से बंचित नहीं किए जाते। किसी अधिनियम के संबंध में अभिधारणा इसकी संवैधानिकता के पक्ष में होती है और यहाँ पर प्रार्थीगण ने इसके विरुद्ध यह प्रमाणित नहीं किया कि अधिनियम असंवैधानिक है जिसके प्रमाण का भार उन्हीं पर था। इसलिए अनुच्छेद १४ पर की उनकी आपत्ति अमान्य होती है।

प्रार्थियों के विद्वान वकील ने अंततोगत्वा अनुच्छेद १९ (१) (जी०) पर निर्भर किया है। इसके उत्तर में कहा गया है कि इनका अधिनियमन अनुच्छेद ४८ के अनुसार "पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति के लिये" हुआ है न कि अनुच्छेद १९ (१) जी० के अधिकारों के हनन के लिये इसलिए परोक्ष में यदि १९ (१) जी० के अधिकार पर आघात भी पहुँचता है तो भी इसे असंवैधानिक नहीं कहा जा सकता। इसके समर्थन में ए० के० गोपालन वि० मद्रास राज्य। (ए० आई० आर० १९५० सर्वोच्च न्यायालय २७) का अभिदेश किया गया। इसमें माननीय मुख्य न्यायाधिपति कानिया का विचार था कि जब कोई विधान प्रत्यक्ष रूप से भाषण एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य आदि पर रुकावट डालता है केवल तभी अनुच्छेद १९ का आश्रय लिया जा सकता है किंतु उस स्थिति में जब कि विधान का प्रत्यक्ष उद्देश्य दूसरा होता है और केवल परोक्ष में मूलभूत अधिकारों पर आघात पहुँचता है तो अनु० १९ के उपबंधों की सहायता नहीं प्राप्त की जा सकती। इसी आधार पर कहा गया कि यहाँ अनुच्छेद ४८ के अभिप्राय के अनुसार अधिनियम का प्रत्यक्ष उद्देश्य पशुधन की रक्षा आदि करना है और इसके द्वारा परोक्ष में यदि मौलिक अधिकारों पर आघात पहुँचता है तो अनुच्छेद १९ (१) (जी०) के अंतर्गत आपत्ति संधार्य नहीं है।

यहाँ पर हमारे समक्ष परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। अनुच्छेद ४८ के निदेशक सिद्धांत (डाइरेक्टिव प्रिंसिपुल) के अंतिम भाग में दिया हुआ है कि सरकार कुछ विशेष जानवरों के वध का निषेध करेगी। इसका परिणाम यह हुआ कि इस निदेश (डाइरेक्टिव) का पालन केवल उसी समय किया जा सकता है जब कि कसाइयों या अन्य बधिकों को उनका बध करने से मना किया जाए। अतः इसमें संदेह नहीं कि इस विधायन (लेजिस्लेशन) का प्रार्थी (कसाइयों) पर प्रभाव प्रत्यक्ष है और ज्योंही वे लागू होते हैं उनका प्रभाव तत्क्षण पड़ने लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरवादी के विद्वान वकील का कथन मान्य नहीं हो सकता अतः अनुच्छेद १६ (१) जी० के तथाकथित अतिक्रमण के प्रश्न पर विचार करने के लिये उसके तत्व पर आना है।

अनुच्छेद १६ (१) जी० के अंतर्गत प्रार्थियों का कहना है कि अधिनियम के लागू होने से हमें अपने व्यवसाय को पूर्णतया बंद कर देना होगा। उनका कहना है कि सरकार व्यवसाय में कुछ प्रतिबंध लगा सकती है किंतु इसे पूर्णरूपेण बंद नहीं कर सकती। प्रत्येक नागरिक को व्यवसाय का जो अधिकार है सरकार उसे केवल नियंत्रित ही कर सकती है पूर्णरूपेण समाप्त नहीं कर सकती।

उत्तरवादियों का कहना है कि नागरिक को व्यवसायिक स्वतंत्रता है किंतु यदि उसके केवल किसी एक भाग पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है तो वह यह आग्रह नहीं कर सकता है कि हम वही व्यवसाय करेंगे जिसपर प्रतिबंध लगाया गया है। उदाहरण के लिये कहा गया कि यदि मान लिया कि खादी के प्रचार के लिये बहुत ऊँचे स्तर के कपड़ों के निर्माण या विक्रय पर रोक लगा दिया जाता है तो कोई व्यापारी यह नहीं कह सकता कि चूँकि हम केवल बहुत ऊँचे स्तर के कपड़ों का निर्माण और विक्रय करते थे इसलिए हमारे व्यवसाय पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया। कहा गया कि व्यापार के केवल एक भाग पर रोक लगाई गई है इसलिए प्रार्थीगण तत्सबद्ध दूसरा व्यापार कर सकते हैं।

यहाँ प्रार्थियों के व्यापार पर केवल प्रतिबंध ही लगाया गया है पूर्ण रुकावट नहीं है कारण कि उत्तरप्रदेश में यदि गाय, बैल आदि के बध का निषेध है तो वे भैंस बकरी आदि काट सकते हैं। मध्यप्रदेश में भी पूर्ण रुकावट नहीं है। बिहार में यों तो गो जाति के वंशों के काटने का निषेध है जिसमें भैंस भी आ जाती है तो भी वे बकरी या भेंड काटकर अपना व्यापार कर सकते हैं। तात्पर्य है कि रुकावट पूर्ण रुपेण नहीं है। इस विषय पर विचार करते हुए हमें अनु० १६-(६) के अंतर्गत अनुमित प्रतिबंध के बारे में निर्णय देने की आवश्यकता नहीं है कि क्या ऐसा प्रतिबंध बढ़ाकर पूर्ण रुकावट (टोटल प्राहिबिशन) तक पहुँचाया जा सकता है। जिस प्रश्न का उत्तर देना है वह केवल यही है कि ये प्रतिबंध सामान्य जनता के हित में युक्तियुक्त हैं कि नहीं।

अनुच्छेद १६ (६) उस विधि की रक्षा करता है जो सामान्य जनता के हित में अनुच्छेद १६ (१) (जी०) के अधिकार पर प्रतिबंध लगाता है। इसकी युक्तियुक्तता के निश्चय का भार न्यायालय पर है किंतु इसका निश्चय निरपेक्षतः (ऐब्सट्रक्ट) या किसी एक व्यक्ति के विचार से नहीं किया जायगा कारण कि यह किसी न किसी व्यक्ति के लिये तो दुखःदायी होगा ही। न्यायालय को देखना है कि क्या ये प्रतिबंध सामान्य जनता के हित में युक्ति संगत है?

ए० आई० आर० १६५२ सर्वो० न्या० १६६ में इस न्यायालय ने युक्तिसंगत होने के बारे में कुछ बातें बतलाई हैं। उसमें बतलाया गया है कि युक्तियुक्तता के परीक्षण के लिये कोई निरपेक्ष माप या किसी ऐसे सामान्य स्तर का निर्धारण नहीं किया जा सकता जो सभी परिस्थितियों में एक समान लागू हों। इसके परीक्षण के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना है:—उस अधिकार की प्रकृति जिसका हनन करना कहा जाता हो, प्रतिबंध लगाने का मुख्य प्रयोजन, उसके द्वारा दूर की जानेवाली बुराई की सीमा और आवश्यकता, प्रतिबंध का अनुपाततः न होना और उस समय का वातावरण। न्यायालय को इस विषय पर निर्णय देते समय उपर्युक्त सभी बातों पर ध्यान रखना चाहिए। बिहार राज्य वि० दरभंगा के कामेश्वर सिंह ए० आई आर० १६५२ सर्वो० २५२ में मुख्य न्यायाधिपति महाजन ने अपना विचार व्यक्त किया था कि—"जनता के लिये हितकर क्या है इसका सबसे उत्तम निर्णायक विधानमंडल है…"। ये सब न्यायालय की सुविधा के लिये बतलाए गए हैं फिर भी विधि की वैधता पर निर्णय देने का उत्तरदायित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायालय पर है और संविधान द्वारा दिए हुए इस पवित्र कर्तव्य से न्यायालय को जी नहीं चुराना चाहिए। अतः इस न्यायालय द्वारा निश्चित किए हुए सिद्धांतों के आधार पर हमें इस समस्या पर विचार करना है।

देश में दूध देनेवाले पशु, अभिजनन साँड़ और काम करनेवाले पशु बहुत कम हैं। स्वास्थ्य सुधार और पौष्टिक पदार्थ तथा पर्याप्त भोजन के लिये पशुओं की उन्नति आवश्यक है। वर्तमान और भविष्य के लिये पशुओं के चारे का प्रबंध होना चाहिए किंतु देश में चारा बहुत कम है और यदि अनुपयोगी पशुओं को ज्यों का त्यों रहने दिया जायगा तो निश्चय ही उपयोगी पशु अपनी आवश्यकतानुसार पौष्टिक चारा नहीं पा सकेंगे। गोसदन की स्थापना से भी इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता क्योंकि वह बहुत मँहगा पड़ेगा और देश का बहुत सा धन जो अनुपयोगी पशुओं के लिये व्यय होगा उससे और आवश्यक काम किया जा सकता है। दूसरे, उपयोगी और अनुपयोगी का विचार न करते हुए यदि पशु बध पर पूर्ण रूपेण प्रतिबंध लगा दिया जायगा तो कसाइयों या चमड़े का व्यापार करनेवालों का व्यापार यदि पूर्ण रूपेण बंद नहीं हो जायगा तो धक्का अवश्य लगेगा। निर्धन जनता का एक बहुत बड़ा भाग अपने मुख्य भोजन और प्रोटीन आदि पौष्टिक पदार्थ से बंचित रह जायगा।

हम जानते हैं कि छोटे बछड़े और बछिया आदि का माँस मँहगा बिकता है इसलिए आगे की उनकी उपयोगिता पर बिना बिचार किए हुए कसाइयों को वेच दिए जाते हैं। इस प्रसंग में गाय के लिये विशेष रक्षा की आवश्यकता होती है क्योंकि भैंस की अपेक्षा गाय कम दूध देती है और बड़े बड़े नगरों में स्थान की कमी के कारण तथा समुचित चारे का प्रबंध न होने से जो गाएँ दूध देना बंद कर देती हैं उनका रखना बहुत मँहगा पड़ता है इसलिए ग्वाले जो प्रायः हिंदू होते हैं गाय की आयु या आगे की उपयोगिता का तनिक भी ध्यान न रखते हुए ३० से ५० रु० प्रति गाय की दर से काटने के लिये बेच देते हैं और भाँति भाँति के उपाय से उसे प्रमाणित करते हैं कि वह बूढ़ी हो गई है या उसे लँगड़ी कर देते हैं ताकि नगरपालिका के पशु के डाक्टर द्वारा वह बध करने के लिये प्रमाणित कर दी जाय। इस प्रकार केवल आर्थिक कारणों से अल्पायु में उपयोगी जानवर बध करने के लिये बेच दिए जाते हैं। इस संबंध में गाय और बछड़ों के संरक्षण की बहुत ही अधिक आवश्यकता है क्योंकि भैंस की अपेक्षा गाय दूध कम देती है और दूध देना बंद करने पर उनके रखने में घाटा होता है अपेक्षाकृत भैंस के क्योंकि भैंस से यह आशा रहती है कि अगले बार जब वह दूध देगी तो उसे इतनी अधिक आय होगी कि घाटा पूरा हो जायगा। दूसरे, गाय का मांस भैंस से मँहगा बिकता है। बैल और साँड़ों की भी स्थिति दूसरी होती है क्योंकि बैल और साँड़ इतना महत्वपूर्ण काम करते हैं कि जब तक वे काम के योग्य रहते हैं तब तक उनका मूल्य उनके केवल माँस के मूल्य से बहुत ही अधिक रहता है और किसी भी किसान को काम में आनेवाले बैलों को काटने के लिये बेचने में कोई लाभ न होगा। यही बात अभिजनन वाले साँड़ों के संबंध में भी है। अतः गाय और बछड़े की अपेक्षा इनके संरक्षण की आवश्यकता कम है।

दूसरा प्रश्न है कि जानवरों के बध पर प्रतिबंध का क्षेत्र क्या होना चाहिए। एक मत है कि सभी जानवरों का बध सरकार द्वारा विनियमित होना चाहिए और यह कि दी हुई आयु के नीचे के जानवरों या उन जानवरों के बध की अनुमति नहीं देना चाहिए जो कि किसी प्रकार से अयोग्य न हो गए हों। इस सिद्धांत को कार्यरूप में परिणित किया गया है किंतु पशुओं के डाक्टरों पर दबाव डालकर या नगरपालिका की सीमा के बाहर ले जाकर उपयोगी पशुओं का बध कर दिया जाता है। इसमें ग्वालाओं की आर्थिक दशा तथा कृषकों की असहायावस्था का भी बहुत बड़ा हाथ रहता है। दी हुई आयु के ऊपर के बैलों और साँड़ों तथा भैंसों आदि के बध करने का आदेश उनके लिये तो पर्याप्त हो सकता है किंतु गायों के लिये यह पर्याप्त संरक्षण नहीं हो सकता। बूढ़ी और अयोग्य गायों के भी पक्ष में यह अपवाद सामयिक प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्या पर सविस्तर विचार करने के बाद और विधान की वैधता के पक्ष में अभिधारणा के आधार पर संविधान द्वारा दिए हुए कर्तव्यों का पालन करना है और इसलिए प्रतिबंध की युक्तियुक्तता के निर्णय के लिये हमें वस्तुनिष्ठ एवं वास्तविक ढंग पर विचार करना है। इस प्रकार विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि :—

(१) यह कि किसी भी आयु की गाय और गाय के बछड़े और बछिया तथा भैंस की पड़िया और पड़वा के वध का पूर्णरुपेण निषेध वैध है तथा अनुच्छेद ४८ के निदेशक सिद्धांतों के अनुकूल है।

(२) यह कि भैंस, अभिजनन साँड़, काम करने वाले बैल (पशु और भैंसा) जब तक दुधारु हैं या बोझा ढोने के काम में आते हैं तब तक उनके वध का पूर्णरुपेण निषेध युक्तिसंगत और वैध है।

(३) यह कि भैंस, साँड़ और बैल (पशु या भैंस) जब कि वे दूध देने योग्य न रह जाँय या अभिजनन या काम करने या बोझा ढोने योग्य न रह जाँय तब भी उनके वध का पूर्णरुपेण निषेध सामान्य जनता के हित में युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता।

इस आधार पर प्रश्नगत् अधिनियमों का परीक्षण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं और घोषणा करते हैं कि बिहार का अधिनियम जहाँ तक यह सभी आयु की गायों, बछिया, बछवा, पड़िया, पड़वा के वध का निषेध करता है वहाँ तक यह संविधानतः वैध है और हमारा निष्कर्ष है कि जहाँ तक यह भैंस, अभिजनन साँड़ और काम करनेवाले बैल (पशु और भैंस) के वध का पूर्णरूपेणनिषेध बिना आयु निर्धारण या उपयोगिता का बिना विचार किए करता है वह प्रार्थियों के अनुच्छेद १९ (१) जी० के अंतर्गत के अधिकार का हनन करता है और उस सीमा तक यह प्रभावशून्य है।

उत्तरप्रदेश के अधिनियम के संबंध में हमारा निष्कर्ष है कि जहाँ तक यह किसी भी आयु की गाय, बछड़े और बछिया के वध का निषेध करता है वहाँ तक यह संविधानतः वैध है किंतु हमारा निर्णय है कि जहाँ तक इसका विचार है कि अभिजनन साँड़, काम करनेवाले बैलों के वध का पूर्णरूपेण निषेध बिना इनकी आयु और उपयोगिता पर विचार किए हुए कर दिया जाय वहाँ तक यह अनुच्छेद १९ (१) जी० के प्रतिकूल पड़ता है और उस सीमा तक यह प्रभावशून्य है।

इसी प्रकार मध्यप्रदेश के अधिनियम के बारे में हम घोषणा करते है कि जहाँ तक यह किसी भी आयु की गाय, बछड़े और बछिया के वध का निषेध करता है वहाँ तक यह संविधानतः वैध है किंतु जहाँ यह अभिजनन साँड़ और काम करनेवाले बैलों के वध का निषेध बिना उनकी आयु और उपयोगिता पर विचार किए करता है उस सीमा तक यह प्रभावशून्य है। हमारा निर्णय यह भी है जहाँ यह अधिनियम अन्य जानवरों का बध उसमें दिए गए प्राधिकारियों द्वारा स्वीकत प्रमाणपत्र से विनियमित करता है, वैध है।

अतएव उत्तरवादी राज्यों को निदेश किया जाता है कि जहाँ तक भिन्न भिन्न अधिनियम प्रभावशून्य घोषित हो चुके हैं उनको लागू न करें। इन प्रार्थनापत्रों के परिव्यय (कास्ट्स) का भार पक्षों पर रहेगा।

आदेश तदनुसार

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ८३

२३ मई १९५८

बी० पी० सिनहा, एस० जफर इमाम तथा जे० एल० कपूर न्यायमूर्तिगण

रजिया बेगम　—　अपीलकर्ता

वि०

साहेबजादी अनवर बेगम तथा अन्य—　उत्तरवादीगण

व्यवहार अपील सं० ६९५।१९५७

व्य० प्र० संहिता (१९०८), धा० ११५ और ११, आ० १ नि० १० (२) आ० ८ नि० ५ और अनु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ नि० ६—पक्षों के जोड़े जाने का प्रश्न आरंभिक अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) का प्रश्न है या न्यायिक स्वविवेक का—सामाजिक स्थिति की घोषणा के लिये वाद (सूट) में पक्षों का जोड़ा जाना—वाद के अभिकथन को मान लेने का प्रभाव—घोषणात्मक डिग्री का परिणाम - विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४३ और प्राङ्न्याय (रेसजुडिकेटा) - विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) धारा ४२ और ४३

न्यायमूर्ति बी० पी० सिनहा—

नीचे के दोनों न्यायालयों के समान निर्णय के विरुद्ध यह अपील विशेष अनुमति पर आई है। इस अपील में व्य० प्र० संहिता के आ० १ नि० १० (२) की व्याख्या का प्रश्न है तथा देखना है कि इस मामले की परिस्थिति में वे किस सीमा तक लागू होते हैं।

१९५७ में वादी अपीलकर्ता ने हैदराबाद के राजकुमार के विरुद्ध एक वाद निवेशित किया कि वह राजकुमार की विवाहिता पत्नी है, विवाह १९४८ में शिया पद्धति के अनुसार संपन्न हुआ और यह तथ्य राजकुमार की जान पहचान के समस्त लोगों को विदित है। वादी का कहना है कि राजकुमार विवाह के तथ्य को छिपाना चाहते हैं ताकि परिवार के सदस्यों को इस बात का निश्चय हो जाय कि वादी राजकुमार की विवाहिता पत्नी नहीं है। वादी का कहना है कि इस विवाह से तीन लड़कियाँ भी पैदा हुई हैं। वादपत्र में दूसरी बात कही गई कि विवाह के पूर्व राजकुमार वादी अपीलकर्ता को २००० रु० प्रति माह 'खर्च ये पानदान' को देने के लिये तैयार हुए थे किंतु १९५३ से उन्होंने यह रुपया देना बंद कर दिया है। इन बातों के आधार पर उसने दो घोषणा (डिक्लेरेशंस) की माँग की है। (१) घोषित किया जाय कि वादी प्रतिवादी की विधि विहित विवाहित पत्नी है। (२) वादी के के पक्ष में और प्रतिवादी के विरुद्ध एक डिग्री पारित की जाय कि वादी, प्रतिवादी से 'खर्च ये पानदान' का २००० रु० प्रतिमास पाने की अधिकारिणी है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि वादी ने 'खर्च ये पानदान' का बकाया रुपया नहीं माँगा। १० दिन के बाद ही राजकुमार ने लिखित प्रतिवाद निवेशित किया जिसमें उन्होंने वादी की सभी बातें मान लीं।

उसी दिन (१) साहबजादी अनवर बेगम और (२) राजकुमार सहामत अली खाँ (अवयस्क) जो अपनी माता साहबजादी अनवर बेगम की संरक्षता में था, की ओर से व्य० प्र० सं० के आ० १ नि० १० (२) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया गया। उत्तरवादी सं० १ साहबजादी ने अपने को राजकुमार की विधि विहित विवाहिता पत्नी कहा तथा उत्तरवादी सं० २ को राजकुमार का पुत्र कहा जो उत्तरवादी सं० १ से पैदा हुआ था। इसके अतिरिक्त उस प्रार्थनापत्र में कहा गया था कि वादी का स्वयं कहना है कि प्रतिवादी राजकुमार उसके विवाह को इनकार करना चाहते हैं इसलिए कहा गया है कि हम प्रार्थीगण भी समान रूप से वादी के विवाह को, उसके अधिकार को और उसकी सामाजिक स्थिति को इनकार करेंगे। दोनों उत्तरवादियों ने इस प्रार्थनापत्र में कहा कि यह वाद साजिश से निवेशित किया गया है कि उत्तरवादी १ और २ के प्रतिवादी से संबंध पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े और प्रतिवादी की संपदा पर प्रार्थियों का अधिकार समाप्त कर दिया जाय।

वादी ने उत्तरवादियों (१ और २) के पक्ष बनने के प्रार्थनापत्र का उत्तर दिया। उसने पक्ष बनाए जाने का विरोध किया कि:—

१—प्रार्थी के अधिकार का हनन अनिश्चित घटनाओं पर निर्भर है जो घट भी सकती हैं और नहीं भी घट सकतीं जैसे प्रार्थी का प्रतिवादी राजकुमार की मृत्यु के बाद भी जीवित रहना तथा अन्य परिस्थितियाँ।

२—वाद में कोई गंभीर लड़ाई नहीं है क्योंकि प्रतिवादी ने वाद को मान लिया है।

३—प्रार्थीगण (उत्तरवादी सं० १ और २) न तो आवश्यक और न तो उचित पक्षों (नेससरी ऐंड प्रापर पार्टीज) में से हैं।

४—प्रार्थियों ने जब इस वाद को साजिशी कहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो इस वाद के निर्णय का बंधन उन पर नहीं होगा क्योंकि वे इसमें पक्ष नहीं हैं।

५—प्रार्थियों ने वादी को लड़ाकर बहुत समय तक हैरान करने के विचार से ही यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया है।

राजकुमार (प्रतिवादी) ने पक्ष बनने के इस प्रार्थनापत्र का विरोध किया और प्रार्थनापत्र के उत्तर में कहा कि:—

१—प्रथम उत्तरवादी हमारी पत्नी है और द्वितीय उत्तरवादी हमारा पुत्र है।

२—प्रार्थियों के अधिकार पर इस मुकदमें के निर्णय का कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि मुसलमान प्रथा के अनुसार एक व्यक्ति एक समय चार स्त्री तक रख सकता है।

३—हमारे पिता, हैदराबाद के निजाम इस मुकदमें में उलझन पैदा करना चाहते हैं और उन्हीं के कारण प्रार्थी ने इस प्रकार का अनावश्यक प्रार्थनापत्र दिया है।

इन सभी बातों पर विचार करने के बाद अन्वीक्षा न्यायालय ने उत्तरवादी सं० १ और २ को पक्ष बनाने का निदेश निम्नलिखित आधार पर दिया:—

१—अभिलेख के देखने से वादी और प्रतिवादी के बीच साजिश की संभावना प्रतीत होती है।

२—विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४२ के अंतर्गत जिस घोषणा की माँग की गई है उसका देना विवेक पर निर्भर करता है और उसे अधिकार के आधार पर प्रदान नहीं किया जा सकता।

३—प्रार्थियों के रहने से मुकदमे के भेद को जानने में न्यायालय को बहुत सुविधा होगी।

४—प्रार्थियों के इस कथन में बहुत बल है कि इस मुकदमे में दी गई घोषणा (डिक्लेरेशन) का बंधन विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४३ के अंतर्गत प्रार्थियों पर होगा इसलिए अपनी बात कहने के लिये उन्हें पक्ष बनने का अवसर देना चाहिए।

५—वर्तमान झगड़े का पूर्णरूपेण निबटारा करने के लिये प्रार्थियों का रहना आवश्यक है।

व्य० प्र० सं० की धारा ११५ के अंतर्गत आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय में जब इस आदेश के विरुद्ध प्रार्थनापत्र दिया गया तो उच्च न्यायालय ने भी अन्वीक्षा न्यायालय की बात मानी और कहा कि जब विवाह को इतनी पवित्रता प्रदान की जाती है तो प्रार्थियों (उत्तरवादी सं० १ और २) को वादी की सामाजिक स्थिति को चुनौती देने का अवसर देना गलत नहीं और यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह अनावश्यक मुकदमेबाजी है क्योंकि उत्तरवादी सं० १ और २ की जो माँग है उससे विधि का प्रभाव संलग्न है। ऐसी स्थिति में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उत्तरवादी १ और २ मुकदमे के आवश्यक पक्ष नहीं हैं।

विशेष अनुमति पर यह अपील निवेशित की गई है।

अपील के समर्थन में विद्वान् महान्यायवादी (अटार्नी जनरल) का कहना है कि न्यायालय को दोनों उत्तरवादियों को प्रतिवादी बनाने का अधिक्षेत्र नहीं था। उन्होंने संहिता के आ० १ नि० १० (२) के संबद्ध अंश पर निर्भर किया। वह इन शब्दों में है:—

"(२)...उन व्यक्तियों का नाम जिसे या तो वादी या प्रतिवादी में रहना चाहिए था अथवा न्यायालय के समक्ष जिसकी उपस्थिति इसलिए आवश्यक हो कि न्यायालय पूर्ण रूप से एवं प्रभावपूर्ण ढंग से वाद में जितने प्रश्न उठे हैं सबका निर्णय कर सके, जोड़ दिया जाय।"

विद्वान् महा न्यायवादी का कहना है कि (उत्तर वादी सं० १ और २) "...में रहना चाहिए था" में नहीं आते कारण कि स्पष्टतः इसका अभिदेश आवश्यक पक्ष से इस अर्थ में है कि उनके बिना वाद का निर्णय पूर्णरूपेण नहीं हो सकता। विद्वान् महान्यायवादी का कहना है कि वाद के समस्त प्रश्नों के निर्णयार्थ उत्तरवादियों का रहना आवश्यक नहीं है क्योंकि उत्तरवादी सं० १ और २ को राजकुमार की संपदा में कोई वर्तमान अधिकार नहीं है। राजकुमार की संपदा के उत्तराधिकार की संभाव्यता इस मुकदमें में उनके आने का कोई निहित (वेस्टेड) या घटनापेक्ष (कंटिंजेंट) अधिकार नहीं देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विषय पर दो प्रकार के निर्णय हैं, एक संकुचित और दूसरा विस्तृत। संकुचितवाला सबसे महत्वपूर्ण निर्णय १८९२-१ चांसरी ४८७ हैं जिसके समान भारत का निर्णय ए० आई० आर० १९२६ मद्रास ८३६ है। इसमें निर्णय हुआ था जिस व्यक्ति का वादविषय से सीधा संबंध (इंटरेस्ट) हो उसी को पक्ष बनाने का न्यायालय का अधिक्षेत्र है न कि उस व्यक्ति को जिसका संबंध (इंटरेस्ट) व्यापारिक या परोक्ष में है। एक निर्णय और हुआ था कि उसी व्यक्ति को पक्ष बनाने की अनुमति देना चाहिए जिसका विधिक संबंध (लीगल इंटरेस्ट) हो; यह विधिक संबंध उस अर्थ में नहीं है जिस अर्थ में विधिक संबंध (लीगल इंटरेस्ट) और साम्यिक संबंध (इक्युटिबुल इंटरेस्ट) का अंतर समझा जाता है वरन् विधिक संबंध से तात्पर्य इतना ही है कि जिसे विधि मान्यता देता है।

आई० एल० आर० मद्रास ५२ में इसके विस्तृत अर्थ में निर्णय दिया गया था कि एक ही प्रश्न पर विरोधी निर्णयों को रोकने के लिये और तत्संबंधी विषय पर प्रभावपूर्ण और पूर्णनिर्णय देने के लिये न्यायालय को अधिकार है कि पक्ष बनावे किंतु इसमें कहा गया था कि पक्ष बनाने का अधिकार यों तो न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है पर इसका प्रयोग न्यायिक ढंग पर करना चाहिए अर्थात् न्यायालय को देखना चाहिए कि पक्ष बनाने से उस पक्ष पर अन्याय न हो जो कि पहले से ही अभिलेख पर है।

मद्रास के दो निर्णयों में विरोधी बात इस विषय पर कही गई थी कि सरकार को पक्ष बनाने का अवसर देना चाहिए या नहीं। एक मामला उत्तर प्रदेश का था जिसमें उत्तर प्रदेश सरकार के बनाए गए एक अधिनियम की वैधता पर आपत्ति की जा रही थी। उ० प्र० सरकार ने उस पर और आधिकारिक निर्णय दिए जानें के लिये पक्ष बनाए जाने की प्रार्थना की। सुलेमान न्यायाधीश और वरदचारियर न्यायाधीश ने उ० प्र० सरकार को पक्ष बनाया किंतु दूसरे आधार पर। विद्वान् सुलेमान न्यायाधीश का विचार था कि यद्यपि सरकार का मुकदमें से संबंध परोक्षतः (इंडाइरेक्टली) है पर सरकार को पक्ष बनाना न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है। वरदचारियर न्यायाधीश का विचार था कि सरकार उस स्थिति में नहीं है जिसमें कि तृतीय पक्ष रहता है। सरकार जनता की रक्षक है इसलिए उससे भी यह माँग करना कि कोई आर्थिक संबंध दिखलावे तभी उसे पक्ष बनाया जा सकता है, ठीक नहीं है। सरकार को पक्ष बनाने का जहाँ तक संबंध है न्याय और सुविधा के विस्तृत आधार पर इसको देखना चाहिए न कि केवल व्य० प्र० संहिता के उपबंध को ही।

१८९२-१ चांसरी ४८७ में कहा गया था कि यह प्रश्न विवेक (डिस्क्रीशन) का नहीं है वरन् अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) का है किंतु भारतवर्ष के न्यायालयों ने इसे आरंभिक अधिक्षेत्र का प्रश्न नहीं माना है। कभी कभी व्य० प्र० संहिता की धारा ११५ के सीमित अर्थ में अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) का यह प्रश्न हो सकता है।

पक्ष बनाए जाने के इस विषय पर जितने निर्णय हुए हैं उससे यह तय हो चुका है कि प्रार्थी का वाद-विषय से सीधा संबंध रहना चाहिए—चाहे यह चल संपत्ति के बारे में हो या अचल संपत्ति के। किंतु इस मामले में बात दूसरी है। यहाँ हमारा संबंध मुख्यतया सामाजिक स्थिति (स्टेटस) की घोषणा के लिये है जब कि पहले वाले निर्णयों का संबंध संपत्ति के अधिकार से था।

इस संबंध में विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४२ पर ध्यान देना है। उसके अनुसार जो लोग वादी के विधिक स्वभाव (लीगल कैरेक्टर) को इनकार करते हैं या इनकार करना चाहते हैं वे वाद के आवश्यक पक्ष होंगे। वादी के पति ने कहीं स्पष्टतः वादी को पत्नी होने से इनकार नहीं किया है। वादी ने जिस वाद-मूल (काज आफ ऐक्शन) की चर्चा की है उसमें उसका केवल यही कहना है कि प्रतिवादी-राजकुमार उसे खुलेआम अपनी विवाहिता पत्नी स्वीकार करने से इनकार करते हैं। वादी के कहने के अनुसार उसी के ही नहीं वरन् उसकी तीनों लड़कियों के अधिकार पर बादल छा गए हैं। इसका परिणाम यह है कि उसे परिवार के अन्य सदस्य जिसमें उत्तरवादी सं० १ और २ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं उसके विवाह को इनकार करने से संबंधित हैं। ऐसी स्थिति में वादी यदि बहुत सतर्क न रहती और उत्तरवादी सं० १ और २ को भी प्रतिवादी बना देती तो वे मुकदमे से इस आधार पर न छोड़े जाते कि वे व्यर्थ ही पक्ष बना दिए गए हैं और यह कि उनके विरुद्ध कोई वाद-मूल (काज आफ ऐक्शन) नहीं है। वे निश्चय ही मुकदमे के आवश्यक पक्ष होते और इस बात के निश्चय के संबंध में कि उत्तरवादी सं० १ और २ का पक्ष बनाया जाना ठीक है या गलत, यह बात बहुत महत्वपूर्ण है।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि धारा ४२ के अंतर्गत की घोषणा (डिक्लेरेशन) न्यायालय के विवेक (डिस्क्रीशन) पर निर्भर करती है। अपीलकर्ता ने जो दूसरी बात कही है उस पर विचार करना है। अपीलकर्ता का कहना है कि वादी की सभी बातें जब प्रतिवादी ने मान ली है तो सामान्य क्रम में ही घोषणा दे दिया जाना चाहिए। इस संबंध में व्य० प्र० संहिता के आ० १२ नि० ६ का अभिदेश किया गया जिसमें दिया हुआ है कि इस प्रकार दावे को मान लेने पर न्यायालय वादी के पक्ष में निर्णय दे देगा। किंतु इस उपबंध को व्य० प्र० संहिता के आ० ८ नि० ५ के साथ पढ़ना चाहिए और विशेषतः उसके परंतुक (प्राविजो) के साथ जिसमें दिया हुआ है कि न्यायालय स्वीकार किए हुए तथ्यों को ऐसी स्वीकृति के अतिरिक्त भी प्रमाणित करने की माँग कर सकता है और ऐसा करना उसके विवेक पर निर्भर करता है। यह परंतुक (प्राविजो) साक्ष्य अधिनियम की धारा ५८के परंतुक के समान है जिसमें दिया हुआ है कि जो तथ्य स्वीकार कर लिए गए हैं उनके प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। अतः इन उपबंधों के पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वादपत्र में दिए हुए तथ्य यदि स्वीकार कर लिए गए हैं तब भी न्यायालय घोषणा (डिक्लेरेशन) देने के लिये बाध्य नहीं हैं। इस प्रसंग में एंडर्सन के "एक्शंस फार डिक्लेरेटरी जजमेंट्स" का एक परिच्छेद महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने लिखा है कि घोषणात्मवाद के लिये यह आवश्यक है कि पक्षों के बीच झगड़ा वास्तविक हो और न्याय करने योग्य हो तथा पक्षों के हित (इंटरेस्ट) विरोधी (ऐडवर्स) हों। जब प्रतिवादी वादी की बात मान लेता है तो उस स्थिति में अधिकार की घोषणा अनुचित है और एक प्रकार से यह न्यायालय की परामर्श लेना है जो अव्यावहारिक है न कि वाद योग्य। अर्थात्—वादी की बातें मान लेने पर भी यह अनिवार्य नहीं है कि न्यायालय वादी के पक्ष में निर्णय दे ही दे; वह अन्य प्रकार से प्रमाणित करने की माँग कर सकता है। यदि रुपए की डिग्री होती तो स्वीकार (ऐडमिशन) करने पर वादी के पक्ष में निर्णय देने में न्यायालय को उतना सतर्क न रहना पड़ता जितना इस मामले में आवश्यक है। इसमें सामाजिक स्थिति (स्टेटस) की घोषणा की माँग है जो कि बहुत ही गंभीर विषय है कारण कि इस घोषणा का प्रभाव न्यायालय के सामने के पक्षों तक ही सीमित नहीं रह जायगा वरन इसका प्रभाव वादी और उत्तरवादी सं० १ और २ की संतान पर पड़ेगा। इस घोषणा का प्रभाव प्रतिवादी राजकुमार तक ही सीमित नहीं रह जायगा वरन् समस्त परिवार पर इसका प्रभाव पड़ेगा इसलिए धारा ४३ के प्रभाव पर विचार करने की आवश्यकता है।

धारा ४३ के संबद्ध भाग इन शब्दों में हैं:—

'४३—इस अध्याय के अंतर्गत घोषणा (डिक्लेरेशन) का बंधन केवल वाद के पक्षों पर है, उन व्यक्तियों पर है जो क्रम से उनके माध्यम से दावेदार होते हैं और जहाँ कोई पक्ष न्यास धारी (ट्रस्टी) है······।'

अपीलकर्ता की ओर से कहना है कि इस मामले में वादी ने जो सामाजिक स्थिति की घोषणा की प्रार्थना की है उसका बंधन केवल उसपर (वादी पर) और राजकुमार पर होगा कारण कि यह प्राङ् न्याय (रेसजुडिकेटा) का नियम है इसलिए इसका बंधन केवल पक्षों पर और उनके संसर्गियों (प्रिवीज) पर होगा। उनका कहना है कि उत्तरवादी सं० १ और २ ऐसे संसर्गी (प्रिवीज़) नहीं हैं। उनका तर्क है कि धारा ४३ संशोधित रूप में प्राङ् न्याय (रेसजुडिकेटा) का रूप है और उसमें प्रयुक्त शब्द 'केवल' इस बात का प्रतीक है कि धारा ४२ के अंतर्गत घोषणा का बंधन वाद के पक्षों पर है और उन पक्षों पर है जो क्रमानुसार उनके माध्यम से दावेदार होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार (तृतीय उत्तरवादी) की ओर से अपील-कर्ता के कथन का समर्थन किया गया कि "उनके माध्यम से दावेदार" का वही तात्पर्य है जो कि व्य० प्र० संहिता की धारा ११ के "अंतर्गत दावेदार" का है और उन शब्दों से केवल व्यक्तिगत स्थिति (परसनल स्टेटस) की घोषणा का अभिदेश नहीं होता वरन् इसका अभिप्राय वही होता है जिसे सामान्य विधि (कामन ला) में 'संपदा संसर्गी' (प्रिवी इन स्टेट) कहा जाता है। उन्होंने 'बिगलो आन इस्टापेल' के एक स्थल को उद्धृत किया कि प्रतिष्टंभ विधि (ला आफ स्टापेल) में एक व्यक्ति दूसरे का संसर्गी (प्रिवी) तब होता है जब कि (१) प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) के विषय के संबंध में वह दूसरे की स्थिति (पोजीशन) का उत्तराधिकारी हो जाय, (२) दूसरे के अंतर्गत उसको धारण करे और इस बात को ध्यान में रखना है कि संसर्ग (प्रिविटी) का आधार संपत्ति है न कि वैयक्तिक सामाजिक स्थिति। संसर्गी (प्रिवी) होने के लिये यह आवश्यक है कि उसने वाद विषय में उत्तराधिकार या क्रय करके अधिकार प्राप्त किया हो या उसके अंतर्गत संपत्ति का धारण किया हो।

दूसरी ओर उत्तरवादी १ और २ की ओर से कहना है कि 'माध्यम से दावेदार' और 'के अंतर्गत दावेदार' का एक ही अर्थ नहीं होता और धारा ४३ व्य० प्र० सं० की धारा ११ के प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) के सिद्धांत की तरह नहीं है अथवा यह निर्णयजन्य प्रतिष्टंभ (स्टापेल बाई जजमेंट) की तरह भी नहीं है। उनका कहना है कि यह वाद वास्तव में उत्तरवादी सं० १ और २ पर बंधन रहने के विचार से निवेशित किया गया है—प्रतिवादी राजकुमार को बाध्य करने के लिये नहीं। वादी इसमें जब सफल हो जाती है तो उनका कहना है कि इसके बाद कभी वादी और उसके बच्चे एक ओर तथा उत्तरवादी १ और २ दूसरी ओर होकर मुकदमा लड़ें तो यह निर्णय उसमें प्रतिग्राह्य (ऐडमिसिबुल) ही नहीं होगा वरन् इसका बंधन दोनों पक्षों पर होगा कारण कि यह मान्य है कि उत्तरवादी १ और २ भी राजकुमार के माध्यम से ही दावेदार हैं।

इस संबंध में इस बात पर ध्यान देना है कि जो निर्णय निष्पादन (एक्जीक्यूशन) की कार्यवाही द्वारा लागू किए जा सकते हैं उनसे धा० ४२ के अंतर्गत की घोषणात्मक डिग्री अंतर रखती है और जिस उद्देश्य से यह अंतर है वह उपयोगी और महत्वपूर्ण है इसलिए घोषणात्मक निर्णय का महत्व और बढ़ जाता है। घोषणात्मक डिग्री भविष्य की मुकदमेबाजी को वर्तमान वाद-मूल (काज आफ ऐक्शन) हटा कर रोकती है यह स्वत्व संबंधी झगड़े को शांत करती है, यह अभिसाक्ष्य (टेस्टिमोनी को शाश्वत बनाती है और कार्यवाही के बाहुल्य पर भी रोक रखती है।

स्वभावतः घोषणात्मक डिग्री कोई नया अधिकार नहीं प्रदान करती वरन् संपत्ति के स्वत्व (टाइटिल) और सामाजिक स्थिति (स्टेटस) के चतुर्दिक्र जो कुहरा छा गया रहता है उसी का यह निवारण करती है। न्यायालय जब विवादग्रस्त सामाजिक स्थिति के बारे में घोषणा करता है तो इससे अनेक अधिकारों का प्रवाह आरंभ हो जाता है और धारा ४३ के अंतर्गत उनके माध्यम से जितने लोग दावेदार होते हैं उन पर भी इसका बंधन हो जाता है। यह मूलभूत अधिकार का नियम है और प्राङ्न्याय (रेसजुडिकेटा) तथा निर्णय जन्य प्रतिष्टंभ (इस्टापेल बाई जजमेंट) से अंतर रखता है। व्य० प्र० संहिता की धारा ११ का प्राङ्न्याय वि० सा० अधिनियम की धारा ४३ से विस्तृत क्षेत्रवाला है। जैसे प्राङ्न्याय न्यायालय की सामर्थ्य पर अधिक जोर देता है किंतु धारा ४३ इस विधिक स्थिति पर जोर देती है कि यह व्यक्ति बंधक निर्णय (जजमेंट इन परसोनम) है। धारा ४३ न्यायालय की सामर्थ्य (कंप्रीटेंस) पर विचार नहीं करती। पहले का कोई निर्णय बाद वाले मुकदमे में उस स्थिति में भी प्राङ्न्याय हो सकता है जब कि पक्ष माध्यम से दावेदार भी न हों। उदाहरणार्थ प्रतिनिधित्व वाद (रिप्रजेंटेटिव सूट) या भावी प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) का निर्णय की बंधन वास्तविक प्रत्यावर्ती पर भी होगा यद्यपि कि वह पक्ष न हो या पहलेवाले मुकदमें में पक्षों के माध्यम से दावेदार न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपीलकर्ता और उत्तरवादी सं० ३ की ओर से कहा गया कि धारा ४३ के अंतर्गत धारा ४२ की घोषणा का बंधन पक्षों के अतिरिक्त किसी दूसरे पर तब तक नहीं होगा जब तक कि इसका संबंध किसी संपत्ति से न हो। अर्थात् धारा ४३ केवल संपदाजन्य संसर्ग (प्रिवी इन स्टेट) में लागू होती है। संसर्ग (प्रिवी) तीन प्रकार की होती है:—१—विधि के प्रवर्तन द्वारा जैसे संविदा जन्य संसर्ग (२) किसी संपत्ति में प्रमुख अधिकार के अंतर्गत किसी अधरिक (सबार्डिनेट) अधिकार के निर्माण द्वारा जैसे—भूस्वामी और कृपक, बंधकदाता और बंधकी (३) रक्त संबंध द्वारा जैसे पूर्वज और उत्तराधिकारी। यदि ऐसी बात न हो तो कुछ विचारगम्य अवस्थाओं में धारा ४३ का प्रभाव निरर्थक हो जाय। अपीलकर्ता और उत्तरवादी सं० ३ की ओर से कहा गया है कि धारा ४३ केवल संपत्ति संबंधी घोषणा में लागू होती है, सामाजिक स्थिति की घोषणा में नहीं। यह बात नहीं है। विधान मंडल का ऐसा अभिप्राय नहीं था। धारा ४२ और धारा ४३ साथ साथ चलती है और इनके बनाने का विचार था कि जब ये लागू हों तो साथ ही साथ। इसीलिए सामाजिक स्थिति की घोषणा का बंधन केवल न्यायालय के समक्षवाले पक्षों पर ही नहीं होता वरन् उन व्यक्तियों पर भी होता है जो कि क्रम से उनके माध्यम से दावेदार हैं। धारा ४३ में प्रयुक्त शब्द 'केवल' यों तो इस बात का प्रतीक है कि इस प्रकार घोषणावाले निर्णय सर्वबंधक निर्णय (जजमेंट इन रेम) नहीं होते फिर भी उसी धारा के बाद वाले अंश में है कि उन पक्षों पर भी इसका बंधन है जो क्रम से उनके माध्यम से दावेदार होते हैं। "क्रम से" शब्द का प्रयोग इस बात का दूसरा प्रमाण है कि पक्षों के बीच में लड़ाई वास्तविक होनी चाहिए। यदि वास्तविक नहीं है तो न्यायिक विवेक का प्रयोग करके न्यायालय इस प्रकार की घोषणा स्वीकार करने से इंनकार कर सकता है।

अतः उपर्युक्त विचारविमर्श के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है—

१—व्य० प्र० संहिता के आ० १ नि० १० के अंतर्गत पक्षों के जोड़े जाने का प्रश्न सामान्यतः न्यायालय के आरंभिक अधिक्षेत्र का प्रश्न नहीं है वरन् न्यायिक विवेक का प्रश्न है जो कि वाद विशेष की परिस्थितियों एवं तथ्यों के अनुसार प्रयुक्त होना चाहिए। किंतु कुछ स्थितियों में संहिता की धारा ११५ में जिस सीमित अर्थ में अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) का प्रयोग हुआ है उसका प्रश्न उठ सकता है।

२—संपत्ति से संबंधित मामले में पक्ष बनने के लिये यह आवश्यक है कि वाद विषय में अधिकार प्रत्यक्ष हो न कि व्यापार आदि से संबंध रखनेवाला अधिकार।

३—जहाँ वाद विषय सामाजिक स्थिति की घोषणा से संबंध रखता हो प्रत्यक्ष अधिकार होने के नियम को उपयुक्त मामलों में ढीला कर देना चाहिए ताकि विवाद का निर्वर्तन पूर्णरूपेण और प्रभावपूर्ण ढंग से हो जाय।

४—उपर्युक्त परिनियमित उपबंधों के अंतर्गत प्रतिवादी की स्वीकृति (ऐडमिशन) पर ही घोषणा देने के लिये न्यायालय बाध्य नहीं है जब कि स्पष्ट कारणों के आधार पर वह स्वीकृति के अतिरिक्त भी प्रमाण दिए जाने पर जोर देता है।

५—इस मुकदमे जैसी घोषणात्मक डिग्री का प्रभाव आगे आनेवाली संतान पर पड़ता है इसलिए वर्तमान अधिकार (एक्जिस्टिंग इंटरेस्ट) का नियम जिसे अनेक रूलिंग्स में संपत्ति के झगड़े में लागू होना कहा गया है, इसमें पूर्णरूपेण लागू नहीं होता।

६—विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४३ का नियम ठीक ठीक प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) जैसा नहीं है। कुछ अर्थ में यह संकीर्ण है, कुछ में विस्तृत।

इन सिद्धांतों के अनुसार वर्तमान मामले में हमलोगों का निष्कर्ष है कि नीचे के न्यायालयों ने जो उत्तरवादी सं० १ और २ को पक्ष बनाने का निदेश किया उसमें वे अपने अधिकार सीमा से बाहर नहीं गए न तो यही कहा जा सकता है कि विवेक का प्रयोग समुचित नहीं था। यह विशेष अनुमति पर आया है इसलिए हम लोग नीचे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायालय के विवेक प्रयोग पर हस्तक्षेप करने योग्य यह उचित मामला नहीं समझते।

अपील तद्नुसार उत्सर्जित की जाती है।

न्यायमूर्ति जफर इमाम—

वादी ने 'खर्च-ये-पानदान' के लिये और विधिविहित विवाह की घोषणा के लिये जो वाद निवेशित किया है वह वादी और उत्तरवादी सं० ३ का व्यक्तिगत संबंध है। मुसलमान विधि (ला) के अनुसार एक मुसलमान चार विवाह तक कर सकता है और कोई इस अधिकार पर आपत्ति नहीं कर सकता। वादी के वाद निवेशित करने पर प्रतिवादी को दो ही उपाय काम में लाना था, या तो वह वादपत्र की बात को स्वीकार करता या उसको इनकार करता। उत्तरवादी सं० ३ ने उसे स्वीकार कर लिया, इसमें कोई गड़बड़ी न थी।

साजिश की बात कही गई है किंतु जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उत्तरवादी सं० १ और २ को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है तो इस प्रश्न का महत्व नहीं रह जाता है।

उत्तरवादी सं० १ और २ ने यह भी कहा है कि हमारे पक्ष बनने से वादमूल (काज आफ ऐक्शन) और वाद की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। ऐसी बात नहीं है। पहले के वाद में इतना ही प्रश्न विचाराधीन है कि वादी प्रतिवादी राजकुमार की विवाहिता पत्नी है कि नहीं और 'खर्च ये पानदान' को प्राप्त करने की अधिकारिणी है कि नहीं। जब उत्तरवादी सं० १ और २ भी पक्ष बन जाँयगें तो उपर्युक्त प्रश्नों के साथ साथ उत्तरवादी सं० ३ की संपदा पर उत्तराधिकार के अधिकार पर भी निर्णय देना होगा जिससे वाद मूल और वाद प्रकृति दोनों बदल जायँगी।

उत्तरवादी सं० १ और २ का कहना है कि यह निर्णय विवाह अधिक्षेत्र (मैट्रिमोनियल जुरिडिक्शन) के अंतर्गत होगा जो साक्ष्य अधिनियम की धारा ४१ के अंतर्गत सर्व बंधक निर्णय (जजमेंट इन रेम) होगा तथा वि० सा० अधिनियम की धारा ४३ के अंतर्गत भी इसका बंधन होगा। किंतु जब साजिश का होना कहा जाता है तो ऐसी स्थिति का होना असंभव है।

उत्तरवादी सं० १ और २ ने यह मानकर प्रश्न उठाया है कि उत्तरवादी सं० ३ की संपदा पर उनका अधिकार है किंतु यह बात गलत है। मुसलमान विधि में ऐसा कोई अधिकार नहीं है। केवल उसी स्थिति में संपदा पर उनका अधिकार होगा जब कि उत्तरवादी सं० ३ की मृत्यु के बाद वे जीवित रहें और यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है केवल तभी उनके उत्तराधिकार के अधिकार का प्रश्न उठता है और वह भी जितने उत्तराधिकारी मृत्यु के समय जीवित रहेंगे उनकी संख्या पर निर्भर करेगा।

उत्तरवादी सं० १ और २ की ओर से कहा गया कि जब कभी उपर्युक्त परिस्थिति में उत्तराधिकार का प्रश्न उठा तो उस समय हम यह नहीं कह सकते कि अपील-कर्ता उत्तरवादी सं० ३ की विवाहिता पत्नी नहीं है। उनका कहना है कि धारा ४३ के अंतर्गत इस निर्णय का बंधन हम पर होगा। यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती कारण कि यह नहीं कहा जा सकता कि उत्तरवादी सं० १ और २ अपीलकर्ता और उत्तरवादी सं० ३ के क्रमानुसार माध्यम से दावेदार हैं। यदि मान भी लिया जाय कि ऐसी घोषणा का बंधन उन पर होगा तो भी उनको पक्ष बनाने में कोई औचित्य नहीं है कारण कि वाद में प्रमुख विषय विवाह है न कि उत्तराधिकार। यदि उत्तरवादी सं० १ और २ की बात मान ली जाय तब तो किसी भी मुकदमे में कोई भी आकर कह सकता है कि यों तो इस समय हमारे विरुद्ध वाद-मूल (काज आफ ऐक्शन) नहीं है किंतु हमें पक्ष बनाने की अनुमति इसलिए प्रदान की जाय कि इसमें की डिग्री का बंधन प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) के आधार पर हम पर होगा।

धारा ४२ के अंतर्गत घोषणा (डिक्लेरेशन) न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है किंतु यह विवेक न्यायिक विवेक होना चाहिए। इस मामले में वादी के पक्ष में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोषणा दी जानी चाहिए कारण कि प्रतिवादी की अभिस्वीकृति (एकनालेजमेंट) है कि विवाह हुआ है। अपीलकर्ता इस अभिस्वीकृति पर निर्भर कर सकती है क्योंकि मुसलमान विधि में अभिस्वीकृति की मान्यता है तथा इससे विवाह की वैधता की अभिधारणा होती है। यदि बाद में कभी विवाद हो तो जो लोग विवाह की वैधता को इनकार करना चाहेंगे वे इस अभिधारणा (प्रेजंप्शन) के विरुद्ध प्रमाण दे सकते हैं। इस समय घोषणा देने में कोई अन्य बात रह नहीं जाती जिससे निर्णय पूर्ण न होता हो।

आ० १ नि० १० में है कि पक्ष बनाने की अनुमति तभी देना चाहिए जब कि बिना पक्ष के आए वाद के सभी प्रश्नों का निर्वर्तन पूर्णरूपेण नहीं हो सकता है। इस मामले में जब उत्तरवादी सं० १ और २ के बिना पक्ष बने ही वाद का निर्णय पूर्णरूपेण हो सकता है तो नीचे के न्यायालय ने स्वविवेक के आधार पर यदि इन्हें पक्ष बनने की अनुमति दिया तब भी सर्वोच्च न्यायालय इसमें हस्तक्षेप कर सकता है।

वादपत्र में कहीं नहीं है कि उत्तरवादी सं० १ और २ अपीलकर्ता की सामाजिक स्थिति से इनकार करते हैं। ऐसी बात अपीलकर्ता ने केवल उत्तरवादी सं० ३ के प्रति कहा। उत्तरवादी सं० १ और २ का इस वाद से कुछ संबंध नहीं है। यदि वादी के पक्ष में घोषणा हो जाती है तब भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा।

यह केवल कल्पना पर निर्भर करता है कि घोषणा कर देने पर वाद में वादशीलता बढ़ेगी। न्यायालय ऐसी कल्पना नहीं कर सकता। यदि उत्तरवादी सं० १ और २ को पक्ष बनने का अवसर प्रदान किया गया तो यह व्य० प्र० संहिता के आ० १ नि० १० के प्रतिकूल पड़ेगा तथा विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ के अभिप्राय के अनुसार नहीं होगा। ऐसी घोषणा मुसलमान विधि के द्वारा अनुमित भी नहीं है।

अतः मैं अपील स्वीकार करूँगा कारण कि नीचे के दोनों न्यायालयों का यह निष्कर्ष गलत है कि इस मामले में आ० १ नि० १० लागू होता है।

न्यायालय द्वारा—अपील उत्सर्जित की जाती है। परिव्यय (कास्ट्स) नीचे के न्यायालय के निर्णय पर निर्भर करेगा।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वो० न्या० ६१

(नागपुर से)

३१ मार्च १९५८

बी० पी० सिनहा, एस० जफर इमाम और के० सुब्बा राव न्यायमूर्तिगण

श्रीमती कमलावती तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

शिवशंकर दयाल तथा अन्य — उत्तरवादीगण

व्यवहार अपील सं० ११४।१९५४

हिंदू विधि – विधवा – अध्यर्पण (सरेंडर) और आंशिक आत्मविलोपन (सेल्फ इफेसमेंट)

न्यायमूर्ति एस० जे० इमाम—

नागपुर उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है जिससे नीचे के न्यायालय का निर्णय अंशतः उलट दिया गया था।

मुसम्मात जोतकुँवर ने १९०६ में अपनी लड़की जीराबाई और लड़की के तीन लड़कों के पक्ष में एक हस्तांतरण विलेख (डाकूमेंट) लिखा। लड़कों के नाम मथुरा, वृंदावन और ननकइया थे। जीराबाई और उनके तीनों लड़कों का हस्तांतरण की हुई संपत्ति में प्रत्येक का ¼ हिस्सा था। ननकइया की मृत्यु हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके बाद उस संपत्ति पर जीराबाई और उनके दोनों लड़कों का नाम चढ़ा। इसके बाद वृंदावन और मथुरा प्रसाद दोनों मर गए। मथुरा प्रसाद अविवाहित था। वृंदावन की विधवा पत्नी केवल बच रही जिसका नाम रामदुलारी था। वृंदावन के हिस्से पर उसकी विधवा रामदुलारी का नाम चढ़ा तथा मथुरा प्रसाद के हिस्से पर जीरादेई के पति पदुमनाथ का नाम चढ़ा। अतः इस प्रकार संपत्ति तीन भागों में बँटी; ⅓ पदुमनाथ को, ⅓ जीरादेई को और ⅓ रामदुलारी को। इसके बाद जीरादेई की भी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद कई मुकदमे चले। अंत में निर्णय हुआ कि ⅔ भाग पर पदुमनाथ का नाम चढ़ जाय और ⅓ भाग पर रामदुलारी का। पदुमनाथ ने अपने भाग के ⅔ का दान अपनी पुत्री कमलाबाई के पक्ष में कर दिया जो कि आरंभिक वाद में प्रतिवादी है।

श्रीमती जोतकुँवर के पति के भाई रामप्रसाद के पुत्र शिवशंकर दयाल ने यह वाद निवेशित किया है।

वादी का कहना है कि जोतकुँवर ने जो हस्तांतरण विलेख लिखा था वह दान (गिफ्ट) था न कि प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) के पक्ष में अध्यर्पण (सरेंडर); अतः श्रीमती जोतकुँवर के बाद हम संपत्ति के अधिकारी हुए कारण कि उनकी मृत्यु के बाद दान (गिफ्ट) लागू नहीं हो सकता।

अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने निर्णय दिया कि:—(१) श्रीमती जोतकुँवर ने अपना पूर्ण विलोप (इफेसमेंट) संपूर्ण संपदा से कर दिया है तथा (२) कमला बाई और रामदुलारी संपत्ति के प्रतिकूल धारण (ऐडवर्स पोजेशन) में थीं और इसलिए वादी का वाद कालबाधित (बार्ड बाई लिमिटेशन) है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया।

अपील करने पर उच्च न्यायालय ने इस निर्णय को उलट दिया। उच्च न्यायालय का विचार था कि श्रीमती जोतकुँवर ने जिस विलेख का निष्पादन किया वह रघुराई, उसके पति की संपूर्ण संपदा का अध्यर्पण (सरेंडर) नहीं था। हम लोगों ने उस विलेख को देखा और अपीलकर्ता की बात सुनी। हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय का निर्णय सर्वथा ठीक है। विलेख (डाकूमेंट) को देखने से पता चलता है कि जोतकुँवर को जो संपदा उसके पति से मिली थी उन सबका उसने अध्यर्पण (सरेंडर) नहीं किया। उसने ६१·५ एकड़ की सीर पर खेती करने का अपना अधिकार सुरक्षित कर लिया था। ६१·५ एकड़ की भूमि जो उसने अपने लिये रखा था वह बहुत ही अधिक थी इसलिए अध्यर्पण (सरेंडर) पूर्ण नहीं है। जोतकुँवर और उनकी लड़की जीराबाई के आत्म विलोचन (सेल्फ इफेसमेंट) का कोई परिणाम तब निकलता जब कि आत्मविलोपन पूर्णरूपेण होता और रघुराई की सारी संपदा का होता। आंशिक आत्म-विलोपन का यदि ठीक अर्थ किया जाय तो यह अध्यर्पण (सरेंडर) नहीं होता। ६१·५ एकड़ का उसी शर्त पर जीराबाई और उसके तीनों पुत्रों को परवर्ती परिदान (गिफ्ट) इस मामले में कोई परिवर्तन नहीं करता क्योंकि न तो १९०६ का विलेख और न तो बादवाला परिदान (गिफ्ट) वैध अध्यर्पण होता है।

यदि वैध अध्यर्पण नहीं हुआ और रघुराई की संपदा की त्वरितातिं (ऐक्सिलरेशन) नहीं हुई तो इस मामले में प्रतिकूल धारण (ऐडवर्स पोजेशन) का कोई प्रश्न नहीं पैदा होता। जोतकुँवर की मृत्यु पर ही यह संपदा निकटतम जीवित प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) में निहित होती है। जोतकुँवर की मृत्यु के कुछ ही महीने बाद यह वाद विवेशित कर दिया गया अतः यह अवधि बाधित नहीं है।

तद्नुदार अपील उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी सूचना किसी समर्थ अधिकारी को दी भी नहीं जा सकती थी। अभियुक्तों ने अपनी बचत के अधिकार की सीमा का उल्लंघन नहीं किया।

इस प्रसंग में इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि मारपीट में कोई पक्ष अपने उस अधिकार की रक्षा के लिये लड़ रहा है जिसका वह पहले से उपभोग कर रहा है या वह उस संपत्ति के लिये लड़ने आया है जिसे वह अपनी समझता है किंतु धारण में नहीं है या उपभोग नहीं कर रहा है। यदि स्थिति बादवाली हो तो आत्मप्रतिरक्षा का अधिकार नहीं मिल सकता किंतु पहले प्रकार की स्थिति में आत्मप्रतिरक्षा का अधिकार है।

जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे की संपत्ति को उसकी भूमि पर अनधिप्रवेश करके लेना चाहता है और यह काम चोरी या आपराधिक अनधिप्रवेश का हो जाता है तब जिसका धारण है वह जबतक अनधिप्रवेश जारी है तब तक परिस्थिति के अनुकूल चोट पहुँचा करके भी रक्षा करने का अधिकारी है। ऐसी स्थिति में वह कोई अपराध नहीं करता। दंड संहिता धारा ९५ के अंतर्गत आत्मप्रतिरक्षा के सिद्धांत के अंतर्गत यह आ जाता है। किंतु दूसरी ओर जब अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) या चोर ने अपना काम कर लिया है और जिस व्यक्ति का अधिकार था उसने ऐसे काम में स्वीकृति दे दी तो जिस व्यक्ति का उस संपत्ति पर अधिकार था उसे आत्मप्रतिरक्षा (सेल्फ डिफेंस) का यह अधिकार नहीं है कि धारण (पोजेशन) प्राप्त करने के लिये वह उस चोर या अनधिप्रवेशी को चोट पहुँचावे। जो संपत्ति चोरी करके या लूट करके ले जाई जा रही हो उसे पुनः पकड़ लेने का अधिकार धारा १०५ के अंतर्गत दिया गया है क्योंकि पकड़ना या पुनःपकड़ लेना एक ही व्यवहार में आता है। किंतु उस परिस्थिति में जब कि अपराध कर दिया गया है और संपत्ति हटा ली गई है तो कुछ समय का अंतर देकर उसके स्वामी का या उसके स्वामी की ओर से पुनः पकड़ने का काम चाहे जिस आधार पर उचित ठहराया जाय किंतु वह संपत्ति की प्रतिरक्षा के अधिकार में नहीं आ सकता।

भारतीय दंड संहिता की धारा १०५ के अंतर्गत जिस प्रत्यादान (रिकवरी) की चर्चा है वह प्रतीत होता है कि तत्क्षण प्रत्यादान के लिये है या उस समय तक के लिये है जब तक कि अपराधी अपराध करने के बाद लौटकर अपने अंतिम स्थान को पहुँच न गया हो। इसके समर्थन में ए० आई० आर० १९२६ लाहौर ७४, ए० आई० आर० १९४५ नागपुर २६६ हैं।

यह मारपीट जिस परिस्थिति में हुई उसमें अभियुक्तों को यह अधिकार था कि अपनी और अपनी संपत्ति की रक्षा करें परंतु अधिकार के लिये आवश्यकता से अधिक हानि न पहुँचाई जाय। भारतीय दंड संहिता की धारा १०३ के अंतर्गत संपत्ति की व्यक्तिगत प्रतिरक्षा का अधिकार, धारा ९९ के प्रतिबंधों के साथ होना चाहिए।

यहाँ अभियुक्तों ने आत्म प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया। विद्वान् सत्र न्यायाधीश का साक्ष्य मूल्यांकन गलत था कि यह पता नहीं चलता कि किस पक्ष ने पहले हमला किया। बहस के लिये यदि यह मान भी लिया जाय कि विद्वान् सत्र न्यायाधीश का उपर्युक्त निष्कर्ष ठीक था तब भी इस न्यायालय द्वारा प्रभु वि० सम्राट—१९४१ ए० एल० जे० ६१६ में निश्चित किए हुए सिद्धांत पर अभियुक्तों को छोड़ देना चाहिए। इसमें निर्णय हुआ था कि उस परिस्थिति में जहाँ अभियुक्त द्वारा दंड संहिता के किसी सामान्य अपवाद का आश्रय लिया जाता है और इस बात की पुष्टि में साक्ष्य दिया जाता है। किंतु इस साक्ष्य के परीक्षण पर न्यायालय यदि सकारात्मक ढंग से इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता है कि अभियुक्त का मामला सामान्य अपवाद में आता है फिर भी संपूर्ण साक्ष्य के परीक्षण के बाद यदि न्यायालय को इस बात में युक्तिसंगत संदेह रहता है कि अभियुक्त उस अपवाद के लाभ का अधिकारी है कि नहीं तो अभियुक्त को दोषमुक्ति (ऐक्युटल) का अधिकार है।

इस मामले की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा समस्त साक्ष्यों के परीक्षण के बाद हमारा निष्कर्ष है कि अभियुक्त आत्मप्रतिरक्षा के संरक्षण को प्राप्त करने के अधिकारी हैं। इसलिए कोई भी अभियुक्त दं० संहिता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा ३४ के साथ धारा ३०२, या धारा ३०४ या धारा ३२३ के अंतर्गत अपराधी सिद्ध नहीं हो सकता। परिणामतः राज्य की अपील सं० १७३६।१९५५ उत्सर्जित की जाती है और दो अपीलें सं० ११६०।१९५५ और १३६३।१९५५ स्वीकार की जाती है।

सिद्धनाथ राय की धारा ३०४ भाग १ और धारा ३२३ के अंतर्गत तथा रघुपति राय, राम जतन राम और बेलाल की धारा ३२३ के अंतर्गत दोषसिद्धि और दंडादेश निराकृत किया जाता है। वे जमानत पर हैं। उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है तथा उनकी जमानत और बंधपत्र (बांड्स) हटा दिए जाते हैं।

———

विधि पत्रिका १८८० (१९५८) इला० उच्च न्या० १६०

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू

एस० ए० सं० ३५४।१९५० फरवरी ११।१९५७

मुसम्मात महमुदुन्निसाँ — वादी अपीलकर्ता

विरुद्ध

मेहरबान हुसेन — प्रतिवादी उत्तरवादी

झाँसी के व्यवहार न्यायाधीश श्री एस० पी० राय के निर्णय दिनांक २८-११-४९ के विरुद्ध द्वितीय अपील

मुसलमान विधि—तारुण्य विकल्प (आप्शन आफ प्यूबर्टी) - विवाह निष्पत्ति (कंजूमेशन आफ मैरेज) कब होती है—यदि विवाह की निष्पत्ति नहीं हुई है तो पत्नी को विवाह विच्छेद का अधिकार है।

न्यायमूर्ति गुर्टू—

अपीलकर्ता ने एक वाद निवेशित किया था उसी की यह द्वितीय अपील है। वादी अपीलकर्ता का कहना था कि मेरे पिता ने मेरा विवाह १५ वर्ष की आयु से पहले कर दिया था और मैंने अपनी आयु के अठारहवें वर्ष से पहले ही विवाह विच्छेद कर दिया है और यह कि विवाह की निष्पत्ति (कंजूमेशन) नहीं हुई।

उसके पति का प्रतिवाद (डिफेंस) में कहना था कि वादी विवाह के समय १६ वर्ष से ऊपर थी और विवाह की निष्पत्ति (कंजूमेशन) हो चुकी है।

अन्वीक्षा न्यायालय (ट्रायल कोर्ट) का निष्कर्ष था कि वादी विवाह के समय १३½ वर्ष की थी और उसके पति की आयु ३४ या ३५ वर्ष की थी और विवाह की निष्पत्ति (कंजूमेशन) नहीं हुई और इसलिए उसे विवाह विकल्प (आप्शन आफ प्यूबर्टी) का अधिकार है।

नीचे के न्यायालय का निर्णय था कि:—

१—अन्वीक्षा न्यायालय (ट्रायल कोर्ट) ने प्रतिवादी के बारे में जो बात कही है उससे यही आता है कि उसने अवश्य ही विवाह की निष्पत्ति कर ली होगी चाहे वह लड़की की इच्छा के विरुद्ध ही क्यों न हुई हो।

२—विवाह के समय वादी की आयु १५ वर्ष से अधिक थी कारण कि 'निकाह' रजिस्टर में उसकी आयु १६ वर्ष लिखी है।

३—वादी अफ़जल हुसेन की लड़की नहीं है वरन् यह अफ़जल हुसेन की दूसरी स्त्री की लड़की है जो उसके पहले के पति से पैदा हुई है इसलिए उसकी आयु अवश्य ही अधिक होगी।

४—वादी और अफ़जल हुसेन ने वादी के जन्म के समय के विषय में सर्वथा विरोधी बातें बतलाई हैं।

५—वादी की माता का परीक्षण होना चाहिए था जो न्यायालय के सामने आकर कहती कि वादी अफ़जल हुसेन से ही पैदा हुई है न कि उसके पहले के पति से।

६—आयु के बारे में लड़की की डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिए थी।

मेरे विचार से यह निष्कर्ष गलत है कारण कि:—

१—लड़की ने अपनी स्वतंत्र इच्छा से संभोग की स्वीकृति नहीं दी। इन परिस्थितियों में पति का अपनी पत्नी से संभोग करना ही पत्नी को १८ वर्ष की आयु से पहले संबंध विच्छेद करने के अधिकार को समाप्त नहीं करता। पत्नी को अपने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार से वंचित करने के लिये यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि उसने अपनी इच्छा से संभोग करने की अनुमति दी। जब तक लड़की ने ऐसा नहीं किया है तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि विवाह की निष्पत्ति (कंजूमेशन) हुई है। विवाह की निष्पति का तात्पर्य होता है कि स्वतंत्र इच्छा के प्रयोग के बाद निष्पत्ति हो। विवाह की निष्पत्ति का अर्थ यह नहीं है कि स्त्री की इच्छा के विरुद्ध या बलपूर्वक संभोग किया जाय। अभिलेख पर इस बात का प्रमाण है कि लड़की के शरीर पर घावों के चिह्न थे अतः इस संबंध में नीचे के न्यायालय का यह निष्कर्ष ठीक था कि संभोग स्त्री की इच्छा के विरुद्ध हुआ।

२—'निकाह' रजिस्टर में उसकी आयु १६ वर्ष की लिखी है। इसको अफजल हुसेन (वादी के पिता) ने स्पष्ट किया है कि विवाह के समय हमने समझा था कि शारदा अधिनियम में कम से कम आयु १६ वर्ष की ही है इसीलिए मैंने १६ वर्ष लिखाया। यह संभव प्रतीत होता है। इसकी संभवना इसलिए और बढ़ जाती है कि इतनी कम आयु की लड़की का विवाह इतनी अधिक आयु के पुरुष के साथ जब हो रहा है तो लड़की का पिता स्वभावतः यह चाहेगा कि लड़की आयु अधिक बताई जाय ताकि पत्नी और पति की आयु की असमानता कुछ कम हो जाय। इसलिए लड़की की आयु अधिक नहीं प्रतीत होती।

३—अफजल हुसेन की पुत्री होने पर लिखित प्रतिवाद (रिटेन स्टेटमेंट) में कहीं आपत्ति नहीं की गई है। वह लड़की (वादी) जब साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष आई थी तो उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि "मेरी एक दूसरी बहन है जो मेरी माता की पुत्री है तथा उसके दूसरे पति से है", इससे यह स्पष्ट है कि वादी अपनी माता के पहले पति से नहीं पैदा हुई है।

४—लड़की और लड़की के पिता के कथन में जो अंतर है वह इसलिए है कि पिता लड़की के जन्म के १५ वर्ष के बाद साक्ष्य देने के लिये आया है इसलिए थोड़ा बहुत अंतर पड़ जाना अस्वाभाविक नहीं है।

यह अंतर उसके पिता के प्रति परीक्षण (क्रास एक्जाविनेशन) में स्पष्ट भी हो चुका है और इस प्रकार दोनों में कोई विरोध नहीं आता।

५—जब यह झगड़ा था ही नहीं की वादी अफजल हुसेन की लड़की है कि नहीं तो यह उसका (वादी का) कर्तव्य नहीं था कि इस संबंध में अपनी माता का साक्ष्य दिलवाती। उसकी माता का साक्षी के रूप में न आने से लड़की के विरुद्ध कोई अभिधारणा नहीं जा सकती।

६—लड़की की डाक्टरी परीक्षा की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि आयु को बतलाने के लिये यों तो डाक्टर विशेषज्ञ हैं फिर भी वे सर्वथा ठीक ठीक आयु बतलाने में असमर्थ होते हैं। अतः डाक्टरी परीक्षण न होने से वादी के विरुद्ध कोई बात नहीं निकाली जा सकती।

अतः हम वादी और उसके साक्षियों का कथन मानते हैं और प्रतिवादी तथा उसके साक्षियों की बात अस्वीकार करते हैं। इन परिस्थितियों में हमारा निष्कर्ष है कि विवाह के समय लड़की की आयु १५ वर्ष से कम थी और विधि के अभिप्राय के अनुसार जब विवाह की निष्पत्ति नहीं हुई तो मेरे विचार से वादी को सफल होना चाहिए। तद्नुसार मैं नीचे के न्यायालय की डिग्री को निराकृत करता हूँ और अन्वीक्षा न्यायालय की डिग्री को पुनर्स्थापित करता हूँ। परिव्यय (कास्ट्स) के लिये कोई आदेश नहीं होगा।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १६१

न्यायमूर्ति एस० एस० धावन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० ४०२४।१९५६—

३ सितंबर १९५८

नंदकिशोर तथा अन्य — प्रार्थीगण

विरुद्ध

किराया नियंत्रण अधिकारी, कानपुर तथा अन्य—विपक्षीगण

उ० प्र० (अस्थायी) किराया नियंत्रण वध्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिनिष्कासन नियम (यू० पी० टैंपोररी) कंट्रोल आफ रेंट ऐंड एविक्शन रूल्स), ४—'स्वामी' (लैंडलार्ड) में धारण सहित बंधकी (मारगेजी) भी आता है।

न्यायमूर्ति धावन—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत कानपुर के किराया नियंत्रण अधिकारी के विनियोजन (अलाटमेंट) के आदेश को अभिखंडित करने के लिये यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है। किराया नियंत्रण अधिकारी ने अपने प्रश्नगत् आदेश द्वारा यह मकान विश्वनाथ (उत्तरवादी सं० २) को दे दिया था।

प्रार्थी का कहना है कि यह मकान पहले सूरजकली का था और उसने इसका फलोपभोगी बंधक (युजुफ्रक्चुअरी मारगेज) हमारे पक्ष में कर दिया था। प्रार्थी का कहना है कि इस बंधक के आधार पर मैं जब धारण में आया तो उस समय उस मकान में एक दूसरा किरायादार रहता था। प्रार्थी नंदकिशोर उससे किराया वसूल करता रहा। कुछ समय के बाद उस किरायादार ने मकान छोड़ दिया और प्रार्थी के कहने के अनुसार उसने इसकी सूचना किराया नियंत्रण अधिकारी (रेंट कंट्रोल आफिसर) को दे दी किंतु मकान खाली होने की इस सूचना प्राप्ति के ३० दिन के भीतर उक्त अधिकारी ने इसका विनियोजन (अलाटमेंट) नहीं किया।

इसके पश्चात् १३ जून १६५६ को प्रार्थी नंदकिशोर ने किराया नियंत्रण और अधिनिष्कासन नियम के नियम चार के अंतर्गत अपने अधिकार का प्रयोग करके प्रार्थी सं० २ बद्री प्रसाद को मनोनीत किया।

किराया नियंत्रण निरीक्षक ने जाँच करके प्रतिवेदन दिया कि बद्री प्रसाद की आवश्यकता वास्तविक है।

८ अगस्त १६५६ को किराया नियंत्रण अधिकारी ने एक सप्रतिबंध आदेश पारित किया जिससे मकान का कुछ भाग विश्वनाथ (उत्तरवादी सं० २) को दिया गया और कुछ के बारे में निदेश किया गया कि वह मकान मालिक के लिये छोड़ दे।

प्रार्थी ने इसका विरोध किया और जिलाधीश के यहाँ प्रतिनिवेदन किया। जिलाधीश ने किराया नियंत्रण अधिकारी को इस पर पुनः विचार करने का निदेश किया। इस पर किराया नियंत्रण अधिकारी ने अपना विचार प्रकट किया कि नंदकिशोर बंधकी (मारगेजी) है इसलिए वह किराया नियंत्रण नियम ४ का अधिकार नहीं रखता। इसी आदेश से असंतुष्ट होकर प्रार्थी ने अनु० २२६ के अंतर्गत उसके अभिखंडन के लिये प्रार्थना पत्र निवेशित किया है।

यहाँ विचाराधीन प्रश्न यही है कि बंधकी (मारगेजी) क्या नियम ४ के अनुसार "स्वामी" (लैंडलार्ड) समझा जा सकता है ? "स्वामी" शब्द की परिभाषा धारा २ सी० में दी गई है कि कोई व्यक्ति जिसे निवास स्थान के लिये किरायादार द्वारा किराया देय होता है और इसमें उस व्यक्ति का अभिकर्ता, (एजेंट) प्राभिकर्ता, (अटार्नी) उत्तराधिकारी और अभिहस्तांकिती (असाइनी) भी संमिलित है।

प्रार्थी फलोपयोगी बंधकी है, मकान के धारण में है और किरायादारों से किराया वसूल करता है। अतः वह नियम ४ द्वारा 'स्वामी' को दिए हुए अधिकार का अधिकारी है। इस संबंध में किराया नियंत्रण अधिकारी का विचार गलत है।

किंतु उत्तरवादी सं० २ के विद्वान् वकील का कहना है कि बंधक विलेख की वास्तविकता पर दोनों पक्षों में झगड़ा है। शपथपत्र के कुछ परिच्छेद दिखलाए गए कि उत्तरवादी ने बंधक को वास्तविक नहीं माना है। उनका कहना है कि किराया नियंत्रण अधिकारी को इस तथ्य पर विचार करना चाहिए था किंतु ऐसा न करके उन्होंने केवल एक ही प्रश्न पर निर्णय दिया कि बंधकी के अधिकार के बल पर वह नियम ४ का लाभ नहीं उठा सकता।

दोनों पक्षों के वकील इस बात पर सहमत हैं कि तत्व पर निर्णय देने के लिये इसे प्रतिप्रेषित कर दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः मैं किराया नियंत्रण अभिकारी के आदेश को अभिखंडित करता हूँ और इसे उनके पास लौटा देता हूँ। वे इस प्रश्न का निर्णय इस आधार पर करेंगे कि फलोपभोग के लिये धारण में रहनेवाला बंधकी नियम चार के लाभ का अधिकारी है। उत्तरवादी सं० २ को अधिकार होगा कि वह वहाँ पर बंधक की वास्तविकता पर प्रेश्न उठाये।

ऐसी परिस्थिति में परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

विधि पत्रिका (१९८०) १६५८ इला० उ० न्या० १६३

न्यायमूर्ति एस० एस० धावन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख ८३४।१९५६

३० जुलाई १९५८

श्री श्यामनारायण सिंह तथा अन्य— प्रार्थीगण

वि०

एस० डी० ओ० चुनार (मिर्जापुर जिले के गाँव पंचायत के चुनाव के लिये चुनाव न्यायाधिकरण का काम करते हुए) तथा अन्य विपक्षीगण

उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम, १९४७ धारा १२ (सी०) और नियम २४-कई व्यक्तियों के चुनाव पर आपत्ति करने के लिये मिश्रित (कंपोजिट) प्रार्थनापत्र निवेशित करने की अनुमति नहीं है।

न्यायमूर्ति धावन—

प्रार्थी ने पंचायत राज अधिनियम की धारा १२ सी० के अंतर्गत चुनाव याचिका निवेशित की थी।

इसे चुनाव याचिका के संशोधन के लिये प्रार्थियों ने अनुमति माँगी थी किंतु एस० डी०ओ० ने इसे अस्वीकार कर दिया। एस० डी० ओ० के इस आदेश को अभिखंडित करने के लिये उत्प्रेषण लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) जारी करने की प्रार्थना की गई है।

शपथपत्र में कहा गया कि प्रार्थीगण निर्वाचक हैं और गाँव सभा का चुनाव १९५५ में हुआ जिसमें उत्तरवादी सं० २ सभापति चुना हुआ घोषित हुआ तथा २३ सदस्य निर्वाचित घोषित हुए। इस पर आपत्ति करने के लिये चुनार के एस० डी० ओ० के यहाँ चुनाव याचिका निवेशित की गई थी। एस० डी० ओ० यहाँ उत्तरवादी सं० १ हैं। प्रार्थियों का कहना है कि यह चुनाव याचिका पंचायत राज नियमों के नियम २४ के साथ पठित उपबंध के अंतर्गत निवेशित की गई थी। उनका कहना है कि इस पर दो आरंभिक आपत्तियाँ उठाई गई :—

१—ऐसा मिश्रित प्रार्थनापत्र नहीं दिया जा सकता जिसमें कई चुनावों पर जैसे प्रधान और सदस्यों के चुनाव पर एक ही प्रार्थनापत्र में आपत्ति हो।

२—केवल एक ही प्रतिभूति (सेक्योरिटी) जमा की गई है।

प्रार्थियों का कहना है कि जब एस० डी० ओ० ने अपना विचार व्यक्त किया कि यह चुनाव याचिका नियमानुकूल नहीं है तो प्रार्थियों ने प्रार्थना की कि प्रधान को उत्तरवादियों में से हटाने की अनुमति दी जाय और इस प्रकार चुनाव याचिका का संशोधन हो। विद्वान एस० डी० ओ० ने यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। इसी के विरुद्ध प्रार्थनापत्र है।

प्रार्थी के विद्वान वकील का कहना है कि एस० डी० ओ० का यह आदेश गलत है कारण कि प्रार्थीगण ने किसी विशेष व्यक्ति के चुनाव पर आपत्ति नहीं की है वरन् समस्त चुनाव पर ही आपत्ति की गई है कि यह ठीक से नहीं हुआ। उनका कहना है कि धारा १२ सी० के अंतर्गत चुनाव याचिका किसी एक व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होती वरन् सारे चुनाव के विरुद्ध होती है और चुनाव के अवैध होने के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति का चुनाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराकृत होता है। धारा १२ सी० की ऐसी व्याख्या नहीं की जा सकती।

उस धारा में है कि—"प्रधान के पद के लिये किसी "व्यक्ति" का चुनाव......।" इसको नियम २४ के साथ पढ़ना चाहिए। नि० २४ में है कि:—"उत्तरवादी का चुनाव......" इत्यादि। इस प्रकार धारा १२ (सी०) में शब्द "व्यक्ति" है और नियम २४ में शब्द 'उत्तरवादी' एकवचन में है ऐसा नहीं है कि—"उत्तरवादी या उत्तरवादियों का चुनाव"।

विद्वान् वकील ने सामान्य वाक्यांश अधिनियम (जनरल क्लाज़ेज़ ऐक्ट) की धारा १३ (२) के आधार पर कहा कि उत्तरप्रदेश के अधिनियमों में जहाँ एक वचन प्रयुक्त है वहाँ बहुवचन का अर्थ हो सकता है और बहुवचन का एकवचन। किंतु उसी में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि विचाराधीन अधिनियम के प्रसंग और विषय के अनुसार उपर्युक्त अर्थ से यदि कोई विरोधी बात आती हो तो वह लागू नहीं होगा।

गाँव सभा के चुनाव संबंधी उपबंधों से यह स्पष्ट है कि सदस्यों का चुनाव व्यक्तिगत रूप से होता है सामुहिक रूप से नहीं। प्रत्येक अभ्यर्थी (कैंडिडेट) के पक्ष में दिए हुए मतदान की गणना अलग अलग होती है, इन सबसे प्रतीत होता है कि चुनाव एक नहीं होता।

प्रार्थियों के विद्वान् वकील का कहना है कि अनाधिकार दबाव डालकर चुनाव का सारा वातावरण ही दूषित कर दिया गया था इसलिए चुनाव की सारी कार्यवाही प्रभावशून्य है और उसे निराकृत कर देना चाहिए। किंतु जब प्रार्थी से चुनाव याचिका की प्रतिलिपि माँगी गई कि न्यायालय उसे देखे कि दबाव किस प्रकार डाला गया था तो उसकी कोई प्रतिलिपि नहीं मिली इसलिए इस आपत्ति पर कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (रिप्रेजेंटेशन आफ पीपुल्स ऐक्ट) के सहारे विद्वान वकील ने अपनी इस बात का समर्थन करना चाहा कि एक चुनाव याचिका में कई अभ्यर्थियों के चुनाव पर आपत्ति की जा सकती है किंतु यह बात मानी नहीं जा सकती जब तक कि यह न दिखलाया जाय कि उक्त अधिनियम और पंचायत राज अधिनियम समान हैं। पंचायत राज अधिनियम के भीतर ही इस अधिकार को ढूँढ़ना चाहिए। इसके समर्थन में ए० आई० आर० १९५४ सर्वो० न्या० २१० है कि चुनाव को अभिखंडित करने के लिये परिनियम की व्याख्या बहुत कड़ाई से करनी चाहिए।

यदि बहस के लिये मान भी लिया कि चुनाव एक होता है तब भी कठिनाई है क्योंकि प्रधान का चुनाव और सदस्यों का चुनाव एक प्रकार का नहीं होता। सदस्यों का चुनाव क्षेत्र के आधार पर होता है पर, प्रधान का चुनाव सभी क्षेत्रों को मिलाकर होता है।

नियम है कि चुनाव याचिका ५) प्रतिभूति (सेक्योरिटी) के साथ निवेशित किया जाय। यहाँ प्रार्थी ने एक से अधिक चुनाव याचिका निवेशित की परंतु केवल ५) जमा किया। परंतुक (प्राविजो) में है कि चुनाव याचिका यदि प्रतिभूति के साथ न हों तो उसे लिया नहीं जाना चाहिए। एस० डी० ओ० किसी भी समय इसे उत्सर्जित कर सकते हैं और यही एस० डी० ओ० ने किया भी।

विद्वान् वकील का इस प्रसंग में कहना है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता (सिविल प्रोसीजर कोड) इसमें लागू होती है और उसके अनुसार कई वादमूल (काज आफ ऐक्शंस) एक साथ मिलाए जा सकते हैं। उक्त संहिता के अंतर्गत भी न्यायालय के समक्ष वस्तुओं से न्यायालय को संतुष्ट करना पड़ता है कि कतिपय वादमूल मिलाए जा सकते हैं। हमारे सामने कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिससे समझा जा सके कि संयुक्त (ज्वांइडर) करने के लिये यह स्थिति उपयुक्त है।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के उपबंध की तरह पंचायत राज अधिनियम की धारा १२ सी० के अंतर्गत भी इसके और नियम २४ की शर्तों का पालन न करने से चुनाव याचिका का उत्सर्जन ठीक है। चुनाव याचिका में बल नहीं है और उत्सर्जित की जाती है। बहस कई दिन तक हुई इसलिए मैं ३००) परिव्यय का अनुमान करता हूँ।

चुनावयाचिका अस्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उच्च न्या० १६५

न्यायमूर्ति उपाध्याय

एस०'ए० सं० १५०६।१६५४—२७ अगस्त १६५८

भगवानदास — वादी अपीलकर्ता

विरुद्ध

श्री गंगा प्रसाद — उत्तरवादी

व्यवहार अपील सं० १६३।१६५३ में बनारस के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश श्री आर० एस० सिंह के निर्णय दिनांक २४ मई १६५४ के विरुद्ध द्वितीय अपील

व्यवहार प्रक्रिया संहिता १६०८ धारा ३७— 'अपील के अधिक्षेत्र' (अपीलेट जुरिडिक्सन) शब्द में पुनरीक्षण अधिक्षेत्र भी संमिलित है।

न्यायमूर्ति उपाध्याय—

उच्च न्यायालय ने एक पुनरीक्षण (रिवीजन) की सुनवाई में परिव्यय (कास्ट्स) का आदेश पारित किया था उसी डिग्री के निष्पादन (एक्जीक्यूशन) के संबंध में निर्णीत ऋणी (जजमेंट डेटर) की यह अपील है।

डिग्री के निष्पादन (एक्जीक्यूशन) के संबंध में निर्णीत ऋणी की आपत्ति थी कि मुंसिफ के न्यायालय को डिग्री के निष्पादन का अधिकार नहीं है। यह आपत्ति व्य० प्र० संहिता की धारा ३८ के अंतर्गत की गई थी। नीचे के दोनों न्यायालयों ने इस आपत्ति को नहीं माना।

विद्वान् वकील ने यहाँ व्य० प्र० संहिता की धारा ३८ और ३७ का अभिदेश किया और कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक निर्णय ए० आई० आर० १६४४ कलकत्ता ३०१ पर निर्भर किया।

व्य० प्र० संहिता की धारा ३८ इन शब्दों में है:—

"३८—डिग्री का निष्पादन या तो जिस न्यायालय ने इसे पारित किया है उस न्यायालय द्वारा हो सकता है या उस न्यायालय द्वारा जिसमें यह निष्पादन के लिये भेजी गई हो"।

इसके पहले की धारा ३७ में "न्यायालय जिसने डिग्री पारित की है" पद की व्याख्या की गई है कि जहाँ अपील के अधिक्षेत्र के अंतर्गत डिग्री पारित की गई है वहाँ पहलेवाला न्यायालय (कोर्ट आफ द फर्स्ट इंस्टैंस) भी इसमें संमिलित है, इत्यादि।

विद्वान् वकील का कहना है इस डिग्री को उच्च न्यायालय ने अपने व्यवहार पुनरीक्षण अधिक्षेत्र के अंतर्गत पारित किया है इसलिए केवल उच्च न्यायालय ही इसका निष्पादन कर सकता है। कहा गया है कि धारा ३७ का कोई लाभ नहीं है क्योंकि जिस डिग्री को उच्च न्यायालय ने अपने अपील के अधिक्षेत्र के अंतर्गत पारित किया है उसी का निष्पादन पहलेवाला न्यायालय (कोर्ट आफ द फर्स्ट इंस्टैंस) कर सकता है, इस मामले का निष्पादन नहीं कर सकता क्योंकि यह डिग्री पुनरीक्षण (रिवीजन) अधिक्षेत्र के अंतर्गत पारित की गई है।

यों तो अपील और पुनरीक्षण अधिक्षेत्र में अंतर होता है किंतु अपील के अधिक्षेत्रवाली डिग्री के निष्पादन का अधिकार अन्वीक्षा न्यायालय को क्यों दिया गया है और पुनरीक्षण की डिग्री के निष्पादन का अधिकार क्यों नहीं दिया गया इस अंतर के लिये विद्वान् वकील ने कोई कारण नहीं बतलाया।

धारा ३७ के अंतर्गत अपील के अधिक्षेत्र का विस्तृत अर्थ होता है। आक्सफोर्ड शब्दकोश में 'अपील' की परिभाषा दी गई है कि यह मुकदमें को नीचे के न्यायालय से ऊपर के न्यायालय में भेजना है ताकि पहले का निर्णय या तो उलट दिया जाय या उसमें संशोधन कर दिया जाय। उसी शब्दकोश में 'अपील के न्यायालय' की परिभाषा दी गई है कि नीचे के न्यायालयों द्वारा पहले सुनवाई किए हुए मामलों की फिर से सुनवाई करना। इसी प्रकार हार्टन के "ला लेक्सिकन" तथा स्टोरी के अपील के अधिक्षेत्र की परिभाषा से यहीं आता है कि इसका अर्थ संकुचित नहीं वरन् विस्तृत होता है और इतना विस्तृत होता है कि इसमें पुनरीक्षण अधिक्षेत्र भी आ जाता है।

कलकत्ता उच्च न्यायालय का उपर्युक्त निर्णय इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामले के निर्वर्तन के लिये सहायता नहीं दे सकता कारण कि उसमें जो डिग्री दी गई थी वह उस प्रार्थनापत्र की अस्वीकृति में थी जिसके द्वारा प्रिवी कौंसिल में अपील करने की अनुमति माँगी गई थी। वह डिग्री परिव्यय की थी। इसलिए उसमें यह निर्णय ठीक ही दिया गया था कि यह डिग्री अपील के अधिक्षेत्र के अंतर्गत पारित नहीं हुई है इसलिए अलीपुर के अवरिक न्यायाधीश (सबआर्डिनट जज) को डिग्री के निष्पादन का अधिकार नहीं है।

इस मामले के लिये उपयुक्त रूलिंग आई० एल० आर० २२ मद्रास ६८ है। पूर्ण न्यायासन के समक्ष ऐसा ही मामला सुनवाई में था और उसमें निर्णय हुआ था कि अपील के अधिक्षेत्र का अर्थ विस्तृत होता है और इसमें पुनरीक्षण की सुनवाई और निर्णय का अधिकार भी संमिलित है।

अतः नीचे के न्यायालयों का निष्कर्ष ठीक था। इस न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में पारित डिग्री के निष्पादन का अधिकार विद्वान् मुंसिफ को है।

अपील असफल होती है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १६६

मुख्य न्यायाधिपति मूथम और एस० पी० श्रीवास्तव न्यायमूर्ति

एस० सी० ए० सं० ६०।१९५७— ४ मार्च १९५८

उत्तर प्रदेश राज्य तथा अन्य— अपीलकर्तागण

वि०

मुहम्मद इब्राहीम — उत्तरवादी

भारतीय संविधान, अनुच्छेद १३२ और १३३— पुलिस अधिनियम धारा ७ - पुलिस विनियम (पुलिस रेगुलेशस) ४८९ से ४९ - पुलिस विनियम के अंतर्गत दी हुई प्रक्रिया (प्रोसीजर) का पालन आवश्यक है किंतु अनुच्छेद १३२ और १३३ के प्रमाणपत्र देने के लिये उसमें औचित्य नहीं है।

मुख्य न्यायाधिपति मूथम—

यह सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति के लिये प्रार्थनापत्र है। इस न्यायालय ने २ अप्रैल १९५७ को एक आदेश पारित किया था उसी से असंतुष्ट होकर उ० प्र० सरकार सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करना चाहती है।

उत्तरवादी पुलिस विभाग में थानेदार था। उसके विरुद्ध दुर्व्यवहार और कर्तव्यच्युत होने के संबंध में कई आरोप लगे थे। उसकी जाँच पुलिस के अधीक्षक ने की कि ५ आरोप में से चार तो पूर्णरूपेण प्रमाणित हैं और एक आंशिक प्रमाणित है। चार आरोपों के संबंध में पुलिस अधीक्षक के निष्कर्ष को पुलिस उप महानिरीक्षक (डेप्यूटी इंसपेक्टर जनरल आफ पुलिस) ने मान लिया और उत्तरवादी को पदच्युत कर दिया।

इस आदेश के विरुद्ध उत्तरवादी की पुलिस महानिरीक्षक के यहाँ अपील भी उत्सर्जित कर दी गई। तब उत्तरवादी ने राज्य सरकार के यहाँ इस आदेश के पुनरीक्षण के लिये प्रार्थनापत्र दिया किंतु कोई परिणाम न निकला।

इस न्यायालय ने कहा कि यों तो साधारणतया पुलिस के अनुशासन के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया जाता पर लेख (रिट) जारी करने का निदेश किया गया जिसके द्वारा पुलिस महानिरीक्षक का आदेश अभिखंडित कर दिया गया। यही आदेश इस प्रार्थनापत्र का विषय है।

प्रार्थियों की ओर से कहा गया कि विभागीय जाँच पूर्ण रूपेण विभागीय होती है और न्यायाधिकरण को अधिकार है कि जिस किसी पर वह अपना निष्कर्ष आधारित करना चाहे कर सकता है और इसमें सुना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्ष्य (हीयर से इविडेंस) और वह विलेखीय साक्ष्य भी आ सकता है जिसकी वास्तविकता का स्थिरीकरण नहीं हुआ है। इसके समर्थन में १९१५ ए० सी० १२०, ए० आई० आर० १९५४ इलाहाबाद ६२६ का प्रमाण दिया गया।

उत्तरवादी की पदच्युति का आदेश और अंततोगत्वा उसका स्थिरीकरण सब पुलिस अधिनियम की धारा ७ के अंतर्गत हुआ। पुलिस अधिनियम की धारा ७ में है कि इसकी प्रक्रिया के संबंध में राज्य सरकार द्वारा समय समय पर बनाए हुए नियमों का पालन करना चाहिए। और इसमें संदेह नहीं है कि उत्तर प्रदेश पुलिस विनियम (उत्तर प्रदेश पुलिस रेगुलेशंस) उसी धारा के अंतर्गत विभागीय अन्वीक्षा (ट्रायल) के लिये बनाए गए हैं। हम सोचते हैं कि धारा ७ के अनुसार जो दंड देने का अधिकार है वह विभागीय जाँच के समय इन नियमों के उपबंधों के पालन करने पर निर्भर करता है।

हमारा निष्कर्ष है कि ये नियम इस बात को पूर्णतया स्पष्ट करते हैं कि सुना साक्ष्य (हीयर से एविडेंस) अप्रतिग्राह्य (इनऐडमिसिबुल) है। वे विलेख जो लोक अभिलेख (पब्लिक रिकार्डस) की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ हैं या औपचारिक प्रकृति के हैं या जो स्वीकार कर लिए गए हैं उनको छोड़कर और सभी को यदि प्रदर्श (एक्जिबिट) बनाने का विचार हो तो उनका प्रमाणित होना आवश्यक है।

प्रश्नगत आदेश में इस न्यायालय का कहना था कि उत्तरवादी के वे सब कार्य जिनका किया जाना न्यायाधिकरण ने सत्य माना था वह निर्णय सब अप्रतिग्राह्य साक्ष्य पर अवलंबित था और इसीलिए वह निष्कर्ष मान्य नहीं हो सकता था।

पुलिस विनियम के अंतर्गत विभागीय जाँच के समय प्रक्रिया के पालन करने का प्रश्न यों तो महत्वपूर्ण है किंतु हमें इसकी विधिक स्थिति के बारे में ऐसा कोई संदेह नहीं है जिसके कारण संविधान के अनुच्छेद १३२ या १३४ के अंतर्गत इसे न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र देने में औचित्य हो। इसलिए प्रार्थनापत्र परिव्यय (कास्ट्स) के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

—

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्या० १६७

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

आपराधिक पुनरीक्षण सं० ३४६।१९५८-जून ३ १९५८

दीपनारायण तथा अन्य— (प्रार्थीगण)

वि०

राज्य–द्वारा चिंतामणि पांडेय— विपक्षी

इलाहाबाद के अतिरिक्त जिलाधीश के आदेश दिनांक २१-१-१९५८ के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण

दंड प्रक्रिया संहिता (क्रिमिनल प्रोसीजर कोड) १८९८ धारा ३४४—अभियुक्त साक्षियों के परीक्षण के लिये मामले को यदि स्थगित कराना चाहता हो तो मजिस्ट्रेट परिवादी (कंप्लेनेंट) को परिव्यय (कास्ट्स) दिला सकता है।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव

कोई चिंतामणि पांडेय दीपनारायण तथा अन्य अभियुक्तों का अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धा० ३२५, ३२३ (धारा ३४ के साथ पठित) के अंतर्गत कर रहा था। अभियोजन (प्रासिक्यूशन) की ओर से साक्ष्य दिया गया और अपनी बचत में अभियुक्तगण साक्ष्य दे रहे थे। अभियुक्तों की बचत में साक्ष्य देने के लिये कई बार मामला स्थगित हुआ था और ९ नवंबर १९५७ को उन्हें अंतिम बार बतला दिया गया कि अब मुकदमे की सुनवाई स्थगित नहीं की जायगी। सुनवाई की दूसरी तिथि २० नवंबर पड़ी किंतु उस दिन इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामले को नहीं लिया गया। और २६ नवंबर निश्चित हुआ। उस दिन केवल एक साक्षी ने बचत (डिफेंस) में साक्ष्य दिया और अन्य साक्षियों के परीक्षण के लिये एक प्रार्थनापत्र दिया गया। प्रार्थनापत्र के अनुसार यह १० दिसंबर के लिये स्थगित कर दिया गया किंतु इस बीच भी बचत के साक्षियों को बुलाने के लिये कोई कार्यवाही नहीं की गई और जब १० दिसंबर को मुकदमे की पुकार हुई तो अभियुक्त ने पुनः स्थगित करने का प्रार्थनापत्र दिया।

विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस पर लिखा कि अभियुक्तों को अपनी बचत में साक्षियों के परीक्षण करने का अवसर कई बार दिया गया किंतु उस तिथि को एक भी साक्षी उपस्थित कराने के लिये कोई भी कार्यवाही नहीं की गई। फिर भी मजिस्ट्रेट ने उन्हें एक अवसर इस शर्त पर दिया कि वे लोग परिव्यय (कास्ट्स) का २५) परिवादी (कंप्लेनेंट) को दें।

इस आदेश के विरुद्ध अभियुक्तों ने अतिरिक्त जिलाधीश के यहाँ पुनरीक्षण निवेशित किया किंतु उन्होंने उस आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। इसलिए उन्होंने इस न्यायालय में पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट का आदेश निराकृत कर दिया जाय और उन्हें बिना २५) परिव्यय दिए हुए अपनी बचत के साक्षियों को उपस्थित करने का अवसर प्रदान किया जाय।

परिवादी (कंप्लेनेंट) की ओर से संबंधित आपराधिक प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र दं० प्र० संहिता की धारा ५६१ ए० के अंतर्गत दिया गया है कि इस मुकदमे के निर्णय में व्यर्थ ही देर हो रही है इसलिए पुनरीक्षण का निर्णय चाहे जिस प्रकार का हो शीघ्र किया जाय।

इसमें दो प्रश्न पैदा होते हैं:—

१—परिव्यय (कास्ट्स) दिलाने का अधिकार क्या मजिस्ट्रेट को था?

२—मुकदमे की परिस्थिति विशेष को देखते हुए परिव्यय दिलानेवाले आदेश में क्या औचित्य है?

मुकदमें को स्थगित करने के लिये प्रार्थनापत्र और उसकी स्वीकृति दं० प्र० सं० की केवल धारा ३४४ के अंतर्गत ही दी जा सकती है। इस धारा के उपवाक्य (१ ए०) में हैं उपयुक्त कारण रहने पर मजिस्ट्रेट मुकदमें की सुनवाई समय समय पर स्थगित कर सकता है और यदि चाहे तो इसके लिये प्रतिबंध भी लगा सकता है। इसलिए अभियुक्तों ने यदि स्थगित करने का प्रार्थनापत्र दिया तो उसे मजिस्ट्रेट को शर्त के साथ स्वीकार करने में कोई रुकावट नहीं है जिसमें परिव्यय (कास्ट्स) का लगाना भी संमिलित है।

इस विषय पर कुछ निर्णय हुए हैं (ए० आई० आर० १६५२ नागपुर १ और ए० आई० आर० १६५७ कलकत्ता ६८३) जिसमें कहा गया है कि यों तो परिव्यय अभियुक्तों को दिलाया जा सकता है किंतु स्वतः अभियुक्तों को परिव्यय (कास्ट्स) देने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।

किंतु उपर्युक्त मुकदमों की परिस्थितियाँ वर्तमान मामले से भिन्न थीं। उन मुकदमों में जब स्थगित करने के लिये अभियुक्तों की ओर से प्रार्थनापत्र दिया गया था तो उस समय अभियुक्त उपस्थित नहीं थे इसीलिए उन मुकदमों में निर्णय हुआ था कि जब अभियुक्तों की अनुपस्थिति में मुकदमें की सुनवाई नहीं हो सकती तो किसी भी रूप में मुकदमा स्थगित ही होता अस्तु अभियुक्तों को बाध्य करने का प्रश्न नहीं उठता कि वे परिवादी (कंप्लेनेंट) को परिव्यय (कास्ट्स) दें।

इस मामले में स्थगित करने के लिये जब प्रार्थनापत्र दिया गया तो अभियुक्त उपस्थित थे और चाहते थे अपने साक्षियों के परीक्षण के लिये इसे स्थगित किया जाय। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट स्थगित करने के लिये बाध्य नहीं था और अभियुक्त यदि चाहते थे कि उन्हें अवसर मिले तो मजिस्ट्रेट को यह अधिकार था कि वह जैसा उचित समझे शर्त लगावे। अतः मजिस्ट्रेट को परिव्यय (कास्ट्स) लगाने का अधिकार था।

जब १० दिसंबर के लिये मामला स्थगित हुआ था तो अभियुक्तों ने इस बात के लिये शपथपत्र निवेशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है कि हमने विधा शुल्क (प्रोसेस फी) दिया है किंतु अभिलेख पर इसका कोई प्रमाण नहीं है।

परिस्थितियों को देखते हुए २५) परिव्यय (कास्ट्स) बहुत अधिक नहीं है।

विद्वान् मजिस्ट्रेट का आदेश ठीक है और उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

पुनरीक्षण अस्वीकार किया जाता है फिर भी अभियुक्तगण यदि अभी परिव्यय दे दें तो मजिस्ट्रेट साक्षियों के बुलाने की अनुमति देंगे और यदि साक्षी उपस्थित होते हैं तो उनका परीक्षण भी करेंगे।

मजिस्ट्रेट के पास अभिलेख आगे की कार्यवाही के लिये तुरत भेज दिए जाँय।

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उ० न्या० १६६

लखनऊ न्यायासन

बी० मुकर्जी और एन० मुल्ला न्यायमूर्तिगण

आपराधिक पुनरीक्षण सं० २४।१९५८—१ मई १९५८।

उत्तर प्रदेश राज्य — प्रार्थी

वि०

सत्यनारायण तथा अन्य — विपक्षी गण

लखनऊ के व्यवहार तथा सत्र न्यायाधीश श्री ए० सी० बंसल के आदेश दिनांक १० जनवरी १९५८ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र

अपराधिक विधि संशोधन अधिनियम (क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट) १९५२ धारा ६ (ए) सरकार का विज्ञप्ति द्वारा व्यवहार तथा सत्र न्यायाधीश को एक विशेष मामले की अन्वीक्षा (ट्रायल) के लिये नियुक्त करना वैध नहीं है।

न्यायमूर्ति मुकर्जी —

श्री ए० सी० बंसल व्यवहार तथा सत्र न्यायाधीश आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम (क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट) १९५२ के अंतर्गत विशेष न्यायाधीश नियुक्त किए गए थे। इसी नियुक्ति संबंधी श्री बंसल के आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

राज्य सरकार ने दो विज्ञप्तियाँ जारी की थीं। सरकार की पहली विज्ञप्ति द्वारा बंसल को लखनऊ के बंदीगृह से भगे हुए मामले (सं० ५।५७ राज्य वि० अब्दुल रहमान तथा १९ अन्य) की अन्वीक्षा करने के लिये विशेष न्यायाधीश नियुक्त किया गया। यह मुकदमा विभिन्न अधिनियमों की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत था।

दूसरी विज्ञप्ति द्वारा उन्हें निदेश किया गया कि वे इसकी अन्वीक्षा (ट्रायल) 'माडल बंदीगृह' लखनऊ के भीतर करें।

श्री बंसल के समक्ष कुछ बंदियों ने आपत्ति उठाई कि दूसरी विज्ञप्ति सरकार के शक्ति परस्तात् (अल्ट्रावारस) है क्योंकि सरकार को यह अधिकार नहीं था कि वह उपर्युक्त मुकदमे की सुनवाई करने के संबंध में निदेश करती कि श्री बंसल उसकी सुनवाई लखनऊ के एक बंदीगृह के भीतर करें। बंदियों का कहना था कि बंदीगृह के भीतर मुकदमे की सुनवाई होने में उन्हें बहुत हानि है क्योंकि कोई भी बड़ा वकील उनकी ओर से होकर बंदीगृह के भीतर जाना चाहेगा तथा इस संबंध में उन्होंने कहा कि और भी अनेक कठिनाइयाँ हैं।

इस प्रश्न पर विद्वान् न्यायाधीश ने विचार किया और अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सरकार की विज्ञप्ति दं० प्र० संहिता की धारा ९ (२) के अंतर्गत दिए हुए अधिकार से बाहर है और इसकी प्रकृति विभेदकारी है तथा संविधान के अनुच्छेद १४ के अधिकार के विरुद्ध पड़ती है। विद्वान् न्यायाधीश ने कहा कि बंदीगृह में अन्वीक्षा होने से बंदियों को बहुत ही कठिनाई है। अंत में उनका निष्कर्ष था कि प्रश्नगत् विज्ञप्ति विधि विरुद्ध तथा शक्ति परस्तात् (अल्ट्रावारस) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस आदेश से असंतुष्ट होकर राज्य सरकार ने इस न्यायालय में पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया है। सरकार की ओर से कहना है कि राज्य सरकार को दं० प्र० संहिता की धारा ६ (२) के अंतर्गत इस प्रकार की विज्ञप्ति जारी करने का अधिकार है, इससे कोई विभेद करण नहीं होता और बंदीगृह में सुनवाई होने से अभियुक्तों को कोई हानि नहीं है। सरकार के वकील का कहना है कि किसी अभियुक्त का यह मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट) नहीं है कि उसकी अन्वीक्षा किसी स्थान विशेष पर ही हो। किंतु यह बात अभियुक्तों ने नहीं कही है। अभियुक्तों का कहना केवल यही है कि एक ही परिस्थिति में जिस प्रकार अन्य अभियुक्तों की अन्वीक्षा होती है उससे भिन्न रूप में हमारी अन्वीक्षा (ट्रायल) नहीं होनी चाहिए।

इस प्रसंग में यह बात महत्वपूर्ण है कि जब हम लोगों ने विचार करके देख लिया है कि श्री बंसल की विशेष न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति अवैध है तो जिस मामले की सुनवाई के लिये वे विशेष न्यायाधीश नियुक्त हैं उसकी सुनवाई कहाँ पर हो, इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है।

श्री बंसल की नियुक्ति जैसा हमने देख लिया है आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा ६ (१) के अंतर्गत हुई है। उक्त उपबंध का अभिप्राय है कि यदि आवश्यक हो तो विशेष न्यायाधीश की नियुक्ति ऐसे "क्षेत्र या क्षेत्रों" के लिये की जा सकती है जो विज्ञप्ति में दिए जायँगे। अर्थात् विशेष न्यायाधीश की नियुक्ति उपबंध के अंतर्गत विशिष्ट "क्षेत्र या क्षेत्रों" के लिये ही की जा सकती है; यह नियुक्ति किसी विशेष मुकदमे की सुनवाई के लिये या मुकदमों के किसी समूह की सुनवाई के लिये नहीं की जा सकती।

प्रश्नगत् विज्ञप्ति द्वारा श्री बंसल की नियुक्ति किसी क्षेत्र के लिये नहीं हुई थी। उनकी नियुक्ति मुकदमा सं० ५।५७ राज्य वि० अब्दुल रहमान तथा १९ अन्य लोगों की ही सुनवाई के लिये हुई थी। यह मुकदमा किसी "क्षेत्र या क्षेत्रों" से अपना तनिक भी संबंध नहीं दिखलाता है और ऐसे संबंध की चर्चा विज्ञप्ति में नहीं है।

सरकार के विद्वान् वकील ने इस कमी को माना है। यह कमी हमारे विचार से विज्ञप्ति के केवल स्वरूप (फार्म) की कमी नहीं है वरन् यह न्यायालय के अधिक्षेत्र को ही समाप्त कर देती है कारण कि विशेष न्यायाधीश की नियुक्ति सिवा "क्षेत्र या क्षेत्रों" के संबंध में किसी अन्य बात के लिये हो ही नहीं सकती।

पहली विज्ञप्ति द्वारा श्री बंसल की विशेष न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति अवैध है इसलिए श्री बंसल मुकदमा सं० ५।५७ की सुनवाई विशेष न्यायाधीश के पद से नहीं कर सकते। इस प्रकार जब उनकी नियुक्ति ही अवैध है तो हमारा निष्कर्ष है कि दूसरी विज्ञप्ति द्वारा जो उन्हें बंदीगृह में सुनवाई करने के लिये कहा गया था वह प्रभावशून्य है।

बंदियों के विद्वान् वकील ने विज्ञप्ति के 'वीरस' पर निर्णय देने का अनुरोध किया है किंतु यह सिद्धांत निश्चित हो चुका है कि न्यायालय किसी अधिनियम या विज्ञप्ति के 'वीरस' पर निर्णय तब तक नहीं देती जब तक कि वह, जो पक्ष सहायता (रिलीफ) चाहता है उसको प्रदान करने के लिये अत्यंत आवश्यक न हो। यहाँ केवल यही सहायता माँगी गई है कि सुनवाई बंदीगृह में न हो। हमारे विचार से उस पक्ष को यह सहायता मिल गई है। कारण कि जिस व्यक्ति को न्यायाधीश के पद से बंदीगृह में सुनवाई करनी थी वह अब हमारे उपर्युक्त निर्णय के अनुसार नहीं कर सकता।

बहस सुनने के बाद चूँकि हमारा विचार ऐसा निर्णय देने का है जो उन अभियुक्तों के विरुद्ध नहीं है जिनकी ओर से इसमें कोई वकील नहीं था या जो अभियुक्त स्वतः इसकी सुनवाई के समय उपस्थित नहीं थे इसलिए हम इनकी आवश्यकता नहीं समझते कि अभियुक्तों को बुलाया जाय और उनकी बहस सुनी जाय।

उपर्युक्त कारणों से हम यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र उत्सर्जित करते हैं और निदेश करते हैं कि श्री बंसल मुकदमा सं० ५।५७, राज्य वि० अब्दुल रहमान तथा अन्य जो विभिन्न अधिनियमों की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत है उसकी सुनवाई पहली विज्ञप्ति १३-१२-१९५७ के आधार पर नहीं करेंगे।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उ० न्या० १७१

न्यायमूर्ति जे० के० टंडन

सोनपाल गुप्त — प्रार्थी

वि०

आगरा विश्वविद्यालय तथा अन्य— विपक्षीगण

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० ३१०४।१९५७ दिनांक १-४-१९५८

भारतीय संविधान अनुच्छेद २२६—स्वाभाविक न्याय—प्रार्थी ने परीक्षा में अवैध साधनों का प्रयोग किया—उप कुलपति ने एकपक्षीय प्रशासकीय आदेश द्वारा उसे परीक्षा से रोक दिया—यदि उसके विरुद्ध समस्त बातों से बिना उसे अवगत कराए बयान देने को कहा गया तो यह स्वाभाविक न्याय का पालन करना नहीं हुआ।

आदेश—

प्रार्थी आगरा विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी था। वह आगरा विश्वविद्यालय से बी० ए० भाग १ परीक्षा १९५३-५४ में उत्तीर्ण हुआ। भाग २ की परीक्षा के लिये उसने १९५६-५७ में अध्ययन आरंभ किया। अप्रैल १९५७ में वह बी० ए० की अंतिम परीक्षा के लिये बैठा। उसकी परीक्षा सभी प्रश्न पत्रों में हुई किंतु उसका परीक्षाफल रोक लिया गया और जुलाई १९५७ में विश्वविद्यालय से उसे सूचना मिली कि उसकी परीक्षा निरसित (कैंसेल) कर दी गई है और उसे विश्वविद्यालय की १९५८ की परीक्षा से भी रोक दिया गया है क्योंकि १९५७ की परीक्षा में उसने अवैध साधनों का प्रयोग किया था।

तत्संबंधी तथ्य इस प्रकार हैं कि १९५७ की परीक्षा में वह चिट लेकर नकल करता हुआ वीक्षक (इन विजिलेटर) द्वारा पकड़ा गया और जब वीक्षक ने उसे बयान देने को कहा तो उसने इनकार कर दिया। वीक्षक (इनविजिलेटर) ने उस चिट के साथ विश्वविद्यालय को इसका प्रतिवेदन दिया और सामान्य क्रम में विश्वविद्यालय ने परीक्षक से इस मामले की जाँच की। परीक्षक ने भी प्रतिवेदन दिया कुछ प्रश्नों के उत्तर नकल किए हुए प्रतीत होते हैं। परीक्षक और वीक्षक के प्रतिवेदन अन्य कागजपत्रों के साथ उपकुलपति के समक्ष रखे गए और उन्होंने निर्णय दिया कि प्रार्थी के भाग २ की परीक्षा का फल निरसित (कैंसेल) कर दिया जाय और उसे विश्वविद्यालय की १९५८ की परीक्षा से रोक दिया जाय।

वीक्षक के समक्ष बयान देने से इनकार करनेवाली बात को प्रार्थी ने स्वीकार नहीं किया है किंतु इस संबंध में विपक्षीगण की ओर से शपथपत्र निवेशित किया गया है और इसलिए हम मानते हैं कि प्रार्थी ने बयान देने से इनकार कर दिया।

प्रार्थी का कहना है कि उपकुलपति ने बिना उसकी बात सुने उसके विरुद्ध जो आदेश पारित किया है वह स्वाभाविक न्याय के विरुद्ध है इसलिए उत्प्रेषण-लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) जारी करके उस आदेश को अभिखंडित किया जाय।

विश्वविद्यालय ने इस बात को नहीं माना है कि प्रार्थी को अपनी बात कहने का उचित अवसर नहीं दिया गया था। विश्वविद्यालय की ओर से कहा गया कि परीक्षा के सहायक अधीक्षक (असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट आफ एक्जामिनेशंस) ने प्रार्थी से कहा था कि वह अपना बयान दे किंतु उसने इनकार कर दिया इसलिए प्रार्थी को जो अवसर प्रदान किया गया था उसने उसका लाभ स्वयं ही नहीं उठाया।

प्रार्थी के विरुद्ध उपकुलपति ने जो आदेश दिया था वह यों तो प्रशासकीय आदेश था किंतु प्रार्थी का कहना है कि प्रशासकीय आदेश का परिणाम यदि परीक्षार्थी के प्रति बहुत ही बुरा है और इसके प्रभाव से जब प्रार्थी का भावी जीवन ही नष्ट कर हो रहा है तो प्रशासकीय आदेश देने के पहले उप कुलपति के लिए यह अनिवार्य था कि स्वाभाविक न्याय के निमित्त प्रार्थी को अपनी बात कहने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करते;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय की ओर से इसका उत्तर यही दिया जाता है कि प्रार्थी को उपयुक्त अवसर दिया गया था और यदि उसने इसका लाभ नहीं उठाया तो इससे स्वाभाविक न्याय में कोई बाधा नहीं पड़ी।

परीक्षा के सहायक अधीक्षक ने प्रार्थी को अपनी बात कहने का अवसर दिया था, यह मैं मानता हूँ किंतु विश्वविद्यालय की ओर से जो शपथपत्र निवेशित किया गया है उससे यह पता नहीं चलता कि परीक्षा के सहायक अधीक्षक ने प्रार्थी का ध्यान उसके लिखे हुए उत्तर की ओर और चिट की ओर दिलाया था कि नहीं या अन्य तथ्य को उसके समक्ष रखा था कि नहीं। इस प्रकार प्रार्थी से जो व्याख्या माँगी गई थी वह स्पष्ट नहीं है कि किस प्रकृति की थी। उससे केवल इतना ही पता चलता है कि उससे बयान देने को कहा गया था पर उसने इनकार कर दिया।

परीक्षा के सहायक अधीक्षक ने अपना प्रतिवेदन दिया, परीक्षक ने अपना प्रतिवेदन दिया और इन्हीं प्रतिवेदनों के आधार पर उप कुलपति ने प्रश्नगत् आदेश पारित किया था किंतु इसका कोई प्रमाण नहीं है कि बाद में होनेवाली इन सब कार्यवाहियों से प्रार्थी अवगत था।

इसमें संदेह नहीं कि उपकुलपति प्रश्नगत् आदेश इस तथ्य के आधार पर पारित कर सकते थे कि प्रार्थी ने बयान देने से इनकार कर दिया—पर इसमें दो कमी है। पहली यह कि पता नहीं चलता कि उससे जो व्याख्या माँगी गई थी उसकी प्रकृति क्या थी और दूसरी यह कि किसी को अपनी बात कहने का उपयुक्त अवसर प्रदान करना तभी कहा जाता है जब कि उसके विरुद्ध सभी बातें उसके समक्ष स्पष्ट रूप से रख दी गई हों। परीक्षक का प्रतिवेदन और परीक्षा के सहायक अधीक्षक के प्रतिवेदन से प्रार्थी कभी अवगत हुआ ही नहीं।

परीक्षा के सहायक अधीक्षक ने प्रार्थी को जो अवसर प्रदान किया था वह स्वाभाविक न्याय के लिये पर्याप्त नहीं है। ऐसी परिस्थिति में उपकुलपति का प्रश्नगत् आदेश एक-पक्षीय (एक्सपार्टी) आदेश के समान था और चूँकि उससे स्वाभाविक न्याय नहीं हुआ इसलिए वह आदेश अक्षुण्ण नहीं रह सकता।

अतः उपर्युक्त निष्कर्ष के आधार पर उपकुलपति का प्रश्नगत् आदेश अभिखंडित किया जाता है। परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० १७२

न्यायमूर्ति एस० एस० धावन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० ३३५२।१९५६

२५ अगस्त १९५८

राम सिंह तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

अतिरिक्त आयुक्त (अडिशनल कमिश्नर) मेरठ तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १९५०, धा० १२ और १३ सहायक (असिस्टेंट) कलक्टर द्वारा पारित किसी भी आदेश की अपील हो सकती है।

न्यायमूर्ति धावन—

सहायक कलक्टर (असिस्टेंट कलक्टर) ने प्रार्थियों को भूमिधरी सनद जारी किया था। बाद में जब इस प्रश्न पर विवाद उठा तो सहायक कलक्टर ने आदेश दिया कि सनद ठीक रूप से जारी की गई है। इस आदेश के विरुद्ध अपील होने पर अतिरिक्त आयुक्त ने भूमिधरी सनद निरसित (कैंसल) कर दिया और सहायक कलक्टर के आदेश को निराकृत किया। राजस्व मंडल में अपील की गई पर वह सरसरी तौर पर उत्सर्जित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी गई। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त के इसी आदेश को अभिखंडित करने के लिये भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

प्रार्थियों का कहना था कि हम कुछ खेतों के 'सीर' के कृषक हैं और लगान का १० गुना जमा करने के बाद हम लोगों को उन खेतों पर भूमिधरी अधिकार प्राप्त हुआ।

उत्तरवादियों ने उत्तर प्रदेश खेतिहर काश्तकार (विशेषाधिकार अवाप्ति) अधिनियम (यू० पी० ऐग्रिकल्चरल टेनेंट्स (अक्वीजिसन आफ प्रिविलेजेज) ऐक्ट १९४९ की धारा १२ के अंतर्गत सहायक कलक्टर के यहाँ उपर्युक्त भूमिधरी सनद को इस आधार पर निरसित (कैंसेल) करने का प्रार्थनापत्र दिया कि वह भूमि वास्तव में बाग है और धोखा देकर सनद प्राप्त की गई है।

सहायक कलक्टर ने जाँच करने के लिये एक आयोग (कमीशन) जारी किया और उसके प्रतिवेदन के आधार पर निर्णय दिया कि प्रश्नगत् भूमि बाग नहीं है तथा उसके लिये भूमिधरी सनद का जारी किया जाना ठीक है।

इस आदेश के विरुद्ध जब अतिरिक्त आयुक्त (अडिशनल कमिश्नर) के यहाँ अपील की गई तो उन्होंने निर्णय दिया कि प्रश्नगत् भूमि बाग है और इसके संबंध में सहायक कलक्टर द्वारा भूमिधरी सनद गलत जारी की गई है। उन्होंने सहायक कलक्टर का आदेश निराकृत किया और भूमिधरी सनद जो प्रार्थियों को दी गई थी उसे निरसित किया।

इसके विरुद्ध राजस्व मंडल में अपील की गई किंतु वह सरसरी तौर पर उत्सर्जित हुई। अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के अभिखंडन के लिये यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

प्रार्थियों के विद्वान् वकील की ओर से केवल इसी एक बात पर जोर दिया गया है कि धारा १२ के अंतर्गत सहायक कलक्टर के सनद को निरसित करने से इनकार करनेवाले आदेश के विरुद्ध अपील निवेशित नहीं की जा सकती इसलिए अपील समर्थ नहीं थी तथा इसीलिए विद्वान् आयुक्त को प्रश्नगत् आदेश पारित करने का अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) नहीं था।

ऐसा कथन मान्य नहीं हो सकता क्योंकि अधिनियम की धारा १३ (१) इन शब्दों में है :—

"१३ (१) धारा ६ की उपधारा ६ अथवा धारा १२ के अंतर्गत सहायक कलक्टर द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध आयुक्त के यहाँ अपील होगी ···।"

उपर्युक्त धारा की भाषा से यह स्पष्ट है कि सहायक कलक्टर के धारा १२ के अंतर्गत दिए गए आदेश के विरुद्ध अपील हो सकती है।

प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि इसका तात्पर्य यह होता है कि जब सहायक कलक्टर सनद को निरसित (कैंसेल) करने का आदेश दें केवल तभी इस आदेश के विरुद्ध अपील निवेशित की जा सकती है, अन्यथा नहीं।

ऐसी बात नहीं है। यदि उपर्युक्त धारा का यही अभिप्राय होता तो उसमें के शब्द इस प्रकार होते :—

"धारा १२ के अंतर्गत सहायक कलक्टर के धारा ६ के अंतर्गत दी हुई घोषणा को निरसित करने या संशोधन करने के आदेश के विरुद्ध अपील···।" किंतु अपील का अधिकार इस प्रकार सीमित नहीं किया गया है।

चूँकि सहायक कलक्टर का अधिनियम की धारा १२ के अंतर्गत पारित आदेश धारा १३ (१) के अंतर्गत अपील करने योग्य होता है इसलिए आयुक्त को अपील की सुनवाई और तत्व पर इसके निर्वर्तन का अधिकार था।

प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उ० न्या० १७४

प्रकीर्णक (मिसलेनियस) वाद सं० ३५६।१६५८

१८ नवंबर १६५८

श्री कामेश्वरनाथ वर्मा — प्रार्थी

वि०

वैधिकवर्ग परिषद्, उ० प्र०— विपक्षी

उ० प्र० वैधिक वर्ग परिषद् (बार कौंसिल्स) अधिनियम धारा ६ नि० १, परंतुक (प्राविजो) ८, 'सद्भाव से व्यवसाय किया हो' (बोनाफाइडी प्रैक्टाइज) का तात्पर्य। विधि के स्नातक (ग्रेजुएट) ने यदि जन अभियोजक (पब्लिक प्रासिक्यूटर) का काम किया है, तो उसने परंतुक ८, के अभिप्राय के अनुसार 'सद्भाव से व्यवसाय' नहीं किया।

न्यायमूर्ति राय

श्री कामेश्वरनाथ वर्मा के अधिवक्ता (ऐडवोकेट) के रूप में प्रवेश पाने के संबंध में उ० प्र० वैधिक वर्ग परिषद् (बार कौंसिल) ने आपत्ति किया है जो उक्त अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत इस न्यायासन के समक्ष सुनवाई के लिये आया है।

तथ्य इस प्रकार है। श्री कामेश्वरनाथ वर्मा एल० एल० बी० परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद उ० प्र० सरकार के अंतर्गत जन अभियोजक (पब्लिक प्रासिक्यूटर) के पद पर नियुक्त हुए। उनका कहना है कि हमने ६ वर्ष तक सहायक जन अभियोजक का काम किया है इसलिए वैधिक वर्ग परिषद् द्वारा उक्त अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गत बनाए गए नियमों के नियम १ के परंतुक ८ के अंतर्गत हमें अधिवक्ता के रूप में नामांकित होने का अधिकार है।

परंतुक ८ में है कि उसे प्रमाणित करना चाहिए कि उसने इलाहाबाद उच्चन्यायालय के अंतर्गत किसी एक या एक से अधिक न्यायालयों में सद्भावना से विधि व्यवसाय किया है जो तीन वर्ष से कम नहीं है। परंतुक ७ में है कि जो विधि का स्नातक नहीं है या उसने जैसा नियम में है एक वर्ष का प्रशिक्षण नहीं लिया है किंतु जो अभिवक्ता (प्लीडर) के रूप में नामांकित है और जिसने विधि व्यवसाय किया है जो १५ वर्ष से कम नहीं है तो यदि जिला न्यायाधीश ने अभिस्तावित (रेकमेंड) किया है तो वह अधिवक्ता (ऐडवोकेट) के रूप में नामांकित किया जा सकता है।

परंतुक ८ का अभिप्राय है कि ऐसा व्यवसायी व्यक्ति विधिक व्यवसायी (लीगल प्रैक्टिशनर्स) अधिनियम के अंतर्गत अभिवक्ता (प्लीडर्स) के रूप में नामांकित हो और उसपर न्यायालय अनुशासन संबंधी नियंत्रण रखता हो। जन अभियोजक (पब्लिक प्रासिक्यूटर) की नियुक्ति दं० प्र० संहिता की धारा ४६२ के अंतर्गत होती है और जैसी परिभाषा संहिता की धारा ४ (आर०) में दी गई है उसके अनुसार वह अभिवक्ता (प्लीडर) में नहीं आता और न तो जन अभियोजक न्यायालय के अनुशासन संबंधी अधिक्षेत्र या नियंत्रण के अंतर्गत होता है।

जैसे किसी अधिवक्ता (ऐडवोकेट) के विरुद्ध कार्यवाही करने में उच्च न्यायालय के विवेक (डिस्क्रीशन) पर राज्य सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती उसी प्रकार जन अभियोजक के संबंध में राज्य सरकार के विवेक पर उच्च न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता। दूसरे, जन अभियोजक के लिये विधि का स्नातक होना भी आवश्यक नहीं है। अधिवक्ता को नामांकित होने के पहले जिस विधिक प्रशिक्षण (लीगल ट्रेनिंग) की आवश्यकता पड़ती है उस प्रकार के प्रशिक्षणकी आवश्यकता जन अभियोजक के लिये नहीं है।

केवल इसीलिए कि वह विधि का स्नातक है उसका जन अभियोजक का काम जो वह दं० प्र० संहिता की धारा ४६३ के अंतर्गत करता है हमारे विचार से वैधिक वर्ग परिषद् अधिनियम की धारा के अंतर्गत निर्मित नियम १ के परंतुक ८ के अभिप्राय के अनुसार "सद्भावना से व्यवसाय" (बोनाफाइडी प्रैक्टिस) के समान नहीं हो सकता।

वैधिक वर्ग परिषद् की आपत्ति मान्य होती है और प्रार्थनापत्र न्यायालय नियमावली के अध्याय २४ नियम ८ के अंतर्गत अस्वीकृत समझा जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १७५

मुकर्जी और वर्मा न्यायमूर्तिगण

आपराधिक प्रकीर्णक वाद सं० १८६२।१९५८

(१३ अक्टूबर १९५८)

श्रीमती प्रेम — प्रार्थी

वि०

जिलाधीश, मेरठ और राजपुर, देहरादून के राजकीय नारी भवन के प्रबंधक —उत्तरवादी।

अ—स्त्रियों और लड़कियों का अनैतिक व्यापारीय दमन अधिनियम (सप्रेशन आफ इम्मारल ट्रैफिक इन वीमेन ऐंड गर्ल्स ऐक्ट) १९५६—धारा १६ (१) की प्रकृति—मजिस्ट्रेट स्वतः पकड़ सकता है (दं० प्र० सं०, १८९८, धारा ६५)

ब—दं० प्र० सं० १८९८, धा० ५ (२)—प्रक्रिया (प्रोसीजर) के संबंध में १९५६ के उपर्युक्त अधिनियम में यदि कोई विशेष उपबंध नहीं है तो दं० प्र० संहिता के उपबंध लागू होंगे।

स—स्त्रियों और लड़कियों का अनैतिक व्यापारीय दमन अधिनियम धारा १७-मजिस्ट्रेट के जाँच करने के अधिकार में अंतरिम अभिरक्षा (कस्टडी) का भी अधिकार संमिलित है।

न्यायमूर्ति मुकर्जी—

श्रीमती प्रेम द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख (हेबियस कार्पस रिट) जारी करने की प्रार्थना की गई है।

प्रार्थी का कहना है कि मेरी आयु २४ वर्ष की है और मैं मेरठ शहर में रहकर नाचने गाने का काम करती हूँ। उसका कहना है कि २०-७-१९५८ को मेरठ की पुलिस ने मुझे पकड़ा और देहरादून के संरक्षणीय घर में भेज दिया। उसके कहने के अनुसार पुलिस ने केंद्रीय अधिनियम सं० १०४।१९५६ की धारा १६ और १७ के अंतर्गत यह कार्यवाही की किंतु उसका कहना है कि चूँकि मैं २४ वर्ष से उपर हूँ इसलिए उक्त उपबंधों के अंतर्गत नहीं आ सकती।

प्रार्थी का प्रमुख कथन है, कि उसका पकड़ा जाना अवैध है क्योंकि उक्त अधिनियम के तत्संबंधी उपबंधों द्वारा नियुक्त पुलिस विशेष द्वारा वह नहीं पकड़ी गई है वरन् वह साधारण पुलिस द्वारा पकड़ी गई है।

राज्य की ओर से प्रतिशपथपत्र (काउंटर अफिडविड) मजिस्ट्रेट द्वारा निवेशित किया गया है जिससे पता चलता है कि मजिस्ट्रेट ने २० जुलाई १९५८ को उसे स्वतः पकड़ा था। मजिस्ट्रेट को कोतवाली पुलिस द्वारा सूचना मिली कि शहर के कबाड़ी बाजार गली में कुछ लड़कियों को वेश्यावृत्ति के लिये रखा गया है। इस पर विद्वान मजिस्ट्रेट ने आदेश दिया कि चूँकि केंद्रीय अधिनियम १०४।१९५६ के अनुसार इस जिले के लिये अभी पुलिसविशेष की नियुक्ति नहीं हुई है अतः उक्त अधिनियम की धारा १६ के अंतर्गत दिए गए अधिकार का प्रयोग मैं स्वतः करूँगा।

इस आदेश के अनुसार मजिस्ट्रेट ने सहसाक्रमण किया और वहाँ के कई कुख्यात घरों से १० लड़कियों को पकड़ा जिसमें से वर्तमान प्रार्थी भी एक थी।

मजिस्ट्रेट ने प्रार्थी को अपनी बात कहने का अवसर दिया और सुनने के बाद आदेश दिया कि यों तो प्रार्थी का कहना है कि मुझसे वेश्यावृत्ति नहीं करवाई जाती और मेरी आयु २१ वर्ष से ऊपर है किंतु स्पष्टतः यह लड़की अवयस्क (माइनर) है और कुख्यात स्थान पर रहने से उसके संबंध में वेश्यावृत्ति की अभिधारणा होती है इसलिए यह लड़की डाक्टरी परीक्षा के लिये भेज दी जाय और जब तक डाक्टरी परीक्षा नहीं हो जाती तथा जाँच पूरी नहीं हो जाती तब तक के लिये संरक्षणीय घर में रखी जाय।

डाक्टर ने प्रतिवेदन दिया कि प्रार्थी लगभग १९ वर्ष की है और इसके साथ मैथुन किया गया है। इसके बाद मजिस्ट्रेट ने आगे की जाँच के लिये इसे देहरादून के संरक्षणीय घर में भेज दिया जहाँ वह इस समय रह रही है।

मजिस्ट्रेट के शपथपत्र से यह स्पष्ट है कि प्रार्थी स्वयं मजिस्ट्रेट द्वारा पकड़ी गई जब कि मजिस्ट्रेट के साथ कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलिस अधिकारी सहायता के लिये थे। यह भी स्पष्ट है कि जाँच होने तक प्रार्थी बंदिनी है। ये दोनों तथ्य सुसंस्थापित हैं।

प्रार्थी के विद्वान् वकील ने केवल दो आपत्तियाँ उठाई है:—

१—केवल पुलिस विशेष ही पकड़ सकती है कोई दूसरा अधिकारी नहीं।

२—जाँच होने की अवधि तक बंदी रखना गलत है।

धारा १६ (१) के अनुसार ऐसा व्यक्ति मजिस्ट्रेट के निदेश (डाइरेक्शन) से बंदी किया जा सकता है।

मेरा निर्णय यह है कि जिस मजिस्ट्रेट को अधिकार है कि ऐसे व्यक्ति को पकड़ने के लिये पुलिस विशेष को निदेश दे उसी मजिस्ट्रेट के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि स्वतः पकड़ने का अधिकार उसे नहीं है—जो अधिकार कि दं० प्र० संहिता की धारा ६५ द्वारा मजिस्ट्रेट को प्रदान किया गया है।

केंद्रीय अधिनियम १०४।१९५६ की धारा १६(१) के अंतर्गत पकड़ने के लियें मजिस्ट्रेट को अधिपत्र (वारंट) जारी करने का अधिकार है इसलिए दं० प्र० संहिता की धारा ६५ के अंतर्गत स्वयं पकड़ने का अधिकार उसे निश्चित रूप से है। यों तो अधिनियम १०४। १९५६ थोड़ा बहुत स्वतः पूर्ण अधिनियम है फिर भी प्रक्रिया (प्रोसीजर) के संबंध में जहाँ उस अधिनियम में स्पष्ट रूप से कुछ न दिया हुआ हो वहाँ दं० प्र० संहिता की धारा ५ (२) के अनुसार दं० प्र० संहिता के उपबंध लागू होंगे।

ऐसी स्थिति में दं० प्र० सं० की धारा ५ (२) लागू होती है और धारा ६५ के अंतर्गत मजिस्ट्रेट अपने पकड़नेवाले अधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार मजिस्ट्रेट द्वारा प्रार्थी का पकड़ा जाना वैध है।

दूसरी आपत्ति है कि जाँच की कार्यवाही समाप्त होने तक रोक रखना वैध नहीं है। इस विषय में उक्त अधिनियम के अंतर्गत अंतरिम अभिरक्षा (इंटरिम कस्टडी) का कोई उपबंध नहीं है फिर भी इस संबंध में यह बात महत्वपूर्ण है कि जहाँ किसी काम के करने का अधिकार दिया रहता है वहाँ उस अधिकार के अंतर्गत दूसरे वे अधिकार भी आ जाते हैं जिनका यदि प्रयोग न हो तो पहलेवाला प्रमुख कार्य संपन्न हो ही नहीं सकता।

'हैल्सबरीज लाज आफ इंगलैंड' भाग ३१ (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ५०१ परिच्छेद ६४२ में तथा 'क्रॉफर्ड स्टेट्यूटरी कांस्ट्रक्शंस' पृष्ठ २६७ पर यही बात कही गई है। १९५८ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) १०१ पृ० १०८ पर भी इसी बात का समर्थन है।

इस मामले में जाँच होने तक रोक रखना आवश्यक था क्योंकि इसी बीच साक्ष्य इकट्ठा किया जा सकता था और लड़की को उसी कुख्यात वातावरण में छोड़ देना उस अधिनियम के उपबंध के सर्वथा विरुद्ध होता। इस प्रकार उपर्युक्त सिद्धांत के आधार पर यदि मजिस्ट्रेट को जाँच करने का अधिकार दिया गया है तो उसमें आवश्यकतावश लड़की को जब तक जाँच समाप्त नहीं हो जाती तब तक के लिये रोक रखने का अधिकार संमिलित है।

हमारे विचार से प्रार्थी की अंतरिम अभिरक्षा (कस्टडी) भी वैध और उचित थी।

उपर्युक्त कारणों के आधार पर प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है किंतु परिस्थितियों को देखते हुए परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

अंत में आशा है कि मजिस्ट्रेट जाँच शीघ्र समाप्त करके शीघ्रातिशीघ्र प्रतिवेदन देंगे।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० ७६

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू

एस० ए० सं० २१०।१९५३—८ जनवरी १९५७

मुसम्मात सुघरा — प्रतिवादी-अपीलकर्ता

विरुद्ध

फकीर मुहम्मद — वादी-उत्तरवादी

कानपुर के व्यवहार (सिविल) अपील सं० ६१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५२ में दिए हुए निर्णय दिनांक २४–११–१९५२ के विरुद्ध द्वितीय अपील

मुसलमान विधि --विवाह विच्छेद (डाइवोर्स) तलाकउलबिद्दत—अप्रतिसंहार्यता (इरेवोकैबिलिटी) का तत्व—तलाक के संबंध में 'लीजिए' शब्द का प्रयोग विवाह विच्छेद का अप्रतिसंहार्य अभिप्राय व्यक्त करता है ।

न्यायमूर्ति गुर्टू—

अपीलकर्ता के पति ने दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के लिये एक वाद निवेशित किया था। उसी संबंध में पत्नी द्वारा यह द्वितीय अपील निवेशित की गई है।

पति का कहना है कि श्रीमती सुबरा उसकी विवाहिता पत्नी है और विवाह होने के बाद यह उसके साथ रहती थी। उसका कहना है कि कुछ महीने हुए उसकी पत्नी का पिता आया और एक समारोह का बहाना करके उसे लिवा ले गया और जब वह उसे बुलाने गया तो अपने पिता के प्रभाव में आकर आने से इनकार कर दिया।

प्रतिवादी (डिफेंस) में कहा गया है कि वादी ने अपनी पत्नी का तलाक दे दिया है और उसके साथ निर्दयता का व्यवहार करता था।

नीचे के न्यायालयों का निर्णय था कि वादी निर्दयता का व्यवहार नहीं करता था और तलाक देने की बात प्रमाणित नहीं हुई कारण कि उसने केवल दो बार तलाक देने की बात कही थी, तीन बार नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसके लिये दोनों न्यायालयों ने प्रतिवादी साक्षी सुलेमान के बयान पर निर्भर किया है। सुलेमान का बयान था:—

"बसवल अदालत कहा कि वादी ने कहा था कि मैं उसको तलाक देता हूँ लीजिए—उसको तलाक देता हूँ लीजिए"

इस बात से इनकार नहीं है कि यह 'तलाक उल बिद्दत' में आता है और यह तलाक केवल एक ही बार की अधिघोषणा (प्रोनाउंसमेंट) द्वारा दिया जा सकता है बशर्ते कि उससे विवाह विच्छेद का निश्चय स्पष्ट रूप से व्यक्त होता हो और वह "तहर" के बीच में हुआ हो। जैसे पति कह सकता है कि "मैं अप्रतिसंहार्य (इरेवोकेबुल) रूप से तलाक देता हूँ" इत्यादि। तात्पर्य है कि उसी अधिघोषणा में अप्रतिसंहार्यता का तत्व वर्तमान रहना चाहिए।

साक्ष्य से प्रतीत होता है कि उसकी पत्नी क्षय रोगों से पीड़ित थी और वह अपनी पत्नी से असंतुष्ट रहता था। ऐसी परिस्थिति में उसका कहना कि मैं तलाक देता हूँ लीजिए इस बात का द्योतक है कि वह 'लीजिए' शब्द द्वारा अप्रतिसंहार्य रूप से विवाहविच्छेद करना चाहता था। यही नहीं उसने दूसरी बार भी 'लीजिए' शब्द द्वारा अपने उपर्युक्त निश्चय की पुष्टि किया। उसका विचार यदि तलाक देने का न होता तो दूसरी बार वह 'लीजिए' शब्द न कहता वरन् इस पर पुनः विचार करता। नीचे के न्यायालय ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और तत्संबंधी साक्ष्य का गलत अर्थ लगाया। सुलेमान के प्रथम वाक्य का प्रभाव है कि अधिघोषणा (प्रोनाउंसमेंट) अप्रतिसंहार्य हो गई। ए० आई० आर० १९२९ पटना ८१ (पूर्णन्यायासन) में निर्णय हुआ था कि इस बात के प्रमाण का भार पति पर होता है कि जिस समय तलाक के संबंध में अधिघोषणा (प्रोनाउंसमेंट) की गई थी उस समय पत्नी 'तहर' की अवस्था में थी। पति ने यह प्रमाण नहीं दिया है। इस मामले में "तलाकउलबिद्दत" की शर्तों के पालन पर विचार नहीं हुआ है और न्यायालय ने 'लीजिए' शब्द के प्रभाव पर विचार नहीं किया है।

तद्नुसार अपील स्वीकार की जाती है नीचे के दोनों न्यायालयों की डिग्री निराकृत की जाती है और वादी का वाद उत्सर्जित किया जाता है। अपना अपना परिव्यय पक्षों पर रहेगा।

अपील स्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १७८

लखनऊ न्यायासन (बेंच)

मुल्ला और निगम न्यायमूर्तिगण आपराधिक प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० ४१७।१९५७—१२ अगस्त १९५८

दीवान दुर्गादास — प्रार्थी

वि०

श्री बी० आर० किशोर तथा अन्य— विपक्षीगण

अ—व्यवहार—वकील के बयान को मान लेने की परंपरा पर निर्भर करना सुरक्षित नहीं है—प्रत्येक तथ्य के लिये जिनपर कि न्यायालय का निर्णय निर्भर करता है शपथपत्र (अफिडविट) माँगना चाहिए।

ब—दंड संहिता, १८६० धारा १९९—पक्ष अपने वकील को जो सूचना देता है वह दांडिक कार्यवाही (पेनल प्रासीक्यूशन) का आधार नहीं हो सकता

स—न्यायालय अवमान (कंटेंप्ट आफ कोर्ट) पक्ष द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर यदि वकील ने बयान दिया और वह बयान गलत पाया गया तो न्यायालय अवमान की कार्यवाही नहीं की जा सकती।

न्यायमूर्ति मुल्ला—

विपक्षियों के विरुद्ध प्रार्थी ने लेख प्रार्थनापत्र (सं० १४३।१९५७) निवेशित किया था। उसी संबंध में न्यायालय अवमान की धारा २ और ३ के अंतर्गत तीन व्यक्तियों के विरुद्ध प्रार्थनापत्र दिया गया है।

तथ्य इस प्रकार हैं। दुर्गादास ने लखनऊ शहर में एक मकान खरीदा। इस मकान में एक पुलिस का अधिकारी किराया पर रहता था जिसका स्थानांतरण हो गया था। दुर्गादास ने प्रार्थनापत्र दिया कि वह मकान खाली होनेवाला है इसलिए वह हमें दिया जाय क्योंकि हमारे पास कोई मकान नहीं है और मैं अपने एक संबंधी के यहाँ ठहरा हूँ। यह प्रार्थनापत्र किराया नियंत्रण अधिकारी को दिया गया। किंतु उन्होंने दुर्गादास की बात न मानी और मकान बृजराज किशोर को विनियोजित (अलाट) किया। दुर्गादास को ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारी प्रार्थना पर न्यायिक ढंग से विचार नहीं किया गया और मनमाना आदेश दिया गया है इसलिए इस आधार पर उन्होंने लेख प्रार्थनापत्र निवेशित किया। इसके साथ साथ उन्होंने प्रार्थनापत्र दिया कि बृजराज किशोर को मकान के धारण (पोजेशन) में आने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह प्रार्थनापत्र विद्वान् एकाकी न्यायाधीश के समक्ष १५ जुलाई १९५७ को ११ बजे दिन विचारार्थ आया। लखनऊ के किराया नियंत्रण अधिकारी की ओर से सरकारी वकील ने बयान दिया कि हमें सूचना मिली है कि बृजराज किशोर मकान में आ चुके हैं और उनका सामान मकान के भीतर है। इस बयान पर संदेह हुआ और दुर्गादास उसी समय मकान पर गए और आकर २ बजे शपथपत्र दिया कि १ बजे तक बृजराज किशोर मकान के धारण में नहीं थे और उनका कोई सामान मकान के भीतर नहीं था और आगे उनकी प्रार्थना थी कि इन बातों की सत्यता की जाँच के लिये किसी आयुक्त (कमिश्नर) को नियुक्त किया जाय। न्यायालय ने आयुक्त की नियुक्ति की और उनको आदेश दिया कि वहाँ जाकर देखें और प्रतिवेदन दें कि उस मकान में कोई सामान है कि नहीं! आयुक्त को कहा गया कि वे ताला तोड़कर और घर में जाकर यदि कोई सामान पावें तो उसकी सूची बनावें और ताला पर मुहर करके······इत्यादि।

श्री मुहम्मद हैदर आयुक्त नियुक्त हुए थे। श्री मुहम्मद हैदर दुर्गादास के साथ मकान पर आए और इसे खुला पाया। बृजराज किशोर का सामान मकान में पाया गया और आयुक्त ने उसकी सूची बनाई। मकान के भीतर पूरन सिंह और मुहम्मद इलियास दो सिपाही थे। आयुक्त ने दोनों का बयान लिया और उस पर उसने हस्ताक्षर करने को कहा। पूरन सिंह ने तो हस्ताक्षर कर दिया परंतु मुहम्मद इलियास ने हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। आयुक्त ने बयान और सूची अपने प्रतिवेदन के साथ प्रेषित किया।

दुर्गादास ने शपथपत्र निवेशित किया कि मकान में सामान २ बजे रखा गया और ११ बजे जब कि सरकारी वकील ने बयान दिया कि सामान मकान में आ चुका है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय सामान नहीं था। दुर्गादास का कहना है कि न्यायालय को सूचना गलत दी गई जिससे अन्याय हुआ है। उनका कहना है कि मैंने न्यायालय से अंतःकालीन निषेधाज्ञा के लिये प्रार्थना की थी किंतु किराया नियंत्रण अधिकारी के कार्यालय के एक कर्मचारी ने अपने वकील को गलत बात बताई कि मकान धारण (पोजेशन) में आ गया है और वकील के इस बयान को मानकर न्यायालय ने प्रार्थना अस्वीकार कर दी। इसका परिणाम हुआ कि बृजराज किशोर मकान में आ गए क्योंकि इस संबंध में उनको रोकने के लिये कोई आदेश नहीं था। प्रार्थी दुर्गादास का कहना है कि किराया नियंत्रण अधिकारी और उनके कर्मचारी ने न्यायालय को गलत बात बताई और इस प्रकार न्यायालय का अवमान (कंटेंप्ट आफ कोर्ट) किया तथा आयुक्त के कहने पर मुहम्मद इलियास ने बयान पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया और उसका ऐसा करना न्याय के मार्ग में बाधा पहुँचाने के समान हुआ अतः यह भी न्यायालय अवमान हुआ।

न्यायालय अवमान प्रार्थनापत्र देने पर किराया नियंत्रण अधिकारी, उनके कार्यालय का कर्मचारी जिसने वकील को सूचना दी थी तथा मुहम्मद इलियास पर नोटिस तामील की गई और वे उपस्थित हुए।

सारांश यह कि केवल दो बातों पर विचार करना है १—क्या किराया नियंत्रण कार्यालय के कर्मचारी का वकील को उपर्युक्त सूचना देना न्यायालय अवमान (कंटेंप्ट आफ कोर्ट) है? २—क्या मुहम्मद इलियास का बयान पर हस्ताक्षर करने से इनकार करना न्यायालय अवमान है? हमारा निष्कर्ष है कि इनमें से कोई भी न्यायालय अवमान नहीं है। पहले उपर्युक्त प्रथम प्रश्न पर विचार करना है।

यदि पक्षों द्वारा अपने वकील को गलत बात बताया जाना स्वतः न्यायालय अवमान होता तो कदाचित् कोई ऐसा ही मुकदमा हो सकता है जिसमें न्यायालय अवमान न हो अन्यथा सब में होगा। न्यायालय अवमान का ऐसा अर्थ नहीं हो सकता। कहा गया कि परंपरा चली आ रही है कि वकील के बयान पर न्यायालय निर्भर करता है। यह परंपरा काम में सुविधा होने के विचार से अपनाई गई है फिर भी परंपरा कितनी ही पुरानी क्यों न हो यह विधि (ला) का स्थान नहीं ले सकती। न्यायालय को अधिकार है कि शपथपत्र माँगे और निरे बयान पर निर्भर न करे। लोक सेवक (पब्लिक सर्वेंट) के बारे में समझा जाता है कि वे केवल विधि (ला) का पालन करना चाहते हैं, किसी पक्ष की हार जीत में दिलचस्पी नहीं रखते इसलिए उनके पक्ष में अभिधारणा करके न्यायालय आगे बढ़ता है। किंतु इधर के कुछ मुकदमों से यह अनुभव प्राप्त हुआ है कि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि लोकसेवक लोग दिलचस्पी नहीं रखते। इसलिए न्यायालय शपथपत्र में दी हुई बातों की सत्यता पर संदेह कर सकता है और उनके लिये और प्रमाण की माँग कर सकता है। परिस्थिति के अनुसार न्यायालय को यह भी आवश्यक प्रतीत हो सकता है कि जो लोग शपथपत्र में शपथ के साथ बयान करते हैं उनका न्यायालय के समक्ष साक्षी रूप में परीक्षण और प्रतिपरीक्षण (क्रास-एक्जामिनेशन) किया जाय। विधि के अनुसार जो गलत शपथपत्र देता है उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का नियम बना हुआ है किंतु जो अपने वकील को गलत बात बताता है उसके लिये उपाय नहीं है। यह इस बात का द्योतक है कि विधि के नियम के अनुसार ऐसे बयान को साक्ष्य (एविडेंस) रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। सुविधा के अनुसार न्यायालय यदि ऐसे बयान पर निर्भर करे और यह परंपरागत हो तब भी यह परंपरा ही है और किसी व्यक्ति पर न्यायालय अवमान की कार्यवाही परंपरा तोड़ने के संबंध में नहीं की जा सकती क्योंकि परंपरा से वैधिक अनिवार्यता नहीं आती और इसका बंधन पक्षों पर नहीं होता। न्यायालय को ऐसा बयान कार्यान्वित नहीं करना चाहिए और यदि कार्यान्वित करता है तो इसके गलत प्रमाणित होने पर बयान देने वाले के विरुद्ध मुकदमा नहीं चल सकता। इस मुकदमे में कर्मचारी ने यदि शपथपत्र दिया होता तो बात दूसरी होती। तब यह प्रश्न न उठता कि दं. सं. की धा. १६६ के अंतर्गत कार्यवाही की जाय कि नहीं। किसी पक्ष का अपने वकील को सूचना देना शपथ पर नहीं होता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा १९२ के अंतर्गत वह साक्ष्य का कूटयोजन (फैब्रिकेशन आफ इविडेंस) भी नहीं होता इसलिए उसका दांडिक अभियोजन (पेनल प्रासीक्यूशन) नहीं हो सकता। इस मामले में विचार करना है कि परंपरा का पालन किया जाय या नहीं। हमारा अनुभव है कि ऐसी परंपरा पर निर्भर करना ठीक नहीं है और प्रत्येक तथ्य के लिये शपथपत्र की माँग करनी चाहिए जिसका प्रभाव निर्णय पर पड़ने की संभावना हो। अतः मेरे विचार से ऐसा बयान यदि गलत भी हो तब भी न्यायालय अवमान की कार्यवाही नहीं की जा सकती।

किंतु इस मामले में किराया नियंत्रण कार्यालय के कर्मचारी की सद्भावना पर आपत्ति नहीं की जा सकती। हो सकता है कि लापरवाही से उसने बयान दे दिया हो। इस बात की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं है कि उसने जानबूझकर अपने वकील को गलत बात बतलाई। मकान बृजराज किशोर को दिया गया। आयुक्त के पहुँचने पर उनका सामान वहाँ था। प्रश्न केवल यह है कि सामान वहाँ कब पहुँचा। दुर्गादास का कहना है कि वकील ने जब ११ बजे बयान दिया उस समय वहाँ कर सामान नहीं था, सामान दो बजे आया। किंतु दुर्गादास ने इस बात का प्रमाण नहीं दिया कि उसे कैसे पता चला कि ११ बजे सामान नहीं था। मकान की ताली आदि की कहीं चर्चा नहीं है। हो सकता है कि कुछ सामान मकान में कहीं रखा रहा हो क्योंकि पता चलता है कि सभी घरेलू सामान थे और यह संभव नहीं है कि २ बजे के बाद सब सामान एक ही ट्रक में लाकर रख दिए गए हों। दुर्गादास ने उपर्युक्त बातों के सविस्तर वर्णन के लिये अलग शपथपत्र निवेशित करने के लिये अनुमति माँगा और अनुमति दी भी गई पर उसने शपथपत्र निवेशित नहीं किया। वह उपस्थित भी नहीं है। अतः वकील का ११ बजे बयान देना कि बृजराज किशोर का सामान मकान में है—दुर्गादास के शपथपत्र द्वारा गलत प्रमाणित नहीं होता।

दूसरे प्रश्न के बारे में प्रार्थनापत्र गलत दिया गया है। विद्वान् न्यायाधीश ने अपने आदेश में यह स्पष्ट कर दिया था कि आयुक्त (कमिश्नर) को क्या क्या काम करना है। आयुक्त को कहा गया था कि यदि आवश्यकता पड़े तो ताला तोड़कर मकान के भीतर के सामानों की सूची बना लें। आयुक्त ने इस अधिकार से परे जाकर उत्साह दिखाया और जो बयान लिया वह काम न्यायालय के प्रतिनिधि के रूप में नहीं किया वरन् वे एक हितबद्ध साक्षी हो गए। इस प्रकार मुहम्मद इलियास ने यदि बयान पर हस्ताक्षर नहीं किया तो इसका अर्थ न्यायालय अवमान (कंटेम्प्ट आफ कोर्ट) नहीं हुआ।

उपर्युक्त कारणों से प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है और जारी की हुई नोटिसें हटा ली जाती हैं।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १८०

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

व्यवहार पुनरीक्षण सं० २१९।१९५१–२५ जनवरी १९५७.

श्रीमती कपूरी देवी उपनाम कपुरा देवी तथा अन्य—प्रतिवादी–प्रार्थी

वि०

श्रीमती रुक्मणी देवी — वादी विपक्षी

मुरादाबाद के लघुवाद न्यायालय (स्मालकाज कोर्ट) के न्यायाधीश के आदेश दिनांक १–२–५१ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० २१९।१९५१

अ—प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम (प्राविंशियल स्माल काज कोर्ट्स ऐक्ट) द्वितीय अनुसूची पद (आइटम) ३८—'भरण पोषण' (मेंटेनेंस) शब्द का अर्थ—इच्छापत्र (विल) में मासिक भत्ता (अलावेंस) दिए जाने की चर्चा—यह भरण पोषण के अर्थ में आता है इसलिए लघुवाद न्यायालय को सुनवाई का अधिकार नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब—लघुवाद न्यायालय अधिनियम (स्माल काज कोर्ट ऐक्ट) धारा २५ और स्वविवेक (डिस्क्रीशन) का प्रयोग ।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

वादी रुक्मणी देवी शांतिप्रसाद की माता हैं। शांतिप्रसाद ने एक इच्छापत्र द्वारा निदेश दिया कि हमारी मोटर लारी के व्यापार की आय से प्रबंधकारी संचालक २० रु० प्रतिमास हमारी माता को दिया करेंगे ताकि उसका भरणपोषण हो सके।

वादी का कहना है कि प्रबंधकारी संचालक ने कुछ समय तक रुपया दिया किंतु संचालक और प्रतिवादी में झगड़ा हुआ और संचालक ने काम छोड़ दिया तथा प्रतिवादी ने स्वयं व्यापार का कार्यभार सँभाला। जब से उसने कार्यभार सँभाला तब से उपर्युक्त भत्ता देना बंद कर दिया और इसलिए वादी ने ३२० रु० बकाया तथा १३ रु० व्याज के संबंध में वाद निवेशित किया।

प्रतिवादी प्रार्थी ने इस वाद का विरोध कई आधार पर किया। एक यह कि मुरादाबाद न्यायालय को इस मुकदमे की सुनवाई का अधिकार नहीं है कारण कि वाद-मूल का कोई भाग मुरादाबाद न्यायालय के अधिक्षेत्र में में नहीं पैदा हुआ था और लघुवाद न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार नहीं है क्योंकि यह लघुवाद न्यायालय अधिनियम की द्वितीय अनुसूची पद ३८ में आता है।

लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश ने पहली आपत्ति को इस आधार पर अमान्य कर दिया कि इच्छापत्र (विल) में लिखा हुआ है कि यह रुपया मेरी माता को उस स्थान पर दिया जाय जहाँ वह रहती हो और चूँकि वादी इस समय मुरादाबाद में रहती है इसलिए मुरादाबाद न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है। विद्वान् न्यायाधीश ने दूसरी आपत्ति को भी इस आधार पर अमान्य कर दिया कि यह 'भरण पोषण' (मेंटेनेंस) शीर्षक के अंतर्गत नहीं आता इसलिए यह द्वितीय अनुसूची पद सं० ३८ में नहीं है और लघुवाद न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है। उन्होंने अन्य आधारों पर वादी के पक्ष में निर्णय दिया और वाद में डिग्री दे दी।

प्रतिवादीगण इस न्यायालय में पुनरीक्षण के लिये आए हैं और यहाँ भी उपर्युक्त दो आधारों पर निर्भर किया है।

पहले विषय पर कि मुरादाबाद के न्यायालय को सुनवाई का अधिकार है कि नहीं कोई निर्णय देने की आवश्यकता नहीं है कारण कि धारा २१ व्य० प्र० संहिता के अंतर्गत दिया गया है कि यदि इस प्रकार की आपत्ति अपील या पुनरीक्षण न्यायालय में उठाई जाय तो इसे तब तक नहीं मानना चाहिए जब तक कि यह प्रमाणित न हो जाय कि यह नीचे के न्यायालय में उठाई गई थी और उसके न माने जाने के परिणामस्वरूप प्रार्थी पर अन्याय हुआ है। इस मामले में इतना तो निश्चय है कि यह आपत्ति नीचे के न्यायालय में उठाई गई थी किंतु इसके मान्य न होने से यह पता नहीं चलता कि प्रार्थी पर कोई अन्याय हुआ है। ऐसी अवस्था में वाद निवेशित करने के स्थान के विषय में पहली आपत्ति अस्वीकार की जाती है।

दूसरी आपत्ति प्रमुख है। अनुसूची २ पद ३८ में है कि भरण पोषण के संबंध में मुकदमों की सुनवाई लघुवाद न्यायालय (स्माल काज कोर्ट) नहीं कर सकता। यहाँ प्रार्थी का कहना है कि यह मुकदमा भरणपोषण के संबंध में बकाया धन की वसूली के लिये है। विपक्षी का कहना है कि यह मुकदमा भरणपोषण के संबंध में नहीं है वरन् शांतिप्रसाद ने अपनी इच्छापत्र में जो भत्ता (अलावेंस) दिए जाने का निदेश किया था उसी के संबंध में बकाया धन की वसूली के लिये है।

आक्सफोर्ड शब्दकोश में 'भरण पोषण' (मेंटेनेंस) का अर्थ है जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों का दिया जाना या जीवन निर्वाह......। इस अर्थ में यह रुपया वादी के भरण पोषण (मेंटेनेंस) के लिये दिया गया था। वादी ने भी अपने वादपत्र में कहा है कि यह भत्ता हमारे भरण पोषण के लिये दिया गया था। कहा गया कि शांतिप्रसाद परिवार से अलग रहते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो संपत्ति उन्होंने दिया वह उनकी निजी पैदा की हुई संपत्ति थी इसलिए उस संपत्ति से अपनी माता के भरणपोषण का बंधन उन पर नहीं था। इन बातों का कोई महत्व नहीं दीख पड़ता। शांति प्रसाद को अपनी माता के भरण पोषण की आवश्यकता पड़ी और उन्होंने इस संबंध में उपाय किया। यदि इसे भरणपोषण के लिये न माना जाय तो दूसरा और कौन 'भरणपोषण' हो सकता है। निश्चय ही यह भत्ता (अलावेंस) था पर यह भरण पोषण (मेंटेनेंस) के लिये भत्ता था। अतः यह मुकदमा भरणपोषण के लिये था।

मेरे इस विचार के समर्थन में आई० एल० आर० १५ कलकत्ता १६४ और आई० एल० आर० ४० इलाहाबाद ५२ हैं।

इस कथन के समर्थन में कि यह मामला पद ३८ के अंतर्गत नहीं आता है विपक्षी के विद्वान् वकील ने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भर किया है—१८९० ए० डब्ल्यू० एन० २०१, २ ए० एल० जे० ६९७,२२ आई० सी० ३९, १३ एम० एल० जे० आर० ४७१। विचार करने पर ये आता है कि उपर्युक्त मुकदमों और इस मामले के तथ्यों में अंतर था।

१३ एम० एल० जे० ४७१ में मुकदमा भरणपोषण के लिये था ही नही। इसमें एक संविद् (अग्रीमेंट) के आधार पर कुछ धान देना तय हुआ था। इस धान के बकाया को वसूल करने के लिये जो मुकदमा था उसमें निर्णय हुआ कि यह भत्ता है जो भरणपोषण के भत्ते से भिन्न है। इसको वार्षिकी (ऐन्यूटी) की प्रकृति का कहा गया था। २२ आई० सी० ३९ में ३ भाइयों पर माता के भरणपोषण का बंधन था। उन्होंने बँटवारा करके अपने में संपत्ति बाँट लिया। प्रतिवादी के पिता के द्वारा वादी के पिता को प्रतिवर्ष कुछ धान देना तय हुआ था ताकि वादी का पिता माता के भरण पोषण का प्रबंध करे। कुछ समय तक धान नहीं दिया गया और उसकी वसूली के लिये जब मुकदमा चला तब उसमें निर्णय हुआ था कि यह भरणपोषण से संबंध नहीं रखता इसलिए लघुवाद न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है। इस रूलिंग में मुकदमा भरणपोषण के बकाया के लिये नहीं था वरन् किसी माता के भरणपोषण के लिये जो धन खर्च किया गया है उस संबंध में कुछ बकाया रह गए धान की वसूली के लिये था। २ ए० एल० जे० ६९७ में श्रीमती देवकी ने कुछ खेतों के संबंध में दाखिल खारिज का प्रार्थनापत्र दिया। उसमें समझौता हुआ कि यदि वह दाखिल खारिज का प्रार्थनापत्र हटा ले तो उसे ३० रु० प्रतिवर्ष दिया जायगा। श्रीमती देवकी के मरने पर वादियों ने जब बकाया धन की वसूली के लिये मुकदमा चलाया तो उसमें निर्णय हुआ था कि एक तो स्वयं वादियों ने इसे वादपत्र में भरणपोषण नहीं माना है और दूसरे समझौते में भरणपोषण की चर्चा नहीं है। इसलिए यह भरणपोषण नहीं था। १८९० ए० डब्ल्यू० एन० २०१ में उसे पंचनिर्णय (अवार्ड) माना गया था, भरणपोषण नहीं। इसमें से कोई भी रूलिंग विपक्षी की बात का समर्थन नहीं करती।

हमारे विचार से इस मामले की सुनवाई लघुवाद न्यायालय नहीं कर सकता था। यह लघुवाद न्यायालय अधिनियम की अनुसूची २ पद सं० ३८ में आता है इसलिये लघुवाद न्यायालय के अधिक्षेत्र के बाहर है।

अंत में कहा गया कि लघुवाद न्यायालय अधिनियम की धारा २५ के अंतर्गतवाला अधिकार विवेक पर निर्भर करता है और चूँकि डिग्री के बाद बहुत समय बीत चुका है इसलिए इस न्यायालय को प्रार्थियों के पक्ष में विवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किंतु जब अधिक्षेत्र का प्रश्न आरंभिक न्यायालय में ही उठाया गया और उस पर निर्णय गलत दिया गया तो कोई कारण नहीं है कि गलत निर्णय को अक्षुण्ण रखा जाय।

पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र परिव्यय (कास्ट्स) के साथ स्वीकार किया जाता है और लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश को निदेश दिया जाता है कि वे वादपत्र वादी को उचित न्यायालय में निवेशित करने के लिये लौटा दें।

पुनरीक्षण स्वीकृत

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अपील असफल होती है और यह परिव्यय तथा वकील के २० रु० शुल्क के साथ उत्सर्जित की जाती है।

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ६५

(उच्च न्यायालय)

(लखनऊ न्यायासन)

देसाई और निगम न्यायमूर्तिगण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ और २२७ के अंतर्गत व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र (ओ० जे०) सं० १७९।१९५६

६ मई १९५८

गोविंद प्रसाद तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

शिवकुमार तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम १९४७, धा० २ (उ० प्र० अधिनियम १९।१९५७ से संवर्द्ध)—अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति संशोधन अधिनियम १९५७ द्वारा वैध नहीं बनाई जा सकती।

न्यायमूर्ति निगम—

गोविंद प्रसाद तथा १० व्यक्तियों ने यह उत्प्रेषण (सेर्टियोरेरी) लेख प्रार्थनापत्र दिया है कि विपक्षी सं० २ का दिनांक २३ जून, १९५६ का आदेश निराकृत किया जाय जिसे उन्होंने चुनाव याचिका सं० ४१।२७ में पारित किया था।

प्रार्थियों का कहना है कि हम लोग गाँव सभा इमलिया जिला सीतापुर के निर्वाचक हैं और १६ दिसंबर के चुनाव में विपक्षी सं० १ निर्वाचित घोषित हुआ जब कि उसकी आयु ३० वर्ष से कम थी। उसकी आयु के संबंध में नाम निर्देशन के अनुवीक्षण के समय ही आपत्ति की गई थी किंतु यह सरसरी तौर पर अस्वीकार कर दी गई। प्रार्थियों का कहना है कि हम लोगों ने एस० डी० ओ० के यहाँ चुनावयाचिका निवेशित किया था किंतु वह उत्सर्जित कर दी गई।

इस प्रार्थनापत्र में प्रार्थियों का कहना है कि निष्कर्ष गलत है और अतिरिक्त एस० डी० ओ० को चुनाव याचिका के निर्णय का अधिकार नहीं था।

यह मामला विद्वान् एकाकी न्यायाधीश माननीय टंडन के समक्ष सुनवाई के लिये आया। माननीय न्यायमूर्ति सिंह ने ऐसे ही मामले में एक निर्णय दिया था। उससे असहमत होने पर न्यायमूर्ति टंडन ने इसे न्यायासन को अभिदेश कर दिया है।

हमारे समक्ष दोनों पक्षों के विद्वान् वकीलों ने बहस की और इस संबंध में दो निर्णयों का अभिदेश किया।

व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० २१७।९५६ में विद्वान् एकाकी न्यायाधीश का विचार था कि पंचायत राज अधिनियम में उ० प्र० अधिनियम १९५७ द्वारा जो परिवर्तन हुआ उसमें कहा गया कि अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति या नामोद्देशन उपयुक्त प्राधिकरण द्वारा होगा किंतु यह स्पष्ट नहीं किया गया कि उपयुक्त प्राधिकरण कौन सा है। उपयुक्त प्राधिकरण का स्पष्टीकरण न होने से अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति ठीक नहीं है और उन्हें चुनावयाचिका की सुनवाई का अधिकार नहीं है। यों तो अतिरिक्त जिलाधीश, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश आदि की नियुक्ति का विधान है किंतु इस प्रकार का कोई उपबंध अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति के लिये नहीं है। विद्वान एकाकी न्यायाधीश का निष्कर्ष था कि वर्तमान लेख प्रार्थनापत्र का जहाँ तक संबंध है संशोधन का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यही निर्णय व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० १६१। १९५६ में भी हुआ था।

माननीय न्यायमूर्ति टंडन का विचार यह था कि अतिरिक्त एस० डी० ओ० अपने क्षेत्र में दूसरा एस० डी० ओ० है और उ० प्र० सामान्य वाक्यांश अधिनियम १९०४ में है कि जब प्रसंगवश या विषयानुसार कोई अन्य बात नहीं आती तो एकवचन के शब्दों का अर्थ बहुवचन होगा; अतः सरकार या अन्य प्राधिकरण जैसे एस० डी० ओ० की नियुक्ति करती है, उसी प्रकार यह एक से अधिक एस० डी० ओ० की भी नियुक्ति कर

७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है। और इस प्रकार दूसरे एस० डी० ओ० अतिरिक्त एस० डी० ओ० के नाम से पुकारे जा सकते हैं।

एस० डी० ओ० के लिये १६५७ ए० एल० जे० ३७६ में कहा गया है कि वह सहायक कलक्टर प्रथम श्रेणी का और एक प्रभाग (सब डिविजन) का अधिकारी होता है। एस० डी० ओ० की इस व्याख्या को उभय पक्षों ने स्वीकार किया है। यहाँ एकमात्र विचाराधीन प्रश्न यही है कि अतिरिक्त एस० डी० ओ० क्या दूसरा एस० डी० ओ० होता है या वह एस० डी० ओ० से भिन्न कोई ऐसा अधिकारी है जिसके कार्य करने के पहले उसकी नियुक्ति आदि के विषय में विधि (ला) में कोई उपबंध होना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि अतिरिक्त (अडिशनल) अधिकारी गण केवल उन्हीं मामलों में अपने अधिक्षेत्र का प्रयोग करते हैं जो उन्हें भेजे जाते हैं। ऐसा सुविधा के विचार से किया जाता है। यदि दो अधिकारी सहवर्ती अधिक्षेत्र (कांकरेंट जुरिडिक्शन) के हों तो मुकदमा लड़नेवाला जिस न्यायालय में चाहे उसे निवेशित कर सकता है। ऐसी स्थिति में एक ही मामले में दो विरोधी निर्णय हो सकते हैं और इस प्रकार बहुत ही गड़बड़ी होने की संभावना है। यही कारण है कि अतिरिक्त अधिकारी को मुख्य अधिकारी के समस्त अधिकारों को नहीं दिया जाता वरन् उन्हें वही काम करना पड़ता है जो किसी विशेष या सामान्य आदेश द्वारा उन्हें दिया जाय। हमें प्रतीत होता है कि जब राज्य सरकार ने अतिरिक्त एस० डी० ओ० को नियुक्त करने का विचार किया तो उसने समकक्ष अधिकार देने की बात नहीं सोची थी वरन् इन्हें सीमित अधिकार देने का विचार था कि ये लोग उन्हीं मामलों का निपटारा करें जो कि इन्हें अभिदेश किया जाय या भेजा जाय। इस बात को ध्यान में रखते हुए हमारा निष्कर्ष है कि अतिरिक्त एस० डी० ओ० ठीक ठीक दूसरा एस० डी० ओ० नहीं है इसलिए अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति का अधिकार एस० डी० ओ० की नियुक्ति में संमिलित नहीं है।

अतः न्यायमूर्ति सिंह के विचार से मैं पूर्णरूपेण सहमत हूँ कि अधिनियम १६।१६५७ द्वारा पंचायत राज अधिनियम का संशोधन निष्फल है और अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति को किसी प्रकार वैध नहीं कर सकता कारण कि ऐसी नियुक्ति आदि के लिये किसी प्राधिकरण (अथारिटी) का निर्धारण नहीं किया गया है।

तदनुसार हम इस प्रार्थनापत्र को स्वीकार करते हैं और विद्वान् अतिरिक्त एस० डी० ओ० के प्रश्नगत् आदेश को निराकृत करते हैं। चुनाव याचिका अभी भी विचाराधीन समझी जायगी और विधि के अनुसार उसका निर्वर्तन किया जायगा। प्रार्थीगण को परिव्यय का अधिकार होगा।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ६६

एस० एन० मित्रा और आर० के० सिंह न्यायिक सदस्य

कुर्मली, शामली, मुजफ्फर नगर

एस० ए० सं० ७८।५४–५५—१५ अक्टूबर १६५८

रामरेख — अपीलकर्ता

विरुद्ध

चुन्नीलाल — उत्तरवादी

मेरठ के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक १३–१०–५४ के विरुद्ध द्वितीय अपील।

उ० प्र० भू धारण (टेनेंसी) अधिनियम; १६३६ धारा १८०— चकबंदी की कार्यवाही के समय निर्णय हुआ कि प्रतिवादी 'सीरदार' है—इस पर कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी—राजस्व मंडल में इस प्रश्न को फिर नहीं उठाया जा सकता—प्रतिवादियों का अधिनिष्कासन (एजेक्टमेंट) अनधिप्रवेशी ट्रेसपासर) के आधार पर नहीं किया जा सकता।

आर० के० सिंह न्यायिक सदस्य—

चुन्नीलाल तथा अन्य लोगों ने रामरेख आदि के विरुद्ध उ० प्र० भू धारण (टेनेंसी) अधिनियम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा १८० के अंतर्गत वाद निवेशित किया था। अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने एक खेत के संबंध में वाद का उपशमन (अबेटमेंट) कर दिया और इसके अतिरिक्त सभी खेतों के लिये वादी के पक्ष में डिग्री दे दी। अपील करने पर मेरठ के अतिरिक्त आयुक्त ने इसी निर्णय को माना और अपील उत्सजित कर दिया। इसी आदेश के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि चकबंदी के समय प्रतिवादी अपीलकर्ता विवादग्रस्त भूमि का सीरदार घोषित हो चुका है इसलिए अपील स्वीकार की जानी चाहिए। यह बात ठीक प्रतीत होती है। चकबंदी के समय वादी ने अपीलकर्ता के सीरदार घोषित करनेवाली कार्यवाही में कोई आपत्ति नहीं किया इसलिये वहाँ अब वह आपत्ति नहीं कर सकता। यह सिद्धांत अब निश्चित हो चुका है कि अपील के निर्णय के समय विधि के परिवर्तन या नवीन विधि के अस्तित्व पर ध्यान रखना चाहिए और इसलिए चकबंदी अधिनियम के उपबंधों की अवहेलना नहीं की जा सकती। चकबंदी के समय की कार्यवाही में उत्तरवादियों ने कोई आपत्ति नहीं की इसलिए प्रतिषेध (इस्टापेल) विधि के आधार पर अब वे इस प्रश्न को पुनः नहीं उठा सकते।

अतः उपर्युक्त तथ्य के आधार पर हमारा निर्णय होगा कि प्रतिवादी विवादग्रस्त खेतों का सीरदार है इसलिए उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) के आधार पर उसका अधिनिष्कासन नहीं हो सकता। अतः अपने विद्वान् सहयोगी की सहमति के अधीन मैं इस अपील को स्वीकार करूँगा, नीचे के दोनों न्यायालयों के आदेश और डिग्री को निराकृत करूँगा तथा वादी के वाद को उत्सर्जित करूँगा। परिव्यय पक्षों पर होगा।

न्यायिक सदस्य मित्रा—मैं सहमत हूँ।

अपील स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ६७

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा

हरपाल, सौदित, हरदोई

कामताप्रसाद तथा अन्य— अपीलकर्तागण

वि०

भूधर तथा अन्य— उत्तरवादी गण

लखनऊ प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२ के अंतर्गत एक मुकदमें में दिनांक ३१–१०–५६ को दिए हुए आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील

अ—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, १६५०, धारा १५७—अनर्हता (डिस ए-बिलिटी) की समाप्ति—यह आवश्यक नहीं है कि अक्षम (डिसेबुल) व्यक्ति अनर्हता की समाप्ति के दिन जीवित रहे।

ब—उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम, १६५० धारा २०२ (एफ०) १—और २—असामी के अधिनिष्कासन के संबंध में अक्षम व्यक्ति का अधिकार

न्यायिक सदस्य मित्रा—

ये चार अपीलें लखनऊ के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध निवेशित की गई हैं।

दो अपीलें उन मुकदमों से आई हैं जिन्हें कामता-प्रसाद और मुक्ताप्रसाद वादियों ने जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२ के अंतर्गत यह कहकर निवेशित किया था कि हम लोग प्रश्नगत् खेतों के वंशानुगत कृषक श्रीमती बिटोली के लड़की के लड़के हैं इसलिए हम लोग इसके सीरदार हुए तथा प्रतिवादी-गण श्रीमती बिटोली के शिकमी काश्तकार थे इसलिए वे इसके असामी हुए।

प्रतिवादी भूधर ने इस कथन का विरोध किया और कहा कि :—

१—हम खेतों के सीरदार हैं क्योंकि खेत को श्रीमती बिटोली के पति ने हमें दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—यह कि वादियों का इस खेत पर कोई अधिकार नहीं है।

३—यह कि श्रीमती बिटोली के मरे ४1/2 वर्ष हुए इसलिए यह काल बाधित (बार्ड बाई लिमिटेशन) है।

अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने निर्णय दिया कि:—

१—वादियों को वाद निवेशित करने का अधिकार था।

२—प्रतिवादी भूधर सीरदार नहीं है।

३—मुकदमा अवधि (लिमिटेशन) के भीतर निवेशित किया गया है और

४—प्रतिवादीगण असामी हैं इसलिए उनका अधिनिष्कासन हो सकता है। अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने वाद में डिग्री दे दी।

शेष दोनों अपीलों में भी वादियों ने उपर्युक्त आधार पर वाद निवेशित किया था और प्रतिवादीगण ने उपर्युक्त आधार पर प्रतिवाद सिवा इसके कि इसमें प्रतिवादियों ने अपने को खेतों का अधिवासी होना कहा था।

अन्वीक्षा न्यायालय ने उपर्युक्त प्रकार से निर्णय दिया था और प्रतिवादियों को असामी माना था, अधिवासी नहीं।

विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने आदेश को निराकृत किया था और अपील स्वीकार की थी।

दोनों पक्षों के वकीलों की बहस सुना।

वादी अपील कर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

नीचे के अपील न्यायालय का कहना था कि श्रीमती बिटोली ३१-१-१६५२ को मरी थी और मुकदमा अगस्त १६५५ और जनवरी १६५६ में निवेशित किए गए थे इसलिए यह अवधि बाधित है कारण कि निहित होने की तिथि (डेट आफ वेस्टिंग) से ३ वर्ष के बाद निवेशित हुए। विद्वान् वकील का कहना है कि बात ऐसी नहीं है। उनका कहना है कि वास्तव में यह मुकदमा उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२ एफ० (१) के अंतर्गत निवेशित किया गया है क्योंकि भूस्वामी की इच्छा स्वयं खेती करने की है। विद्वान् वकील का कहना है कि अनर्हता की समाप्ति का संबंध उसी व्यक्ति से होना चाहिए और चूँकि श्रीमती बिटोली की मृत्यु हो गई है इसलिए अनर्हता (डिसएबिलिटी) की समाप्ति का प्रश्न नहीं उठता। उनका कहना है कि वादी अपीलकर्तागण अक्षम नहीं हैं। विद्वान् वकील ने धारा २०४ का अभिदेश किया और दिखलाया कि उसके अंतर्गत केवल वही व्यक्ति सीरदार होता है जो धारा २१ के ए०, बी०, सी० या डी० के अंतर्गत असामी रहा हो और जिसके विरुद्ध निर्धारित अवधि के भीतर मुकदमा निवेशित न गया हो या मुकदमें की डिग्री का निष्पादन समय के भीतर न किया गया हो। विद्वान् वकील ने कहा कि ये उपबंध वर्तमान मुकदमे में लागू नहीं होते। विद्वान् वकील ने कहा कि यहाँ प्रमुख विचारणीय प्रश्न केवल यही है कि अनर्हता की समाप्ति भू स्वामी (लैंड-होल्डर) के संबंध में हुई है या इसकी समाप्ति मृतक के उत्तराधिकारी के संबंध में हुई है? उनका कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय का यह निर्णय गलत है कि मुकदमा कालबाधित है।

प्रतिवादी उत्तरवादीगण के विद्वान् वकील का कहना है कि वाद पत्र में इस बात की कहीं चर्चा नहीं है कि मुकदमा धारा २०२ (एफ०) (१) अंतर्गत निवेशित किया गया है या धारा २०२ (एफ० २) के अंतर्गत। विद्वान् वकील का कहना है कि यदि श्रीमती बिटोली जीवित रहती और और उसकी अनर्हता किसी प्रकार समाप्त हो गई रहती तो यह निश्चय ही काल बाधित होता किंतु श्रीमती बिटोली की मृत्यु हो गई और जो उसके उत्तराधिकारी आए वे अक्षम (डिसेबल) नहीं थे और इसीलिए कहा जाता है कि मुकदमा कालबाधित नहीं है। विद्वान् वकील ने कहा कि यह बात विचित्र है कि भूस्वामी पर तो इन सब का बंधन होता पर उसके उत्तराधिकारी पर इसका कोई बंधन न हो। उ० प्र० भू धारण अधिनियम की धारा ३ (१) में है कि किसी अधिकार, स्वत्व (टाइटिल) और हित (इंटरेस्ट) के धारण करनेवालों में उसके उत्तराधिकारी भी सम्मिलित जाते हैं। विद्वान् वकील का कहना है कि विधि का यह विचित्र अर्थ होगा कि अवधि (लिमिटेशन) भूस्वामी की इच्छामात्र पर निर्भर करेगा कि जब अनर्हता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त हो गई है तो उसकी इच्छा इसको अपनी अपनी निजी खेती के अंतर्गत लाने की है। विद्वान् वकील का कहना है कि यह कथन माना नहीं जा सकता कि चूँकि भूस्वामी स्वयं खेती करना चाहता है इसलिए धारा २०२-एफ० (१) के अंतर्गत कोई अवधि (लिमिटेशन) लागू नहीं होगी। विद्वान् वकील का कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय का निर्णय ठीक था और इसलिए इस न्यायालय द्वारा भी अपील उत्सर्जित की जानी चाहिए।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि श्रीमती बिटोली एक अक्षम व्यक्ति थीं और उसकी मृत्यु ३१–१–१९५२ को हुई। यदि वह जीवित होती तो प्रतिवादी उत्तरवादी धारा २१ (१) एच० के अंतर्गत असामी होते। उसकी मृत्यु होने से उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा १५७ के अंतर्गत उसकी अनर्हता (डिसएबिल्टी) समाप्त हो गई। इसलिए अवधि का प्रारंभण १–७–१९५२ से हो जायगा और इस तिथि से तीन वर्ष की समाप्ति ३०–६–१९५५ को हो जायगी। ये मुकदमे अगस्त १९५५ और जनवरी १९५६ में निवेशित किए गए इसलिए अवधि (लिमिटेशन) से बाधित हैं।

धारा १५७ के अंतर्गत जिस अनर्हता (डिसएबिलिटी) समाप्ति की चर्चा की गई है वह तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इस प्रकार विधवा के पुनर्विवाह द्वारा, अवयस्क के वयस्क होने पर, पागल या मूढ़ के सचेतन होने पर या मूढ़ता समाप्त होने पर अनर्हता (डिसएबिलिटी) समाप्त होती है। यह अनर्हता इन व्यक्तियों की मृत्यु से भी समाप्त हो जाती है बशर्ते कि उनके उत्तराधिकारीगण अक्षम (डिसएबुल) न हों।

जिस दिन अनर्हता समाप्त होती है उस दिन उस व्यक्ति का जीवित रहना आवश्यक नहीं है। इस मामले में श्रीमती बिटोली की मृत्यु से अनर्हता (डिस ए बिलिटी) समाप्त हुई है।

अगला प्रश्न है कि अक्षम व्यक्ति क्या अपनी इच्छानुसार धारा २०२ एफ(१) में या २०२ एफ०(२) में वाद निवेशित कर सकता है? यदि अनर्हता समाप्त हो चुकी है तो विधि द्वारा उसे अधिकार दिया गया है कि असामी के अधिनिष्कासन के लिये अनर्हता समाप्ति के तीन वर्ष के भीतर वाद निवेशित कर दे नहीं तो धारा २०४ के अंतर्गत असामी को सीरदार का अधिकार प्राप्त हो जायगा। यदि अनर्हता (डिस ए बिलिटी) समाप्त नहीं हुई है तब भी अक्षम व्यक्ति यह कहकर वाद निवेशित कर सकता है कि मैं उस खेत में स्वयं खेती करना चाहता हूँ।

नीचे के अपील के न्यायालय ने वाद का उत्सर्जन ठीक किया है।

ये सभी अपीलें असफल होती हैं और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती हैं।

अपीलें उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ६९

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा

नियामतपुर टप्पा दुबसलिया असोधा, हरैया, बस्ती एस० ए० सं० ६९ (जेड) ५६–५७–५ अगस्त १९५८

सल्तंती— अपीलकर्ता

वि०

विमलधर दूबे उत्तरवादी

गोरखपुर प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२।२०९ के अंतर्गत दिए गए आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील

व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८ आ० ३ नि० ४—वकालतनामा में वकील का नाम नहीं था—वकील ने वकालतनामा स्वीकार किया और अपील के स्मृति-पत्र पर हस्ताक्षर किया– अपील का स्मृतिपत्र उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से नहीं दिया गया इसलिए वह अस्वीकार किए जाने योग्य है।

न्यायिक सदस्य मित्रा—

जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२।२०६ के अंतर्गत मुकदमों की अपील में गोरखपुर के अतिरिक्त आयुक्त द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील।

प्रतिवादी उत्तरवादी के विद्वान् वकील ने एक आरंभिक आपत्ति उठाई है कि यह अपील श्री रामअवध मिश्र के हस्ताक्षर से निवेशित की गई है किंतु श्रीराम-अवध मिश्र इसके लिये विधिवत् अधिकृत नहीं थे कारण कि वकालतनामा में उनका नाम नहीं है। विद्वान् वकील का कहना है कि श्री रामअवध मिश्र की नियुक्ति व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ३ नि० ४ के उपबंधों के अनुसार नहीं हुई है। इस संबंध में विद्वान् वकील ने १९५७ ए. एल. जे० (रेवेन्यू) ९६ का अभिदेश किया कि यों तो इसमें निर्णय हुआ था कि वकालतनामा में यदि वकील का नाम छूट जाय तो आ० ३ नि० ४ के उपबंधों के अनुसार वे अपने वादार्थी (क्लाएंट) की ओर से काम करने में असमर्थ नहीं होते किंतु उसमें और इस मामले में अंतर यह है कि उसमें अपीलकर्ता ने स्वयं अपील के स्मृतिपत्र (मेमोरेंडम) पर हस्ताक्षर किया था; यहाँ अपील के स्मृतिपत्र पर केवल अपीलकर्ता के वकील का हस्ताक्षर है। इसीलिये उपर्युक्त रूलिंग में निर्णय हुआ था कि वकालतनामा में वकील का नाम न रहने पर भी अपील का स्मृतिपत्र वैध है क्यों कि अपीलकर्ता का हस्ताक्षर उस पर था। यहाँ स्मृतिपत्र पर एकमात्र वकील का हस्ताक्षर है जो अपील निवेशित करने के लिये अधिकृत नहीं थे।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि वकालतनामा में नाम केवल दृष्टि से ओझल हो जाने ने कारण नहीं रहा और यह कि मैंने अपने वादार्थी (क्लाएंट) से पूरा शुल्क ले लिया है इस-लिए मैं ही उसका अधिकृत वकील हूँ। उन्होंने १९३७ आर० डी० ५ का अभिदेश किया कि यदि वादार्थी ने किसी वकील से काम लेने का पूरा निश्चय कर लिया है तो तत्संबंधी औपचारिक (फार्मल) त्रुटियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। ए० आई० आर० १९३४ इलाहाबाद ८१० में निर्णय हुआ था कि यदि लिखावट की गलती से वकील का नाम वकालतनामा में नहीं लिखा गया और जब यह निश्चित है कि उसी वकील को नियुक्त करने का विचार था और वकील ने वकालतनामा स्वीकार करके वादपत्र निवेशित किया तो न्यायालय वकालतनामा को ठीक कर सकता है और वादपत्र का निवेशित किया जाना ठीक है।

इस मामले में यदि वकालतनामा में किसी वकील का नाम नहीं लिखा गया तो यह नहीं कहा जा सकता कि श्री रामअवध मिश्र विधि अनुकूल अधिकृत वकील हैं। वकील ने यों तो शपथपत्र निवेशित किया है कि हमने वादार्थी (क्लाएंट) से पूरा पारिश्रमिक प्राप्त कर लिया है और वकालतनामा में नाम दृष्टि से ओझल मात्र होने से छूट गया किंतु इन सब बातों पर निर्भर करना कठिन है। १९५७ ए० एल० जे० (रेवेन्यू) ९६ में अपील कर्ता ने अपील के स्मृतिपत्र पर हस्ताक्षर किया था इस-लिये अपील ठीक ढंग से निवेशित की गई थी यद्यपि वकील का नाम वकालतनामा में नहीं था। यहाँ श्री राम अवध मिश्र का ही केवल नाम है। उन्होंने इस विषय पर अनेक प्रमाण दिया है जिससे प्रतीत होता है न्याया-लय ऐसे मामलों में कड़ाई नहीं करता था किंतु इसी का परिणाम यह है कि न्यायालयों में भ्रष्टाचार बढ़ा और कई बार यह देखा गया है कि वकीलों ने पक्षों की ओर से होकर समझौता किया किंतु बाद में चलकर उस समझौता पर जब आपत्ति उठाई गई तो देखा यह गया कि वकील पक्षों द्वारा समझौता करने के लिये अधिकृत ही नहीं थे। इसलिए यह देखना आवश्यक है कि वकील को अधिकृत करने के लिये वकालतनामा ठीक से लिखा गया है कि नहीं। इस मामले में ऐसा नहीं किया गया है। अतः हमारा निर्णय है कि श्री राम अवध मिश्र को अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित होने और अपील के स्मृतिपत्र पर हस्ताक्षर करने का अधिकार नहीं था। इस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए अपील ठीक से निवेशित नहीं की गई और अस्वीकार की जाने योग्य है।

यह अपील असफल होती है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ७१

एस० एन० मित्रा, न्यायिक सदस्य (राजस्वमंडल)

शेखपुर, विधुना, इटावा

इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक ५ सितंबर १९५७ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० ४३।१९५७-५८)

३० अगस्त १९५८

गुरु दयाल	—	अपीलकर्ता
	वि०	
बुद्धू	—	उत्तरवादी

(अ) उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, १९५१, धारा ३३१ (३) एवं नियमावली १९५२ नि० ३३९ (२)—नि० ३३९ (१) और व्य० प्र० संहिता की अपील में प्रयोज्यता — अपील यदि अवधि के भीतर निवेशित की गई किंतु डिग्री की प्रतिलिपि यदि अवधि के बाद निवेशित की गई तब भी अपील अवधि (लिमिटेशन) के भीतर है।

(ब) उ० प्र० ज़मींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम १, १९५१ धा० २३२, २४० जी०—१३५६ फ० में यदि उस व्यक्ति का नाम है और धारण (पोजेशन) में भी है तो उसे अधिवासी का अधिकार प्राप्त है—यह अधिकार निश्चित तिथि (अप्वाइंटेड डेट) (३० अक्टूबर १९५२) को अक्षुण्ण था यद्यपि उसका अधिनिष्कासन हो गया था और उक्त तिथि को वह धारण में नहीं था — उसे सीरदारी अधिकार प्राप्त हो जाता है।

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा —

इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध यह द्वितीय अपील है।

गुरुदयाल ने धारा २४० जी० के अंतर्गत आपत्ति निवेशित किया कि हम और बदले उस खेत के सीरदार हैं और धारण (पोजेशन) में हैं। उन्होंने कहा कि हमने विपक्षी बुद्धू का अधिनिष्कासन (एजेक्टमेंट) उ० प्र० भूधारण (टेनेंसी) अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत कर दिया और ५ अप्रैल १९५० में जब दखल लिया तब से लगातार हम उस खेत के धारण में चले आ रहे हैं लेकिन बुद्धू का नाम गलती से कागजों में चला आ रहा था और उसी से वह अधिवासी और बाद में सीरदार हो गया जब कि उस खेत पर न तो उसका अधिकार था और न स्वत्व (टाइटिल)।

बुद्धू का कहना है कि हमारा अधिनिष्कासन (एजेक्टमेंट) कभी हुआ ही नहीं और लगातार धारण (पोजेशन) में रहने से हमें अधिवासी का अधिकार प्राप्त हो गया।

अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि—

(१) विपक्षी बुद्धू का ३० अक्टूबर १९५४ को उस खेत पर न अधिकार था और न स्वत्व और—

२—प्रार्थी धारण में थे। अतः आपत्ति स्वीकार कर ली गई कि इसमें धारा २४० ए० लागू नहीं होती और यह कि कोई प्रतिकर (कंपेंसेशन) देय नहीं है। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने यह आदेश निराकृत कर दिया और अपील स्वीकार की।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय में अपील अवधि (लिमिटेशन)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद निवेशित हुई इसलिए उस न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार ही नहीं था। कहा गया कि अपील तो समय के भीतर की गई परंतु डिग्री की प्रतिलिपि ३० दिन की अवधि के बाद दी गई इसलिए अपील कालबाधित थी। विद्वान् वकील ने कहा कि ज० विनाश नियमावली के नियम ३३९ (२) के अनुसार जिस आदेश या डिग्री के विरुद्ध अपील की जानेवाली है उसके पारित होने के ३० दिन के भीतर अपील हो जानी चाहिए।

उत्तरवादी के विद्वान् वकील का कहना है कि यों तो व्यवहार प्रक्रिया संहिता (सिविल प्रोसीजर कोड) के अनुसार अपील डिग्री के विरुद्ध की जाती है और धारा ३४१ के अनुसार व्य० प्र० संहिता के उपबंध ऐसे मामले में लागू होते हैं परंतु उसी धारा ३४१ में कह दिया गया है कि जमींदारी विनाश अधिनियम में जब कोई स्पष्ट उपबंध न हो तभी व्य० प्र० संहिता लागू होती है अन्यथा नहीं। विद्वान् वकील का कहना है कि जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ३३१ (२) के अनुसार अपील "अंतिम आदेश" (फाइनल आर्डर) के विरुद्ध होती है। उनका कहना है कि इस मुकदमे में अपील 'अंतिम आदेश' के विरुद्ध हुई थी इसलिए अपील के लिये डिग्री की प्रतिलिपि की कोई आवश्यकता नहीं थी। नीचे के न्यायालय में जब विवाद उठा कि डिग्री भी अपील के साथ रहनी चाहिए थी तो उत्तरवादी ने डिग्री की प्रतिलिपि भी दी और इस प्रकार अपील कालबाधित नहीं थी।

यह निश्चित है कि ज० वि० अधिनियम में अपील अंतिम आदेश के विरुद्ध होती है इसलिए डिग्री की प्रतिलिपि की कोई आवश्यकता नहीं है और इसलिए अपील समय के भीतर निवेशित की गई थी। नियम ३३९(२) में 'डिग्री' या 'आदेश' के विरुद्ध अपील का नियम है, जब कि धारा ३३१ (३) में 'अंतिम आदेश' का है ऐसी अवस्था में अधिनियम के अंतर्गतवाले विशिष्ट उपबंध लागू होंगे, नियमावली के उपबंध नहीं।

व्य० प्र० संहिता के उपबंधों के लागू होने की बात का उत्तर धारा ३४१ और धारा ३३१ (३) को एक साथ पढ़ने से मिल जाता है। धारा ३३१ (३) में स्पष्ट रूप से दिए गए मामलों में धारा ३४१ के अनुसार व्य० प्र० संहिता लागू नहीं होती। इस प्रकार अपीलकर्ता के विद्वान् वकील की आपत्तियाँ अमान्य होती हैं।

यहाँ दूसरा प्रमुख प्रश्न है कि निश्चित तिथि (एप्वाइंटेड डेट) (३० अक्टूबर १९५४) को उत्तरवादी को क्या सीरदारी अधिकार प्राप्त हो चुका था ? यह मान्य है कि उत्तरवादी १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी (रेकार्डेड आकूपैंट) और धारण में भी था। इसलिए उसे अधिवासी का अधिकार प्राप्त हो गया। यद्यपि उत्तरवादी का अधिनिष्कासन हो चुका था और वह धारण में नहीं था फिर भी निश्चित तिथि (अप्वाइंटेड डेट) को उसका यह अधिकार अक्षुण्ण था। इसलिए नीचे के न्यायालय का निर्णय ठीक था कि उत्तरवादी सीरदार हो चुका है। धारा० २४० जी० के अंतर्गत आपत्ति अस्वीकार होनी चाहिए।

यह द्वितीय अपील असफल होती है और परिव्यय तथा वकील के २० रु० पारिश्रमिक के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Hand	१–हाथ २–हस्ताक्षर ३–लेख ४–हस्तलेख
by show of hands	हाथ उठाकर
give one's hand to	सगाई
to set one's hands	हस्ताक्षर करना
Hand bill	परचा
Handcuffs	हथकड़ी
Hand delivery	हाथ से भेजना, हस्तप्रदान
Handle	प्रबंध करना, नियंत्रण करना, प्रतिपादन करना, व्यवहार करना, पकड़ना
Hand list	संक्षिप्त सूची
" over	सौंपना
" receipt	हस्तप्राप्ति
Handsome	यथोचित, यथेष्ट
" present	यथेष्ट पुरस्कार
Hand to hand fight	हाथों हाथ लड़ाई
" writing	हस्तलेख, लिखाई
Handy	सुविधाजनक, काम का
Hang	लटकाना, फाँसी देना
Happen	होना, घटना, संयोग से होना
Happening	घटना
Harass	उत्पीडन, उत्पीडन करना
Harassed	उत्पीडित
Harassing	उत्पीडक
Harbour	पत्तन, आश्रय, (क्रि०) आश्रय देना, रखना
Hard	कठोर, तीव्र
" and fast rule	दृढ़ और कठोर नियम
" currency	दुर्लभ मुद्रा
" times	कठिन समय, दुःसमय, बुरे दिन
Harm	अपकार
Indemnity	क्षति पूर्ति
Harsh punishment	कठोर दंड
" treatment	रूक्ष व्यवहार, रूखा व्यवहार
" word	कठोर शब्द
Hate	घृणा, घृणा करना
Hatred	घृणा
Have done with	समाप्त करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Have effect	प्रभावी होना
„ recourse to	सहारा लेना
„ retrospective effect	अतीत प्रभावी होना
„ the force of law	विधिसम प्रभावी होना
Having regard to the circumstances of the case	प्रकरण की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर
Having the force of	समप्रभावी
Head	प्रमुख, मुख्य
„ assistant	मुख्य सहायक
„ clerk	मुख्य लिपिक
Heading	शीर्षक, शीर्ष
Headline	शीर्षक पंक्ति, शीर्षक
Headman	मुखिया, ग्रामणी
Head member of the family	कर्ता
„ of a family	कर्ता
„ „ an office	कार्यालय प्रमुख
„ „ a university	कुलपति
„ „ department	विभाग अध्यक्ष
Heads of charge	दोषारोप शीर्षक
Hear and determine	सुनना और निश्चय करना
Heard „ finally decided	सुना और अंतिम रूप से विनिश्चित
Hearing	सुनवाई
„ of the suit	वाद की सुनवाई
Hearsay	जनश्रुति
„ evidence	सुना साक्ष्य
Heed	मनोयोग, ध्यान
Heedless	असावधान, असतर्क
Height	ऊँचाई
Heinous	गर्हित, जघन्य, क्रूर
„ offence	जघन्य अपराध
„ organised crime	जघन्य संघटित अपराध
Heir	दायाद
Heir apparent	१—प्रत्यक्ष दायाद २—युवराज
„ at law	वैधिक दायाद
„ by custom	रूढ्यनुसार दायाद
„ „ devise	इच्छापत्र से दायाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Heiress	दायादा
Heir general	सामान्य दायाद
Heirlooms	कुलागत वस्तुएँ
Heir of provision	(किसी विलेख के उपबंध विशेष द्वारा जो दायाद के रूप में उत्तराधिकारी होता है) उपबंध से दायाद
„ „ the body	आत्मज दायाद
„ „ „ line	वंशानुक्रमिक दायाद
„ presumptive	संभावी दायाद
Heirs, executors, administrators and representatives	दायाद, निष्पादक, प्रबंधक और प्रतिनिधि
Heirship	दायादता
„ certificate	दायादता प्रमाणपत्र
Held	धृत
„ in trust	न्यास धृत
Help	सहायता, साहाय्य
Herbage	हरा चारा, घासपात, चारण सुविधा
Herd	समुदाय, झुंड
Hereafter	एतत्पश्चात्
Here and there	इधर उधर
Hereby	एतद्द्वारा, इसके द्वारा
„ acknowledged	इसके द्वारा अभिस्वीकृत
„ empowered	एतद्द्वारा अधिकृत
„ enacted	एतद्द्वारा अधिनियमित
Hereditament	दायाप्ति
Hereditary	पित्रागत, पैत्रिक
„ character	पित्रागत लक्षण, पित्रागत गुण
„ claim	पित्रागत अभ्यर्थना
„ constitution	पित्रागत लक्षण
„ disease	परंपरागत रोग
„ lease	पैत्रिक पट्टा
„ office	पित्रागत पद
Hereditary right to cultivate	खेती करने का पित्रागत अधिकार
„ succession	पित्रागत उत्तराधिकार
„ tenure	पित्रागत भूधृति
„ title	पित्रागत उपाधि
„ village offices	पित्रागत ग्रामपद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Hereditas	दाय
Heredity	पित्रागति
Herein	इसमें, अत्र, इह
Hereinafter	अत्र पश्चात्, इह पश्चात्
" appearing	अत्र पश्चात् उल्लिखित, इसमें आगे दिए हुए
" named	अत्र पश्चात् नामांकित
" provided	अत्र पश्चात् उपबंधित, इसमें आगे उपबंधित
" referred to as	अत्र पश्चात् इस प्रकार निर्दिष्ट
Hereinbefore	अत्र पूर्व इसमें पहले
" contained	अत्र पूर्व अंतर्विष्ट
" defined	अत्र पूर्व परिभाषित, इसमें पहले परिभाषा दी गई है
Hereinunder	इसमें नीचे, अत्राध
Heretofore	अद्य पर्यंत
Hereunder	एतद्धीन, नीचे
Hereunto	इस पर
Herewith	एतत्सह, इसके साथ
Heretable	दाययोग्य, पित्रागम्य
" and transferable	दाययोग्य और हस्तांतरणीय संपत्ति
" rights	दाय योग्य अधिकार
Heritage	पित्रार्जित, पैत्रिक संपत्ति
Her Majesty	महामहिम सम्राज्ञी
His Majesty	महामहिम सम्राट्
Hesitation	हिचकिचाहट
Hidden	गुप्त, अदृष्ट, छिपा हुआ
Hierarchy	उच्चोच परंपरा
High	उच्च, ऊँचा
" authorities	उच्च प्राधिकारी
Highborn	कुलीन
High civil authorities	उच्च असैनिक प्राधिकारी
" Commissioner for India	भारतीय उच्चायुक्त
" contracting parties	उच्च संविदाकारी पक्ष
" Court	उच्च न्यायालय
" " decisions	उच्च न्यायालय के विनिश्चय
" " of Judicature	उच्च न्यायालय
" " on their original sides	उच्च न्यायालय अपने मूलाधिकार पर
High crimes and misdemeanors	महापराध और उपापराध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Higher	उच्चतर
,, class	उच्च श्रेणी
Highest	परम, उच्चतम, सर्वोच्च
,, bid	ऊँची से ऊँची बोली
,, bidder	सबसे ऊँची बोली बोलनेवाला
High functionary of a state	उच्चाधिकारी
,, handed method	अत्याचारी रीति
,, power committee	उच्चशक्ति समिति
,, seas	महा समुद्र, बाह्य समुद्र
,, treason	राजाभिद्रोह, घोर अभिद्रोह
Highway Act	राजपथ अधिनियम
Hindrance	बाधा, अड़चन
Hindu law	हिंदू विधि
,, male	हिंदू पुरुष
,, religious institution	हिंदुओं की धर्म संस्था
,, undivided family	हिंदू अविभक्त परिवार
Hint	संकेत
Hintenland	पृष्ठ देश
Hire	भाड़ा, भाड़े पर लेना
,, and purchase	क्रयावक्रय, भाड़े पर और मोल लेना
,, charge	भाड़ा
Hirer	अवक्रेता
Hiring agreement	अवक्रय संविद्
His Excellency	परम श्रेष्ठ
,, Highness	महाराज
,, Majesty in Council	परिषत् स्थित सम्राट
,, Majesty's Service	समाट् सेवा
Hiss	सीत्कार
Hold	(१) धारण करना, रखना, लेना (२) ग्रहण करना
,, an enquiry	जाँच करना
,, ,, office	पद धारण करना
,, brief for	अधिवचन करना, प्रतिवाद करना
,, court	न्यायाधिवेशन करना
,, election	निर्वाचन कराना
Holder	धारी, धारण करनेवाला
,, for the timebeing	तत्समय धारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110723

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Holder for value	समूल्य धारी
„ in due course	यथोचित धारी
„ of a bill	विपत्रधारी
„ „ a life interest	आजीवन हितधारी
„ „ an estate	संपदाधारी
„ „ a public office	लोकपद धारी
„ „ land	भूमिधारी, भूमि का धारी
„ „ Mitakshra certificate	मिताक्षरा प्रमाणपत्र का धारी
„ „ a power	शक्तिधारी
„ „ promissory note and transferee of the same	वचनपत्र धारी और उसका हस्तांतरिती
Holder's duly constituted attorney	धारी का यथाविधि निर्धारित प्राभिकर्ता
Holding	खाता, जोत
„ an office of profit	लाभ पद धारी
Hold office for life	आजीवन पद धारण करना
„ or acquire immoveable property	अचल संपत्ति धारण अथवा अवाप्त करना
„ over	१—आस्थगित करना २—अवधि से परे धारण करना, अतिधारण
„ possession	धारण में रखना
„ up	रोकना
Holiday	पर्वावकाश, पर्व दिन, छुट्टी
Holidays and vacations	पर्वावकाश और दीर्घावकाश
Holiness	पूज्यपाद
Homage	१—श्रद्धांजलि २—वश्यतास्वीकृति
Home	गृह, घर २—स्वदेश ३—अंतर्देशीय, आंतरिक
„ rule	स्वराज, स्वराज्य
„ „ league	स्वराज्य संघ
„ science	गृह विज्ञान
Homestead	१—गृह स्थान २—वास भूमि
„ farm	वास भूमि प्रक्षेत्र
„ law	वास भूमि विधि
„ right	वास भूमि अधिकार
Home trade	स्वदेशीय व्यापार
Homicidal	मानव हत्या
„ mania	मानव हत्योन्माद
Homicide	मानव हत्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Homicide by misadventure	आकस्मिक मानव हत्या
„ in self defence	आत्मरक्षार्थ मानव हत्या
Hon'ble Chief Justice	माननीय मुख्य न्यायाधिपति
„ justice	माननीय न्यायाधिपति
Honest	सत्य, सच्चा, निष्कपट
„ belief	सच्चा विश्वास
„ claim	सत्य अध्यर्थना
„ opinion	सच्चा अभिमत
Honesty	सत्यता, सच्चाई
Honorary	मानसेवी, मानित, अवैतनिक
„ advisor	मानसेवी मंत्रणाकार
„ commission	अवैतनिक आयोग
„ degree	मानोपाधि
„ duty	मानसेवी कर्तव्य
„ functions	अवैतनिक कृत्य
„ member	मानसेवी सदस्य
„ officer	मानसेवी अधिकारी
„ post	मानसेवा पद
„ rank	मानसेवी पदस्थिति
„ staff	मानसेवी कर्मचारी
Honour	आदर, संमान
„ a bill	विपत्र आदरण
Honourably acquitted	संमान पूर्वक अभिमुक्त, निष्कलंक मुक्त
„ bound	मानबद्ध
Honoured	आदृत
Honours	प्रावीण्य
„ certificate	प्रावीण्य प्रमाणपत्र
„ degree	प्रावीण्य उपाधि
Hospital	चिकित्सालय
Hospitality	आतिथ्य
Host	आतिथेय
Hostile	१—शत्रुता पूर्ण २—विरोधी ३—प्रतिकूल
„ possession	प्रतिकूल धारण
„ witness	प्रतिकूल साक्षी
Hostilities	शत्रुता, विग्रह, विरोध भाव

पुस्तकालय 110723 गुरुकुल कांगड़ी वि...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Hotchpot	(बराबर बराबर बाँटने के विचार से संपत्ति का एक में रखना), संमिश्रण
Hotel	आवास गृह, विश्रांति गृह
,, bill	आवास गृह देयक
Hours	समय, काल
,, of attendance	उपस्थिति समय
,, ,, business	कार्य काल, कार्य समय
House	गृह, घर २—(विधान मंडल) सदन ३—सभा
,, allowance	घर भत्ता
,, bill	सदन विधेयक २—स्वकीय विपत्र
,, bote	(किसान के घर की मरम्मत के लिये स्वीकृत लकड़ी). गृह काष्ठ निस्तार
,, breaker	सेंध मार, सेंध लगानेवाला
,, breaking	सेंध लगाना
,, by night	रात को सेंध लगाना
Household	गृहस्थी, परिवार, घरेलू
,, of commons	लोक सदन
,, ,, ill fame	वेश्यागृह, चकला
,, ,, Legislature	विधान मंडल
,, ,, Lords	श्रीपति सदन
,, ,, parliament	संसत् सदन
,, ,, People	लोक सभा
,, ,, prostitution	वेश्यालय
,, ,, refuse	सुधारावास
,, rent	घर का भाड़ा
,, tax	गृह कर
,, to let	घर भाड़े पर देना है
,, trespass	गृह अनधिप्रवेश
Housing	गृह प्रबंध
How	कैसे, किस प्रकार
However	तथापि, कितना ही, कुछ भी हो
Human	मानवीय
Humane	दयामय, मानवोचित
Humanity	मानव जाति, मानवता
Human law	मनुष्य विधि
Humility	नम्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क क्रमशः १०), ५॥) और ३॥) है; एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क, 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी—१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक सौर मास के अंतिम सप्ताह में अर्थात् प्रत्येक अँगरेजी मास के दिनांक १५ तक प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

जहाँगीर का आत्मचरित

अनुवादक—ब्रजरत्नदास

मुग़ल सम्राट् अकबर के पुत्र चतुर्थ मुगल सम्राट् बादशाह जहाँगीर ने अपना आत्मचरित लिखा है जिसका अनुवाद इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें उसके राज्यकाल के अठारह वर्षों का विस्तृत ऐतिहासिक विवरण दिया गया है और साथ ही बहुत सी ऐसी घरेलू बातें भी आ गई हैं जिनका अन्य इतिहासों में उल्लेख नहीं मिलता। जहाँगीर ने अपने पिता की बहुत सी बातों का, आकृति, प्रकृति, रुचि आदि का वर्णन अपनी रचना में यत्र तत्र किया है जो अत्यंत प्रामाणिक है। इसने अपनी यात्राओं, मदिरोत्सवों, अहेरों आदि का ऐसा सुंदर वर्णन दिया है जो कहीं कहीं बहुत आकर्षक हो गया है। इसने हिंदुओं के मंदिरों, विचारों आदि की आलोचना की है। इसमें जब एक ओर कट्टर धर्मांधता है तब दूसरी ओर उदारता भी स्पष्ट है। इसने अपने अत्याचारों, कमजोरियों आदि सभी का स्पष्ट वर्णन कर डाला है, कहीं छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। अपने मदिरापान की अति को उसने कुछ नहीं छिपाया और उसकी बहक में इसने अपने बड़ों तथा ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा खूब दरसाई है। फारस आदि की कुछ कहानियों तथा स्वरचित शैरों का भी इसमें समावेश किया है। पुस्तक हर दृष्टि से पढ़ने तथा मनन करने योग्य है। पृ० संख्या लगभग ६०० तथा अनेक चित्रों युक्त, पक्की दृढ़ जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य केवल १५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक और मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से तथा उसके लिये श्री सिद्धनाथ सिंह
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri